शिशुपालवध महाकाव्य का साहित्यिक अध्ययन

इलाहाबाद यूनिवर्सिटी की डी० फिल्० उपाधि
के लिए प्रस्तुत
शोध प्रबन्ध

मार्ग दर्शक :
डॉ० शंकर दयाल द्विवेदी
संस्कृत विभाग
इलाहाबाद यूनिवर्सिटी, इलाहाबाद

अनुसन्धात्री :
रंजना मिश्रा

संस्कृत विभाग
इलाहाबाद यूनिवर्सिटी
इलाहाबाद

१९९३

परम पूज्य श्वसुर

स्व०श्री राम नरेश जी मिश्र

के पद पद्मों में

सादर समर्पित

भूमिका

आज से करीब 18 वर्ष पूर्व जब मैं सप्तम कक्षा की छात्रा थी मेरे पिता श्री प्रभाकर दत्त तिवारी एक संगोष्ठी में सम्मिलित होने के उद्देश्य से महाभारत का अध्ययन कर रहे थे । पूज्य पिता जी के चरणों में बैठकर मुझे भी इस कथा का ज्ञान प्राप्त करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ । इसी कथा में चेदिराज शिशुपालवध की कथा का प्रसंग भी आया था । मुझे यह जानने का अवसर प्राप्त हुआ कि महाकवि माघ ने इसी विषय पर एक महाकाव्य भी रचा है । तभी से मेरे शिशु हृदय में इस महाकाव्य और इसके रचयिता के विषय में पूर्ण जानकारी प्राप्त करने की अभिलाषा हुयी किन्तु अन्ततोगत्वा यह बाल्यकालीन भावनायें ही थीं जो लहरों की भाँति उठती थीं और लुप्त हो जाती थीं ।प्रसुप्त अभिलाषा के रूप में लुप्त यह हृदगत भाव अन्त में जैसे-जैसे संस्कृत का अध्ययन पाठशालाओं में घर पर रह कर अपने परमादरणीय पिता जी के श्री चरणों में बैठकर अथवा विश्वविद्यालय में आकर विश्वविद्यालयीयसंस्कृत अध्ययन परिपक्व बुद्धि होने पर महाकाव्यों के सान्निध्य में आने लगी तो "काव्येषु माघः", "माघे सन्ति त्रयोगुणाः, मेघे माघे गतं वयः, मुरारिपद चिन्ता चेत् तदा माघे रतिं कुरू आदि सूक्तियाँ एक बार फिर अग्नि में घृत का कार्य कर गयीं । मेरी इन सुषुप्त भावनाओं को मूर्त रूप देने का कार्य आश्रय बिना कहाँ संभव ? विभाव, अनुभाव, संचारी भावों के योग से रसोत्पत्ति कही गयी है । विभाव का अनुभाव कराने वाले सौभाग्यवश मेरे पथ प्रदर्शक डॉ० शंकर दयाल द्विवेदी आश्रय रूप में मुझे उस समय प्राप्त हुये जब मैं वाराणसी के काशी हिन्दू विश्वविद्यालय से स्नातकोत्तर कर इस इलाहाबाद विश्वविद्यालय के संस्कृत विभाग में संस्कृत में ही डी० फिल०

करने की अभिलाषा कर रही थी । इस प्रस्ताव को लेकर जब मैं सम्मति ग्रहण करने हेतु उनके निवास स्थान पर परमोत्कंठा के साथ गयी तो उन्होंने तुरंत शिशुपालवध महाकाव्य का साहित्यिक अध्ययन नामक विषय मेरे शोध कार्य हेतु प्रस्तुत कर दिया । फिर क्या था-सुषुप्त भावनायें जागृत हो उठीं । बाल्य-कालीन भावनाओं का साकार रूप पाकर मुझ में प्रेरणा हुयी और मैंने उत्साहपूर्वक इस महाकाव्य पर कार्य आरम्भ ही कर दिया । इस अध्ययन में मैंने यह आश्चर्य से देखा कि कालिदासादि महाकवियों के काव्यों के समीक्षक जितने मुखर हैं उतने ही "नव सर्ग गते माघे नवशब्दो न विद्यते" के आचार्य महाकवि माघ के काव्य के विषय में मौन भी हैं । महाकवि माघ की उपर्युक्त रचना की विशेषतायें और कथित दोष जहाँ एक ओर ध्यान आकृष्ट करते जा रहे थे वहाँ विद्वानों का उनके सम्बन्ध में मौन प्रधान ईषत्कथन मुझे इस बात के लिये प्रेरित करने लगा कि महाकवि माघ के काव्य की प्रामाणिक समीक्षा विद्वद् मनीषियों के समक्ष प्रस्तुत की जाय जिससे महाकवि माघ के काव्य वैभव का प्रकाश समुचित रूप से प्रसृत हो सके । शिशुपाल वध का साहित्यिक अध्ययन नामक मेरा यह शोध प्रबन्ध मेरी इसी प्रेरणा और तज्जन्य प्रयत्न का एक परिणाम है ।

प्रस्तुत शोधप्रबन्ध आठ अध्यायों में विभक्त है । प्रथम अध्याय में महाकवि माघ का जीवनवृत्त, उनका काल निर्धारण, उनकी रचना, व्यक्तित्व पर प्रकाश डाला गया है । द्वितीय अध्याय में शिशुपालवध महाकाव्य की कथावस्तु का वर्णन सर्गानुसार किया गया है । इसी अध्याय में उपर्युक्त महाकाव्य की मूल कथावस्तु में परिवर्तन एवं उसके प्रयोजन को भी स्पष्ट किया गया है ।

तृतीय अध्याय में शिशुपाल वध महाकाव्य का वस्तु वर्णन किया गया है । वस्तु वर्णन में - ऋषि वर्णन, मन्त्रणा वर्णन, इन्द्रप्रस्थ प्रस्थान वर्णन, द्वारकापुरी वर्णन, समुद्र वर्णन, रैवतक पर्वत वर्णन, सेना प्रयाण वर्णन, प्रकृति वर्णन, वनविहार वर्णन, जल क्रीड़ा वर्णन, संध्या वर्णन, पानगोष्ठी वर्णन, यमुना वर्णन, सभा वर्णन, राजसूय यज्ञ वर्णन दूत सम्प्रेषण वर्णन एवं युद्ध वर्णन जैसे विषयों को लिया गया है । चतुर्थ अध्याय में महाकाव्य में प्रयुक्त अलंकारों का वर्णन किया गया है । पंचम अध्याय में महाकाव्य में दृष्टिगत गुण, रीति एवं वृत्ति का उल्लेख किया गया है । षष्ठ अध्याय में महाकाव्य में रस विवेचन उपनिबद्ध है । रस सम्बन्धी विवेचन के अन्तर्गत महाकाव्य में अभिव्यंजित रस, भाव, रसाभास, भावाभास एवं भावोदय आदि ध्वनियों का विश्लेषण प्रस्तुत किया गया है । इस विवेचनमें अंगी रस एवं अंग रस का भी सांगोपांग विवेचन किया गया है । सप्तम अध्याय में महाकाव्य के व्युत्पत्ति पक्ष का जिक्र किया गया है । इसमें महाकवि माघ की शिक्षा एवं विद्वता से परिचय कराते हुये यह स्पष्ट किया गया है कि महाकवि माघ को शास्त्रों का ज्ञान, पौराणिक ज्ञान, साहित्यों का ज्ञान, संगीत शास्त्र का ज्ञान, नाट्यशास्त्र का ज्ञान, राजनीति का ज्ञान, आयुर्वेद का ज्ञान, ज्योतिष का ज्ञान, कामशास्त्र का ज्ञान, पशु विद्या का ज्ञान एवं व्याकरण शास्त्र का ज्ञान प्राप्त था । इसी अध्याय में उनके आचार्यत्व पर भी समुचित प्रकाश डाला गया है । अष्टम अध्याय में उपसंहार तथा महाकाव्य का मूल्यांकन किया गया है ।

प्रस्तुत शोध प्रबन्ध को सफलता पूर्वक सम्पन्न कराने में श्रद्धेय गुरुवर डा0 शंकर दयाल द्विवेदी, प्रवक्ता, संस्कृत विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

के कुशल निर्देशन का अमूल्य सहयोग प्राप्त हुआ है । गुरुवर्य के सम्भाषणों एवं निर्देशों को क्रमशः अक्षरशः अनुपालन करने में मुझे सदैव कठिनता का अनुभव हुआ है फिर भी उनके द्वारा निर्दिष्ट दिशा में जाने का प्रयत्न मेरे द्वारा अवश्य किया गया है । अतः शोध प्रबन्ध में जो भी गुण विद्यमान हैं - वे गुरुवर्य के आदेशों के मूर्तिमान प्रतिफल हैं, शेष तो मेरी अनभिज्ञता है ही । अतः इस अवसर पर परमादरणीय गुरु से स्वाभाविक रूप से ऋणी रहने के कारण उनके श्री चरणों में प्रणामान्जलियाँ निवेदित करती हुयी मैं धन्य होती हुयी अपने आपको उनके प्रति कृतज्ञ महसूस कर रही हूँ । परमपूज्य गुरुप्रवर प्रोफेसर सुरेश चन्द्र पाण्डेय, अध्यक्ष, संस्कृत विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद ने मेरी शोधविषयक समस्याओं को सुलझा कर, शोधप्रबन्ध के अध्यायों का अवलोकन कर समय-समय पर मेरा अपेक्षित मार्ग दर्शन कर सतत मेरा उत्साहवर्द्धन किया है एतदर्थ उनके प्रति जितनी भी कृतज्ञता ज्ञापित की जाय कम ही है । इस कार्य को पूरा करने के लिये मुझे अनेक विद्वद मनीषियों का सहयोग एवं परामर्श प्राप्त हुआ है । भूतपूर्व कुलपति, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद एवं इलाहाबाद संग्रहालय, इलाहाबाद के अध्यक्ष-परम श्रद्धेय डॉ० गोविन्द चन्द्र पाण्डेय ने मेरी शोध विषयक समस्याओं का निराकरण कर अपने सत्परामर्श से लाभान्वित कर मेरे शोध कार्य को एक नवीन दिशा दिया है जिसके लिये मैं उनकी अत्यन्त आभारी हूँ । परमादरणीय श्री उदय शंकर तिवारी, निदेशक, इलाहाबाद संग्रहालय, इलाहाबाद, ने न केवल शोध प्रबन्ध के लिखते समय अपने बहुमूल्य परामर्श से मेरी सहायता की अपितु इसके लिये आवश्यक ग्रन्थों एवं साहित्यों की भी व्यवस्था कर कृतार्थ किया जिसके लिये मैं उनकी अत्यन्त ऋणी हूँ

इसी अवसर पर पूज्य चरण पिता जी के आशीर्वाद को मैं विस्मृत नहीं कर पा रही हूँ जिन्होंने शोध प्रबन्ध के लिखते समय मेरी शोध विषयक समस्याओं का यथासंभव निराकरण किया तथा शिक्षा में मेरे इस नैरन्तर्य का अद्भुत भार वहन किया। "पितुर्दश गुणा माता गौरवेणातिरिच्यते" इत्यादि पुराण वचनों का स्मरण करते हुये माता जी के वात्सल्य से जो मेरी जीवन यात्रा में पाथेय के रूप में विद्यमान है, धन्य हो रही हूँ । एतदर्थ माता पिता के श्री चरणों में ससंकोच प्रणामान्जलियों को निवेदित करती हुयी उत्कण्ठित सी हो रही हूँ क्योंकि उनके प्रति कुछ भी निवेदन करने से तृप्ति का अनुभव नहीं होता है ।

शोध विषयक अनेकानेक बहुमूल्य सुझावों एवं विषय वस्तु से सम्बद्ध अनेक समस्याओं के निराकरण में मैं सुहृदय विद्वद मनीषी डॉ0 गया चरण त्रिपाठी, अध्यक्ष, उत्तर प्रदेश संस्कृत अकादमी, उत्तर प्रदेश एवं गंगानाथ झा केन्द्रीय संस्कृत विद्यापीठ के प्राचार्य का हृदय से आभार व्यक्त करती हूँ । इसी संस्थान के मैं अपने सम्मान्य पति के मित्र-डॉ0सत्यव्रत त्रिपाठी, श्री आर0एन0थपलियाल, श्री जय सिंह के प्रति भी अपना आभार व्यक्त करती हूँ । उन्होंने समय-समय पर पुस्तकों की व्यवस्था कर शोध-प्रबन्ध के लेखन कार्य को एक नवीन आयाम प्रदान किया है।

इस शोध प्रबन्ध के लेखन में समय-समय पर अपेक्षित सत्परामर्श मुझे अपने मातुलीय श्वसुर श्री कृष्ण कान्त उपाध्याय, वित्त अधिकारी, संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी से भी प्राप्त हुआ तथा उन्हीं के अनुग्रह से मुझे वहाँ पर उपलब्ध शोधविषयक साहित्यों का अध्ययन करने का भी सुअवसर प्राप्त हुआ

अतएव उनके प्रति भी अपनी हार्दिक कृतज्ञता ज्ञापित करना मैं अपना एक पुनीत कर्तव्य समझती हूँ । परमश्रद्धेय आचार्य श्री रामदत्त मिश्र जिन्होंने मुझे अपने शोध प्रबन्ध के लेखन के अन्तिम चरण में अपनी सत्परामर्श प्रदान कर लाभान्वित किया, उनके प्रति भी मैं अपनी कृतज्ञता प्रकट करती हूँ ।

इस शोध प्रबन्ध के लिखते समय मुझे अपेक्षित परामर्श अपने सम्बन्धी श्री ए०एन०तिवारी, अवकाश प्राप्त प्रधानाचार्य, सेन्ट्रल पेडागाजिकल इन्स्टीट्यूट, इलाहाबाद से भी मिली । उनके प्रति मैं अपना आभार प्रकट करती हूँ । मैं अपने सम्मान्य पतिदेव-डॉ०राजेश चन्द्र मिश्र के प्रति भी अपनी हार्दिक कृतज्ञता ज्ञापित करती हूँ जिन्होंने न केवल मेरे इस शोध प्रबन्ध के लेखन में अपना अमूल्य परामर्श प्रदान कर लाभान्वित किया है वरन् मेरे सतत शैक्षिक कार्यों की पूर्णता में मार्ग-दर्शक बन कर मुझे कृतार्थ किया है । इस शोध प्रबन्ध के पूर्ण होने में एक प्रेरणा स्त्रोत के रूप में उनकी एक अहम भूमिका रही है जिसे कभी-भी झुठलाया नहीं जा सकता । उनके मित्र श्री कमलेश कुमार त्रिपाठी जिन्होंने समय-समय पर शोध प्रबन्ध के लेखन में आयी हुई समस्या के निराकरण हेतु पुस्तकें प्रदान कर मेरे शोध कार्य के लेखन की तीव्रता में वर्द्धन कियाहै,के प्रति मैं अपना आभार प्रकट करना एक पुनीत कर्तव्य समझती हूँ । अन्त में शोधप्रबन्ध को पूर्ण करने में जिन विद्वद् मनीषियों एवं सरस्वती के अनन्य उपासकों की पुस्तकों एवं ग्रन्थों का अमूल्य सहयोग प्राप्त हुआ है उनके प्रति मैं अपनी हार्दिक कृतज्ञता ज्ञापित करती हूँ ।

शिशुपाल-वध का साहित्यिक अध्ययन सदृश महत्त्वपूर्ण एवं बहुचर्चित

विषय पर यह एक गवेषणात्मक प्रयास विद्वज्जनों के समक्ष प्रस्तुत है । इसमें कहाँ तक सफलता मिली है - इसका निश्चय सहृदय विज्ञ ही करेंगे क्योंकि साफल्य का निकष वस्तुतः उन्हीं का परितोष है ।

कवि शिरोमणि कालिदास के शब्दों में -

आपरितोषाद् विदुषां न साधुमन्ये प्रयोग विज्ञानम् ।

रंजना मिश्रा
(रंजना मिश्रा)
संस्कृत विभाग,
इलाहाबाद विश्वविद्यालय
इलाहाबाद ।

बृहस्पतिवार,
22 अप्रैल, 1993

विषयानुक्रमणिका

पृष्ठ संख्या

6- षष्ठ अध्याय

सप्तम अध्याय

व्युत्पत्ति पक्ष

प्रथम-अध्याय

शिशुपालवध महाकाव्य- रचयिता एवं रचनाकाल -

शिशुपालवध महाकाव्य के रचयिता व्याकरण शास्त्र के दिग्गज महापण्डित माघ थे।[1-9] माघ का जन्म स्थान भिन्नमाल था।[2-4] माघ दत्तक के पुत्र थे जो परम उदार, क्षमाशील, कोमल प्रकृति एवं धर्मनिष्ठ थे।[1-9] दत्तक में ये गुण धरोहर के रूप में अपने पिता सुप्रभदेव जो उस समय युधिष्ठिर के समान यशस्वी एवं धर्मनिष्ठ थे, से क्रमागत हुये थे। ये निरासक्त दृष्टि वाले, रजोगुण रहित, शुद्ध प्रकृति के ब्राह्मण थे। सत्यवक्ता एवं धर्मात्मा इतने थे कि इन्होंने अपने गुणों से युधिष्ठिर को भी विस्मृत कर दिया था।[2] सुप्रभदेव राजा वर्मलात

1- हिस्ट्री ऑफ क्लासिकल संस्कृत लिटरेचर- एम0 कृष्णमाचार्य, पृष्ठ सं0 154

2- महाकवि माघ, उनका जीवन तथा कृतियाँ-डॉ0 मनमोहन लाल जगन्नाथ शर्मा, पृ0सं0 13

3- संस्कृत कवियों के व्यक्तित्व का विकास- डॉ0 राधावल्लभ त्रिपाठी, पृ0सं0 158

4- ए, हिस्ट्री ऑफ संस्कृत लिटरेचर - आर्थर ए मैक्डोनेल, पृ0 सं0 329

5- संस्कृत साहित्य का इतिहास - डॉ0 मंगल देव शास्त्री, पृ0सं0 152

6- जरनल ऑफ द रायॅल एशियाटिक सोसाइटी, कीलहार्न, पृ0सं0 409

7- संस्कृत साहित्य का इतिहास - बलदेव उपाध्याय, पृ0 225

8- संस्कृत साहित्य का इतिहास - डॉ0 चन्द्रशेखर पाण्डे, पृ0सं0 65

9- संस्कृत साहित्य का इतिहास - डॉ0 राजकिशोर सिंह, पृ0सं0 170

के यहाँ सर्वाधिकारी पद पर कार्यरत थे ।[1] राजा वर्मलात सुप्रभदेव की मन्त्रणा को बुद्ध के उपदेशों की भाँति बिना संकोच या अनुरोध के स्वीकार करते थे । इन्हीं सुप्रभदेव के पौत्र माघ ने कठिनता से प्राप्त करने योग्य सुकवि कीर्ति के निमित्त ही श्रीकृष्ण के चरित्र के वर्णन का आश्रय लेकर शिशुपालवध नामक महाकाव्य बनाया जिसकी पहचान है "श्री" शब्द ।[2] यह शब्द प्रत्येक सर्ग के अन्त में मिलता है । इस शिशुपालवध महाकाव्य को कवि के नाम के आधार पर माघ काव्य भी कहा जाता है ।[3] 19वें सर्ग के अन्त का चक्रबन्ध श्लोक की टीका अपने प्राकरणिक अर्थ के साथ-साथ "माघ काव्यमिदम्" "शिशुपालवध" ये दो पद स्पष्टतः दृष्टिगोचर होकर अतिरिक्त अर्थ को अभिव्यक्ति देते हैं कि प्रकृति काव्य का नाम माघ काल या शिशुपालवध समझा जाय ।

1- हिस्ट्री ऑफ क्लासिकल संस्कृत लिटरेचर- एम0कृष्णमाचार्य, पृ0 सं0 154

2- श्रीशब्द रम्यकृत सर्ग समाप्तिलक्ष्म, लक्ष्मीपतेश्चरितकीर्तनमात्र चारु ।
   तस्यात्मजः सुकविकीर्तिदुराशयाऽदः काव्यंव्यधत्तशिशुपालवधाभिधानम् ।।
   (कविवंशवर्णन, 5)
   -मल्लिनाथ, पृ0 407

3- हिस्ट्री ऑफ संस्कृत लिटरेचर - ए0 बी0 कीथ, पृ0 सं0 156

माघ का जन्म-स्थान -

महाकवि माघ के जन्म-स्थान के विषय में विभिन्न मत हैं। कतिपय इस प्रकार हैं -

1- महाकवि माघ धारानरेश महाराज भोज द्वारा पालित थे। राजा भोज जिस गाँव में रहते थे -उनके तथा उसकवि के गाँव का नाम भी भिन्नमाल था।[1]

2- कवि माघ गुजरात प्रान्त के अन्तर्गत लूणी नदी के निकट कुछ ही मीलों की दूरी पर स्थित भिन्नमाल के निवासी थे।[2]

3- भोज प्रबन्ध, प्रबन्ध चिन्तामणि प्रभावक चरित तथा माघ काव्य की विशेष प्रतियों में लिखे हुये "इति श्री भिन्नमाल आस्तव्य" के अनुसार माघ राजस्थान प्रान्त के अन्तर्गत भिन्नमाल के निवासी थे।[3]

4- शिशुपाल वध के 19वें सर्ग के चक्रबन्ध श्लोक में श्लिष्टरूप से वत्स भूमि का संकेत है जो यह बताता है कि वह भिन्नमाल के हैं।[4]

1- हिस्ट्री ऑफ क्लासिकल संस्कृत लिटरेचर- एम0कृष्णमाचार्य, पृ0सं0 154

2- ब्रजस्फुट सिद्धान्त की भूमिका - प्रोफेसर सुधाकर द्विवेदी, पृ0सं042

3- संस्कृत कवियों के व्यक्तित्व का विकास- डॉ0राधावल्लभ त्रिपाठी, पृ0सं0158

4- सत्वं मान विशिष्टमाजिरभसादालम्ब्यभव्यः पुरो
लब्धाघक्षयशुद्धिरुद्धरतरश्रीवत्सभूमिर्मुदा ।
मुक्त्वा काममपास्तभीः परमृगव्याधः स नादं हरे-
रेकौघैः समकालमभ्रमुदयी रोपैस्तदा तस्तरे ।।

शिशुपालवध, 19/120

5- बसन्त गढ़ के शिलालेख तथा ब्रह्म गुप्त के ब्रह्मस्फुट सिद्धान्त के आधार के माघ भिन्नमाल के निवासी ही सिद्ध होते हैं ।[1]

इन सबसे यही निष्कर्ष निकलता है कि माघ की जन्मभूमि प्राचीन गुजरात प्रान्त के अन्तर्गत भिन्नमाल है जो आज राजस्थान के सिरोही जिले के निकट एक तहसील है ।

माघ का कुल -

माघ कवि किस कुल में उत्पन्न हुये - यह एक विवादास्पद विषय है । एक मत के अनुसार वह वैश्य थे तथा दूसरे मत के अनुसार ब्राह्मण ।

पहला मत जो माघ के वैश्य होने का प्रमाण प्रस्तुत करता है - मूलत: जनश्रुति एवं कुछ प्रमाणों पर आधारित है ।

भीमसेन दीक्षित ने काव्यप्रकाश की सुधाशेखर टीका में माघ को वणिक बताया है ।[2] कृष्णमाचार्य जी ने भी इस कथन की पुष्टि की है । दीक्षित जी का यह कथन था कि माघ के पास विपुल धनराशि थी जबकि कृष्णमाचार्य का विचार है कि माघ ने शिशुपाल वध महाकाव्य को किसी अज्ञात कवि से

1- इपिग्राफी इन्डिया, भाग 10, पृष्ठ सं0 19।

2- सुधाशेखर टीका- भीमसेन दीक्षित पृ0सं0 11

खरीद लिया था और उसके रचयिता वह स्वयं बन गये। इसका उदाहरण शिशुपालवध है जिसकी कवितायें महज धन एकत्र करने के उद्देश्य से की गयी थी।

प्रभावक चरित में[1] माघ कवि के चाचा को शुभंकर श्रेष्ठी बताया गया है। श्रेष्ठी शब्द का प्रयोग उस समय वणिकों के लिये होता था। इस तथ्य को दृष्टि में रखते हुये माघ को वणिक् बताया गया है।

एक जनश्रुति मूलतः कवि भारवि से सम्बद्ध है। कवि भारवि अपने ससुराल में प्रवास कर रहे थे। उसी समय उनकी पत्नी ने अपने ससुराल के निकट पड़ोसियों की प्रवंचना सुनकर अपने पति-भारवि कवि से आभूषण की माँग की। चूंकि भारवि कवि के पास उस समय धन नहीं था उन्होंने अपना एक श्लोक "सहसा विदधीत न क्रियाम्" जो कि पत्ते पर लिखा हुआ था अपनी पत्नी को दे दिया और उसे किसी सेठानी को बेचकर धनराशि एकत्र कर आभूषण खरीदने के लिये कहा। उनकी पत्नी ने वैसा ही किया। सेठानी का पति उस समय विदेश गया था। विदेश से लौटने पर उसने अपनी पत्नी के निकट एक युवक को लेटे देखा। वह क्रोध से आग बबूला हो गया और युवक का वध करने को उद्यत हो गया। उसी समय उसकी दृष्टि सेठानी की शय्या के निकट रखे पत्ते पर लिखे श्लोक पर गयी। वह उसे पढ़ने लगा। उसी समय उसकी पत्नी निद्रा से जाग उठी। उसने उसे बताया कि युवक उसका पुत्र है। सेठ को अपनी गलती पर पश्चाताप हुआ। उसी समय भारवि की पत्नी कुछ धन एकत्र कर अपने पति का श्लोक

1- महाकवि माघ, उनका जीवन तथा कृतियाँ - डा० मनमोहन लाल जगन्नाथ नाथ शर्मा, पृ०सं० 140

वापस लेने गयी । सेठ ने श्लोक वापस करने से इनकार किया लेकिन इसके बावजूद वह अपने पति का श्लोक वापस ले गयी । क्रोध में आकर सेठ ने कहा कि यह श्लोक क्या है । इस श्लोक से भी उत्कृष्ट श्लोकों की रचना कर एक नवीन महाकाव्य बनाऊँगा । तदुपरान्त उस सेठ ने महाकाव्य-शिशुपाल वध-लिखा। इस प्रकार वह सेठ महाकाव्य का रचयिता माघ कहलाया । इस तथ्य से माघ का वणिक् होने का प्रमाण मिलता है ।

माघ के वणिक् होने सम्बन्धी मत का निराकरण -

श्रीकृष्णमाचार्य का कथन यह तो सिद्ध कर सकता है कि शिशुपाल वध काव्य को किसी वैश्य ने खरीदा पर काव्यकार भी वैश्य था-यह बात इससे प्रमाणित नहीं होती है ।

"सहसा विदधीत न क्रियाम्" इत्यादि श्लोक का माघ के जीवन से इस तरह जो सम्बन्ध स्वीकार किया जाता है -इसका कोई प्रमाण नहीं है- यह मात्र एक जनश्रुति है जिसका प्रामाणिक उल्लेख या सत्यता सिद्ध करने वाला प्रमाण अभी तक नहीं प्राप्त है ।

प्रभावक चरित में जो श्रेष्ठी शब्द का प्रयोग किया गया है-वह उनके कुल की वैश्यता का बोधक न होकर उनके श्रेष्ठता का भी बोधक हो सकता है । श्रेष्ठिन् का प्रयोग पूर्व में ऐसे व्यक्तियों के लिये किया जाता था जो अपने किसी बड़े काम के कारण श्रेष्ठता को प्राप्त हुये हों । यह एक उपाधि थी । कालान्तर

में जब समाज में अर्थोन्मुखता बढ़ी तो यह उपाधि केवल धनिकों के साथ जोड़ी जाने लगी। धनिक प्रायः वैश्य होते हैं इसलिये श्रेष्ठन् से वैश्य का अभिप्राय लिया जाने लगा।

यही कहना अधिक उचित होगा कि सुप्रभदेव के कार्य श्रेष्ठ थे। स्वयं माघ कवि ने उन्हें पुण्यधर्मोपाला, परम धार्मिक कहते हुये निरासक्त दृष्टि युक्त रजोगुण रहित व्यक्ति बताया है।[1] धार्मिक पिता के पुत्र दत्तक भी बड़े उदार, क्षमाशील, कोमल प्रकृति व्यक्ति थे। दत्तक ही सर्वाश्रय कहलाये। दत्तक के भ्राता शुभंकर थे। कुल के श्रेष्ठ कार्यों के कारण ही वह श्रेष्ठी कहलाये। महाकवि माघ इन्हीं दत्तक के पुत्र थे।

माघ का ब्राहमणकुलोत्पन्न होना -

माघ ब्राहमण थे - यह मत शिशुपाल वध एवं प्रबन्ध चिन्तामणि में आये हुये विविध उल्लेखों से दृष्टिगत होता है।

शिशुपाल वध महाकाव्य के अन्तिम 5 श्लोक माघ ने अपनी आत्मकथा के रूप में लिखा है जिसमें उनका वंशवर्णन मिलता है। इस वंशवर्णन के श्लोक में देवोऽपरः शब्द आया है[2] "देवोऽपरः" का शाब्दिक अर्थ है दूसरा देव। यह

1- शिशुपाल वध, कविवंश वर्णन, प्रथम श्लोक से पंचम श्लोक तक।

2- सर्वाधिकारी सुकृताधिकारः श्रीवर्मलाख्यस्य बभूव राज्ञः।
असक्त दृष्टिर्विरजाः सदैव देवोऽपरः सुप्रभदेव नामा ॥ १ ॥
शिशुपालवध, कविवंशवर्णन, प्रथम श्लोक

दूसरा देव कौन हो सकता है ? ब्रह्मा, विष्णु, महेश आदि की गणना तो देवों में आती है किन्तु ब्राह्मणों को भी भूमिदेवा: कहकर देव कोटि में परिगणित किया गया है । भारवि के अनुसार ब्राह्मण "सत्याशिष: सम्प्रति भूमिदेवा:" हैं । अपर देव का अर्थ ब्राह्मण ही है फिर जब सुप्रभदेव ब्राह्मण थे तो उनके पौत्र माघकवि भी ब्राह्मण ही हुये ।

प्रबन्ध चिन्तामणि में आयी हुयी माघ सम्बन्धी कथा से भी माघ का ब्राह्मण होना व्यक्त होता है । कथा की अन्तिम पंक्ति है - "श्री मालेषु सजातिषु धनवत्सु सत्सु तस्मिन्पुरुषरत्ने विनष्टे क्षुधा बाधिते सति भिन्नमाल इति तज्जातं नाम निर्ममे ।" इसमें इनके श्रीमाल निवासी ब्राह्मण होने का संकेत मिलता है । इसी सन्दर्भ में प्रबन्ध चिन्तामणि का एक और श्लोक दृष्टि-योग्य है । श्लोक की प्रथम पंक्ति में वह कहा गयाहै कि इस दुर्भिक्ष में हम ब्राह्मणों को कौन भोजन करायेगा । द्वितीय पंक्ति में माघ चिन्तित से हो रहे हैं-यह सोचकर कि ग्रास भोजन को प्राप्त किये बगैर ही सूर्य अस्त हो रहे हैं । इन दोनों बातों से माघ का शाकद्वीपी ब्राह्मण होना सिद्ध होता है ।

शिशुपाल वध महाकाव्य में भी माघ के शाकद्वीपी होने का प्रमाण मिलता है । भविष्य पुराण में शाकद्वीपी ब्राह्मणों के लिए मद्यपान देव प्रसाद के रूप में दोष नहीं है । ये तो इसे हवि: कहते हैं । अग्निहोत्र के तुल्य इनके लिये भी यह अवश्य कहलाता है । शिशुपालवध में माघ ने मदिरापान के वर्णन को संभवत:

इसीलिये दूषित नहीं माना है ।[1]

स्नान करके त्रिकालसंध्या करने का नियम मग ब्राह्मणों में है । ऐसा उपाख्यान में है, शिशुपाल वध में भी इसका उल्लेख मिलता है ।[2]

देवगण भी तीनों संध्याओं में नमस्कार करने लगते थे । इससे यही अभिप्राय निकलता है कि माघ तीन समय संध्या अवश्य करते होंगे ।

उपर्युक्त बहि: साक्ष्य एवं अन्त: साक्ष्य- दोनों के आधार पर यह सिद्ध होता है कि शिशुपाल वध महाकाव्य के रचयिता महाकवि माघ श्रीमाल (भिन्नमाल) निवासी शाकद्वीपी मग ब्राह्मण थे ।

माघ का काल निर्धारण -

माघ के समय निरूपण में बड़ा मतभेद है । कोई इन्हें सातवीं शताब्दी का, कोई उन्हें 8वीं शताब्दी और कोई उन्हें 9वीं शताब्दी का मानता है। अत: उनके समय निरूपण के लिये हमें प्राप्त समस्त साक्ष्यों एवं प्रमाणों का अवलोकन करना पड़ेगा ।

1- महाकवि माघ, उनका जीवन तथा कृतियाँ- डॉ0मनमोहनलाल जगन्नाथ शर्मा, पृ0सं0 185

अपि च-

"न भिक्षादुर्भिक्षे पतति दुखस्था कथमपि,
लभन्ते कर्माणि क्षितिपरिवृढान्कारियतिव: ।
अदत्वापि ग्रासं ग्रहपति रसावस्त भयते,
क्व याम:कि कुर्मो गृहिणी गहनो जीवितविध: ।।"

2- "स संचरिष्णुर्भुवनान्तरेषु यां यदृच्छयाशिश्रियदाश्रय: श्रिय: ।
अकारि तस्यै मुकुटोपलस्खलत्करैस्त्रिसंध्यं त्रिदशैर्दिशे नम: ।।"

शिशुपालवध, 1/46

§अ§ अभि:साक्ष्य

1-बसन्त गढ़ का शिलालेख

कविवंश वर्णन में कवि माघ ने वर्मल नाम का प्रयोग किया है ।[1] जो बसन्तगढ़ के शिलालेख में आया है । बसन्तगढ़ का यह राजा वर्मलात सम्बन्धी शिलालेख इस समय अजमेर मेगजीन के राजपूताना म्यूजियम के अधीनस्थ प्राचीन एवं अन्य शिलालेखों के साथ सुरक्षित है ।[2]

अर्बुदांचल - गाँव के निकट वसन्तगढ़ है । उसी के समीप प्राप्त हुआ यह प्राचीन शिलालेख पिंडवाड़ा के दक्षिण मार्ग में लगभग 5 कि0मी0दूरी पर मिला । जनश्रुति के अनुसार यह शिलालेख वाला पत्थर वहीं पर स्थित मंदिर से लगा हुआ था । शिलालेख में प्रयुक्त भाषा श्लोकमयी है और यह 17 पंक्तियों में है जिसके अध्ययन से यह स्पष्ट है कि राजा वर्मल §वर्मलात§ भीनमाल के समीप अजारी से लगभग 3 मील दक्षिण वसन्तगढ़ का शासक था । क्षेमकरी देवी का मन्दिर सत्यदेव द्वारा वर्ष 682 में बनवाया था । जब इस मंदिर का निर्माण हुआ उस समय उसका शिलालेख वहाँ के राजा वर्मल ने स्थापित किया । स्थापना का वर्ष भी वही था । उसमें पंचो के नाम भी दिये गये हैं । राजा उस मंदिर का प्रधान रक्षक था । आबू पर्वत समीप में है । राजा वर्मलाल का सामन्त वज्रभट

1- बृहद् जैन शब्दार्णव, द्वितीय खण्ड, अमरोहा, पृ0-287

2- हिस्ट्री ऑफ सिरोही स्टेट, परिच्छेद 6 ।

इपिग्राफी इण्डिया, भाग9, पृ0 191 ।

सत्याश्रय का पुत्र राज्जिल उस प्रदेश का स्वामी था । राजा वर्मलात के अधीन ऐसे कितने ही सामन्त थे । राजा चाप वंश का था ।

शिलालेख से यह भी ज्ञात होता है कि राजा वर्मलात के समय तक प्रतिहार और राजस्थानी शब्दों का प्रयोग होने लगा था । राजस्थान का प्रान्त उस समय गुर्जरभूमि के वायव्य कोने मारवाड़ से लेकर आबू पर्यन्त था ।[1] भीनमाल कदाचित इस समय चावड़ों के हाथ से निकल कर प्रतिहारों के हाथ जा चुका था । इस समय चापवंशी अनहिलपाटन व भीनमाल के आस पास छोटे-मोटे राजाओं के साथ ही रहा । यह चापवंश का संभवत: अंतिम राजा था जो भीनमाल से अनहिल पाटन की ओर गये हुये राजा के ही वंश का था । अनहिल पाटन वाला संभवत: ज्येष्ठ भ्राता हो और वर्मलात कनिष्ठ भ्राता । यह कनिष्ठ अपनी छोटी सी जागीर रखते हुए बसन्तगढ़ को ही अपनी प्रधान राजधानी स्थापित कर रखा था। इस समय अरबों के अभियान या परस्पर विद्रोह आरम्भ हो गये थे ।· यह राजा शान्तिप्रिय था । जो कुछ भी इसे प्राप्त होता था उसी में संतुष्ट रहकर अपना शेष जीवन अच्छे सलाहकारों के मत से चला रहा था ।[2]

1- अयं भिनमाल नामा ग्रामो गुर्जर देशोत्तर सीम्नि मालव {मारवाड़} देशत: दक्षिण भाग आबूपर्वत लुणी नद्योर्मध्य तत् पर्वतात् वायुकोणे पंचयोजनान्तरे सम्प्रति प्रसिद्धि: ।

ब्रह्मस्फुट सिद्धान्त की भूमिका - प्रो0सुधाकर द्विवेदी, पृ० 85

2- ब्रह्मस्फुट सिद्धान्त - ब्रह्मगुप्त, पृ0 407

शिलालेख के पूर्ण अध्ययन से यह पता चलता है कि शिलालेख वर्ष 682 है यह वर्ष विक्रम संवत् या शक संवत् है ? कुछ भी इस पर अंकित नहीं है ।

पं0गौरी शंकर ओझा इसे विक्रमी संवत मानते हैं और इसे 625 ई0 का स्वीकार करते हैं ।[1] सिरोही के इतिहास एवं इपिग्राफी इन्डिया, में वसन्तगढ़ के इतिहास एवं अन्य पुस्तकों में भी ऐसी ही बातें दृष्टव्य हैं ।[2] परन्तु हिस्ट्री ऑफ मेडिवल इंडिया ने इसे शक संवत् स्वीकार किया है जिसके हिसाब से शिलालेख 760 ई0 का होना चाहिये । प्राप्त कुछ ऐतिहासिक तथ्य भी इसके प्रमाण हैं ।[3]

1- महाकवि माघ, उनका जीवन तथा कृतियाँ-डॉ0 मनमोहन लाल जगन्नाथ शर्मा, पृ0 सं0 9

2- हिस्ट्री ऑफ सिरोही स्टेट, परिच्छेद 6; इपिग्राफी इन्डिया, भाग 9, पृ0191। बृहद् जैन शब्दार्णव, अमरोहा, पृ0 287; संस्कृत साहित्य की रूपरेखा-चन्द्रशेखर पाण्डेय, संस्कृत साहित्य का इतिहास-सीताराम जयराम जोशी; संस्कृत साहित्य का इतिहास, बलदेव उपाध्याय; संस्कृत साहित्य का इतिहास-डॉ0 मंगलदेव शास्त्री ।

3- हिस्ट्री आफ मेडिवल हिन्दू इन्डिया-सी0वी0 वैद्य, अध्याय 12; इन्डियन ऐन्टीक्वेरी, पृ0 सं0 159; एडवान्स्ड हिस्ट्री आफ इन्डिया, मजूमदार एवं रायदत्ता, चौधरी, पृ0169; जैन परमपराओं का इतिहास-त्रिपुटीमहाराज, पृ534

इसके आधार पर कवि माघ का का समय सातवीं शताब्दी का अन्तिम भाग या आठवीं शताब्दी का आदि भाग मानना अधिक युक्तिसंगत है ।

2- हरिभद्र सूरि सम्बंधी जीवनवृत्त-

महाकवि माघके चाचा शुभंकर श्रेष्ठी थे । इनके पुत्र का नाम सिद्धर्षि था । सिद्धर्षि-हरिभद्र सूरि के शिष्य थे[1] । सिद्धर्षि को हरिभद्र सूरी का भागिनेय भी बताया गया है ।[2]

हरिभद्र सूरि के समयके सन्दर्भ में कई मत हैं -

1- मुनि श्री जिन विजय जी अपने साहित्य संशोधक पुस्तक में लिखते हैं कि हरिभद्र सूरी जी को सन् 778 से अर्वाचीन किसी तरह नहीं मान सकते ।[3] अत: सिद्धर्षि के समकालीन हरिभद्र सूरि नहीं ठहरते ।

2- हरिभद्र सूरि के ग्रन्थों में भर्तृहरि-वैयाकरण, कुमारिलमीमांसक, दिङ्‌नागाचार्य, धर्मकीर्ति, धर्मपाल, सिद्धसेन दिवाकर, जिनदास महत्तर, जिनभद्रवाणी, समन्तभद्र, कुमारिल के नाम दृष्टव्य है ।[4] यदि इन सबका समय आठवीं शताब्दी का पूर्वार्द्ध मान लिया जाय तो हरिभद्र का भी समय भी क्या वही मान लें ? कुवलय माला में भी हरिभद्र का नाम आया है ।

1- उपमितिभव प्रपंच कथा-सिद्धर्षि, श्लोक 16-20

2- जैन श्वेताम्बर मासिक हेराल्ड पत्रिका, जुलाई-अक्टूबर संयुक्त अंक, 1915

3- जैन साहित्य संशोधक-मुनि श्री जिन विजय, पृ०44

4- महाकवि माघ, उनका जीवन तथा कृतियाँ-डा०मनमोहन लाल जगन्नाथ शर्मा, पृ०50

3- कुवलय माला के लेखक उद्योतिनी सूरि उपनाम दाक्षिण्यचिहन स्वयंहरिभद्र के एक भांति के शिष्य थे । दाक्षिण्यचिहन ने अपने को तत्तायरिका की शिष्य परंपरा गुर्वावलि से बताया है । दाक्षिण्य चिहन का समय कुवलय माला के अनुसार 778 ई0 का है । इसी कुवलयमाला में हरिभद्र का भी जिक्र है । अतः हरिभद्र जी का समय 778 ई0 से पूर्व ही होना चाहिये ।[1]

4- "जैन परमपराओं का इतिहास" में भी हरिभद्र सूरी की जीवनी व तिथि देखने को मिली ।[2] इसके अनुसार हरिभद्र सूरी चित्रकूट नामक ब्रह्मपुरी के निवासी थे । इनकी माता का नाम गंगा और पिता का नाम शंकर भट्ट था । ये याकिनी साध्वी द्वारा जिनदत्त या जिन भद्र के निकट पहुंचे । आचार्य हरिदत्त जिनभद्र और वीर भद्र के शिष्य थे । आचार्य वीरभद्र आठवीं शती के बहुश्रुत आचार्य उद्योतिनी सूरि के समकालीन थे । जिन भद्र वीर भद्र के पितृव्य थे किन्तु जिन भद्र और वीर भद्र दोनों ही हरिभद्र जी के शिष्य थे - ऐसा अनेकान्त हरिभद्र सूरी लेख में उल्लिखित है ।

आचार्य हरिभद्र सूरी अवश्य ही सन् 728 ई0 के लगभग रहे हैं क्योंकि बौद्धाचार्य, धर्म कीर्ति, शैवाचार्य, भर्तृहरि, कुमारिल भट्ट आदि भी ई0सन् की 8वीं शताब्दी के विद्वान थे जिनका हरिभद्रसूरी के ग्रन्थों में स्पष्ट उल्लेख है । इससे स्पष्ट है कि हरिभद्र सूरि उनके पीछे हुये । जिनभद्र

1- महाकवि माघ, उनका जीवन तथा कृतियां - डॉ0मनमोहन लाल जगन्नाथ शर्मा, पृ0 50

2- जैन परम्पराओं का इतिहास - त्रिपुटी महाराज, पृ0 44।

के ये विद्याशिष्य थे किन्तु जिनदत्त से इन्होंने दीक्षा ली-अतः दीक्षा शिष्य हुये। दाक्षिण्य चिह्न (उद्योतिनी सूरि) वि0सं0835 (=778 ई(कुवलय माला की प्रशस्ति में लिखते हैं कि वीरभद्र मेरे सिद्धान्त गुरु थे तथा हरिभद्र न्यायशास्त्र के गुरु थे । सिद्धर्षि भी हरिभद्र को अपना गुरू मानते हैं ।

सिद्धर्षि से हरिभद्र बहुत बड़े थे - इसमें कोई सन्देह नहीं है । यदि सिद्धर्षि हरिभद्र सूरि के भानजे जो चित्तौड़ के राजा के पुरोहित थे तो कोई संदेह नहीं कि माघ कवि के चाचा का विवाह चित्तौड़ में हुआ हो । अतः यह संभव है कि महाकवि माघ का आना जाना चित्तौड़ में रहा हो । हरिभद्र सूरि अपने अंतिम समय में अपने बहनोई शुभंकर के यहाँ अथवा किसी जैन उपाश्रय में (क्योंकि भीन्न माल जैन धर्म का गढ़ था (रहने लग गये होंगे ।

उस समय युग प्रधान जैन साहित्यकार हरिभद्र सूरि ही थे । इस कथासार से यह पूर्णस्पष्ट है कवि माघ नवम शती के पूर्वार्द्ध तक अवश्य रहे होंगे।

बप्पभट्टि सूरि चरित से प्राप्त साक्ष्य -

प्रभाचन्द्र सूरीकृत प्रभावक चरित में ।।वाँ प्रबन्ध बप्प भट्टि-सूरिचरित है । बप्प भट्टि का जन्म तथा मृत्यु किस सम्वत् में हुयी - इसका

प्रमाण प्रबन्ध का अन्तिम श्लोक है ।[1]

इस श्लोक से विदित होता है कि बप्पभट्टि का जन्म वि०सं० 800 (= 743 ई०) में हुआ था और वह 95 वर्ष की लम्बी आयु प्राप्त कर वि० सं० 895 (= 838 ई०) में कालकवलित हुये । इससे हम इस तथ्य पर आ जाते हैं कि बप्प भट्टि आदि वराह प्रतिहार भोज के समय में अवश्य थे । आदि वराह प्रतिहार भोज (मिहिर भोज का राजत्व काल सन् 835 से 885 तक है । इस समय बप्प भट्टि पूर्ण युवक थे । बप्प भट्टि का भवभूति जो कि उत्तरराम चरितम् के रचयिता थे-से साक्षात्कार हुआ था (सं08।।) और भवभूति को बप्प-भट्टि ने जैनधर्म में दीक्षित करने की चेष्टा की थी ।[2] भवभूति यशोवर्मा के समय में

1- विक्रमत: शून्यद्वयवसुवर्षे (800) भाद्रपदतृतीयायाम् ।
रविवारेहस्तर्क्षे जन्माभूद बप्पभट्टिगुरो: ।। 739)
षड्वर्षस्यव्रतं चैकादशे वर्षे च सूरिता ।
पंचाधिकनवत्या च प्रभोरायु: समर्थितम् ।। 740 ।।
शरनन्द सिद्धिवर्षे (895) नभ:शुक्लाष्टमीदिने ।
स्वातिभेऽजनि पंचत्वमामराजगुरोरिह ।। 741 ।।
।। बप्पभट्टि सूरी चरितम् ।।

2- तस्माद् द्विगुणतन्त्रस्तं भूपं युद्धेऽवधीद्वली ।
तदावाक्पतिराजश्च बंदे तेन निवेशित: ।।
काव्यं गौडवधं कृत्वा तस्माच्चा स्वममोचयत् ।
कान्यकुब्जे समागत्य संगतो बप्पभट्टिना ।
स राजसंसदं नीतस्तुष्टुवे चेति भूपतिम् ।।
।। बप्पभट्टिसूरिचरितम्-अन्तिमश्लोक

भी थे । यशोवर्मा के समय में वाक्पतिराज जिन्होंने गौडवहो लिखा है, सभा पंडित थे और इन्हीं के साथ भवभूति का नाम भी उल्लिखित है । प्रभावक चरित में कान्यकुब्ज के राजा यशोवर्मा के दो पत्नियों का भी जिक्र है । इनकी एक पत्नी गर्भावस्था में अपने सौत के मत्सर से वन में इधर उधर भटक रही थी । एक दिन वह अपने नवजात शिशु के साथ भ्रमण करती हुयी भद्र कीर्ति जैन मुनि द्वारा देख ली गयी । भद्रकीर्ति जैन मुनि उस स्त्री की व्यथा सुनकर अपने आश्रम में उसे आश्रयदिये । यहीं पर उसके नवजात शिशु का पालन पोषण हुआ । वह "आम" नाम से पोषित होता हुआ समस्त शास्त्रों का ज्ञाता हुआ । इसी "आम्र" के बाल सखा बप्पभट्टि थे । किसी कारण वश जब आम के माता का निधन हो गया तो राजा यशोवर्मा ने आम को राज प्रासाद बुला लिया । राज प्रासाद जाते समय उसने बप्पभट्टि से कहा था-"बप्प भट्टे । प्रदास्यामि प्राप्तं तव राज्यं ध्रुवम्"[1] आम के राज्यसिंहासनारूढ़ होने पर बाणभट्ट को परमादर के साथ राज्य में बुलवाया गया । उस समय श्री सिद्धसेन मुनि जो हरि भद्रसूरि के समकालीन थे, भी साथ में थे ।[2]

उपर्युक्त वर्णन से यह स्पष्ट है कि बप्पभट्टि के समय में जैने धर्म का विस्तार बढ़ता जा रहा था । सिद्धर्षि के लेख से भी यह बात प्रमाणित है । सिद्धर्षि महाकवि माघ का चचेरे भाई थे । बप्पभट्टि के समय में भवभूति एवं वाक्पति राज दोनों ही विद्यमान थे । बप्पभट्टि सन् 743 ई0 से 843 ई० तक विद्यमान थे । अतः निश्चित ही वह हरिभद्र सूरी के समकालीन थे ।

1- महाकवि माघ का जीवन तथा कृतियाँ-डॉ0मनमोहनलाल जगन्नाथ शर्मा, पृ054

2- जैन परंपराओं का इतिहास-त्रिपुटी महाराज, पृ0534

4- सिद्धर्षि प्रबन्ध से प्राप्त साक्ष्य -

प्रभावक चरित में सिद्धर्षि प्रबन्ध है । इसके आधार पर तथा अन्य ग्रंथों के आधार पर सिद्धर्षि के सम्बन्ध में कुछ आवश्यक तथ्य इस प्रकार है।[1]

राजा वर्मलात के सुप्रभदेव नाम वाला मंत्री था । भीनमाल वर्मलात का राज्य था । सुप्रभदेव के दो पुत्र थे-दत्त और शुभंकर । दत्त का बालमित्र कुर्तीश्वर राजाभोज था । उसी दत्त के शिशुपालवध के रचयिता कवि माघ ब्राह्मी के गर्भ से हुये । दूसरे पुत्र शुभंकर श्रेष्ठी की पत्नी लक्ष्मी नाम वाली स्त्री से सिद्ध नामवाला पुत्र उत्पन्न हुआ । इसी सिद्ध का विवाह धन्या नाम वाली अतिरूप-वती स्त्री के साथ हुआ । यौवन प्रभुता धन सम्पत्ति ने सिद्ध के जीवन को दोष-पूर्ण कर दिया । जुआरी तथा वेश्यागामी यह सिद्ध रात्रि देर से आने लगा । एक दिन सिद्ध की माता लक्ष्मी ने देर से आने वाले पुत्र सिद्ध के लिये अपने घर का द्वार नहीं खोला और कहा जहाँ पर तुम्हारे लिये इस समय द्वार खुले हैं- वहीं पर जाओं । सिद्ध एक जैन उपाश्रय मे चले गये जहाँ पर द्वार खुले पड़े थे । प्रातः काल उसे ढूढ़ते-ढूढते शुभंकर श्रेष्ठी जैन उपाश्रय आये । सिद्ध ने घर न जाकर पिता से दीक्षा लेने के लिये आज्ञा लेने का हठ किया । शुभंकर ने आज्ञा दे दी । वज्रस्वामी के शिष्य वज्रसेन के चार शिष्य थे-योगेन्द्र, निवृत्ति, चन्द्र और विद्याधर इन चारों से चार शाखायें निकली । उनमें निवृत्ति शाखा से सूराचार्य हुये । सूराचार्य के शिष्य गर्गर्षि हुये । गर्गर्षि से सिद्ध दीक्षा लेकर सिद्धर्षि नाम से प्रसिद्ध हुये । सिद्धर्षि ने प्रसिद्ध ग्रन्थ 'उपमिति भव प्रपंच कथा' लिखी । इस सिद्धर्षि की

1- महाकवि माघ. उनका जीवन तथा कृतियाँ-
डॉ0मनमोहन लाल जगन्नाथ शर्मा, पृ044

उपमिति भव प्रपंच कथा संवत 926 (=869 ई0) में पूरी हुयी ।[1] इसी सिद्धर्षि के गुरूभाई दाक्षिण्य चन्द्र थे जिनका उपनाम उद्योतन सूरि था । इन्होंने कुवलय-माला की रचना की । इस रचना की समाप्ति शक सं0 700 (=983ई0) में हुयी ।

प्रभावक चरितकार ने सिद्धर्षि और दाक्षिण्य चन्द्र के मध्य वार्तालाप भी कराया है परन्तु कई विद्वानों का कहना है कि यह भेंट काल्पनिक है । दोनों व्यक्ति समकालीन नहीं हो सकते क्योंकि दोनों के मध्य पर्याप्त वर्षों का अन्तर है ।[2]

प्रभावक चरित और सिद्धर्षि के प्रशस्ति के अनुसार हरिभद्र सूरि सिद्धर्षि के धर्मबोध कराने वाले गुरू थे ।[3] सिद्धर्षि हरिभद्र सूरि राजपुरोहित चित्तौड़ के भानजे भी थे । यदि कुवलय माला के लेखक दाक्षिण्य चिह्न ने दुर्ग स्वामी से जिससे सिद्धर्षि ने भी पढ़ा था सिद्धर्षि के साथ ही साथ विद्या पढ़ी तब ये सिद्धर्षि के गुरु भाई हो जाते हैं । इस प्रकार सिद्धर्षि का समय नवमी शती का अन्त या दशमी शती का पूर्वार्द्ध होना चाहिये । इसी प्रकार कवि माघ का भी समय नवमी शती का अन्त या दशमी शती का पूर्वार्द्ध होना चाहिये ।

1- जैन परम्पराओं का इतिहास- मुनि श्रीदर्शन,ज्ञान, न्याय,विजय (त्रिपुटी महाराज), पृ0 562

2- बुलेटिन डी 7 एकेडमिक इम्परीयल, डी साइंसेस डी सेंट पीटसबर्ग- डॉ0मिरोनो,पृ019

3- महाकवि माघ,उनका जीवन तथा कृतियाँ-डॉ0मनमोहन लाल जगन्नाथ शर्मा, पृ0 46

5- श्रीमाल नगर की अवस्थिति, उसका तत्कालीन संस्कृति के निर्माण में योग तथा माघ से सम्बन्ध -

श्रीमाल पुराण के अनुसार श्रीमाल नगर (भिन्नमाल नगर) भी किसी समय बहुत बड़ा समृद्ध नगर रहा है।[1-2] यहाँ ब्राहमणों का कदाचित् बहुत प्रभाव रहा था। अतः उन्होंने स्कंद पुराण में श्रीमाल माहात्म्य भी सम्मिलित कर दिया। गौतम का आश्रम भी यहीं था। एक दिन गौतम ऋषि को अन्य ब्राहमणों ने अप्रसन्न कर दिया। परिणाम स्वरूप वे पंजाब की ओर चले गये और वहाँ महावीर के शिष्य होकर पुनः यहाँ आये और तब उन्होंने जैन धर्म का तीव्रता से प्रचार किया। इसी समय यहाँ की अवस्था बिगड़ने लगी। वहाँ पर जब से जैन धर्म बढ़ा, लक्ष्मी की कमी होने लगी। अन्त में यहाँ से लोग गुजरात को चले गये। श्रीमाल में जैन धर्म का वास्तविक समय वि०सं०835 (=778 ई०) उद्योतन सूरि की पुस्तक कुवलय माला कथा से ज्ञात होता है। इसकी प्रशस्ति में अपनी गुरु परम्परा को बतलाते हुये वे लिखते हैं कि उनके पूर्वज शिवचन्द्र गणी महत्तर पंजाब के पव्वइया नगर से जिन नन्दिन की तीर्थयात्रा के प्रसंग में भिन्नमाल नगर पधारे और यहीं रहने लगे। इस प्रसंग में गौतम ऋषि के द्वारा यहाँ पर जैन धर्म के प्रचार का उल्लेख है।

1- श्रीमाल माहात्म्य, 2/22-23, 9/1-24, 9/72, 10/58, 12/22, 12/71

2- जैन परम्पराओं का इतिहास-मुनिश्रीदर्शन, ज्ञान, न्याय, विजय जी, पृ०सं०542

3- यशस्तिलकखण्ड इण्डियन कल्चर — के०के०हान्डिक, पृ०सं०29

उक्त उल्लेख से वह कार्य शिव चन्द्र गणी और उनकी शिष्यसन्तति द्वारा अग्रसर हुआ । शिवचन्द्र भी पंजाब से यहाँ आये ।

भिन्नमाल के निवासी श्रेष्ठ तोड़ा की 16वीं सदी की वंशावली के अनुसार उस वंश के पूर्वज ने सं0 775 (=718 ई0) में जैन धर्म का प्रतिबोध पाया था । उक्त वंशावली का प्रमाण भी साहित्यों में सुलभ है ।[1]

श्रीमाल माहात्म्य की रचना का समय बहुत पीछे का है । माहात्म्य में तपागच्छ का उल्लेख दो बार हुआ है जो श्वेताम्बर जैनियों के 84 गच्छों में से एक है । सं0 1285 (=1228 ई0) में तपागच्छ की उत्पत्ति हुयी थी और 14वीं शती में इसका प्रभाव बहुत अधिक विस्तार में हुआ । उधर उस नगर के भी हीन होने व यहाँ के लोगों के गुजरात की ओर जाने के निर्देश से भी इसकी पुष्टि होती है । यद्यपि 9वीं शताब्दी से गुजरात की राजधानी पव्वु हो जाने से व वहाँ की श्रीवृद्धि होने से हजारों कुटुम्ब यहाँ से उधर जाने लगे और गुजरात के इतिहास में श्रीमाल व पोरवाड़ जैनों का प्रभुत्व बढ़ता जा रहा था ।[2] पर 14वीं शती तक श्रीमाल नगर के अच्छी अवस्था में विद्यमान होने का यहाँ के प्राप्त शिलालेखों व खण्डहरों से पता लगता है । अतः इसे श्रीमाल पुराण निर्माण की पूर्व सीमा मानना चाहिये ।

1- महाकवि माघ, उनका जीवन तथा कृतियाँ-डा0मनमोहन लाल जगन्नाथ शर्मा, पृ065

2- जैन परंपराओं का इतिहास-मुनि श्रीदर्शन, ज्ञान न्याय, विजय जी, पृ0सं054 ।

श्रीमाल माहात्म्य में श्रीमाल के कई नामों का वर्णन है -सतयुग में श्रीमाल, त्रेता में पुष्पमाल और कलयुग में भिन्नमाल या भीनमाल ।[1] चौथा नाम पुराण एवं प्रबन्ध चिन्तामणि में सम्राट श्रीपुंज और उसकी पत्नी श्रीमाता से सम्बद्ध कहानी में रत्नमाल कहा गया है ।[2] श्रीमाल का नाम भीनमाल वैसे 13वीं शताब्दी में श्रीहीन होने से पड़ा । प्रभावक चरित के अनुसार श्रीमाल का भिन्नमाल नामकरण माघ कवि को निर्धनावस्था में देखकर राजा भोज ने किया प्रबन्ध चिन्तामणि में भी ऐसा ही उल्लिखित है । वि0सं0 733 (=676 ई0) में रचित निशीथ चूर्ण से वि0सं0 835 (=778 ई0) की कुवलयमाला से, वि0सं0 962 (=905 ई0) की उपमिति भवप्रपंच कथा में इसका नाम भिन्नमाल ही मिलने से उपर्युक्त दोनों कारण काल्पनिक ही प्रतीत हो रहे हैं । भिल्लों की बस्ती होने से इसका नाम भिल्लमाल प्राचीन व प्रसिद्ध रहा होगा ।[3]

श्रीमाल नगर के इतिहास के अध्ययन से यह पता चलता है कि जैनधर्म के विस्तार होने से लक्ष्मी की कमी होने लगी और नगर श्रीहीन होने लगा। यहाँ के नागरिक यहाँ से पलायन कर गुजरात पहुँचने लगे । तब श्री माल का वास्तविक रूप समाप्त सा होने लगा । यह समय 9वीं शताब्दी का है । कवि माघ के समय कुछ ऐसी ही स्थिति थी । राजाओं के राज्यों में परिवर्तन हो रहे थे ।

1- महाकवि माघ, उनका जीवन तथा कृतियाँ-डॉ0मनमोहनलाल जगन्नाथ शर्मा, पृ059

2- श्रीमालमाहात्म्य, 10/58

3- राजस्थान का एक प्राचीन नगर-शोधपत्रिका, भाग3, अंक 1, उदयपुर, आश्विन, 2008

एक शक्ति नष्ट हो रही थी, दूसरी का आतंक छा रहा था । लोगों का पलायन हो रहा था -उनका नाश भी हो रहा था इत्यादि-2 । अतः निश्चय ही कवि माघ का समय नवीं शताब्दी का होगा ।

6- माघ का भोज से सम्बन्ध -

भोजप्रबन्ध, प्रबन्ध चिन्तामणि, पुरातन प्रबन्ध संग्रह एवं अन्यान्य बहुत सी कहानियों व तथ्यों से माघ कवि के भोज के साथ सम्पर्क का परिचय मिलता है ।[1] किसी कथा में माघ को भोज का बालमित्र कहा गया है तो किसी कथा में उन्हें भोज के दरबार का कवि कहा गया है । कुछ भी हो इन सब ग्रन्थों में अथवा जनश्रुतियों में जो भोज का सम्बन्ध माघ से बताया गया है उसका कोई सत्य आधार अवश्य है । कहा भी गया है -"नामूल जनश्रुतिः"।

भारतवर्ष में भोज नाम के अनेक राजा हुये हैं । भोज नामक वंश के वर्णन के साहित्यिक साक्ष्य मिलते हैं जिनमें कुछ राजा हुये हैं- वे भी भोज नाम से प्रसिद्ध हैं । इन प्रख्यात भोज राजाओं में से केवल तीन ही भोज प्रख्यात-नामा एवं इतिहास प्रसिद्ध हुये है जो अपने बुद्धि बल तथा वैभव में अद्वितीय थे । प्रथम-धार नगरी वाले परमार वंश के राजा भोज, द्वितीय चित्तौड़ के राजा भोज, तृतीय मिहिर भोज ।

1- महाकवि माघ, उनका जीवन तथा कृतियाँ-

डॉ०मनमोहन लाल जगन्नाथ शर्मा, पृ० 64 ।

परमार राजा भोज -

परम भट्टारक, महाराजाधिराज, परमेश्वर मालव चक्रवर्ती, त्रिभुवन-नारायण, धारेश्वर, परमार नरेश भोज मुंज के द्वितीय भ्रातृक थे। मुंज ने जीवित-अवस्था में ही भोज को गोद लिया था। अतः मुंज की मृत्यु के पश्चात् भोज गद्दी पर बैठे। अल्पायु होने के कारण भोज के वास्तविक पिता सिन्धुराज मालवे की गद्दी पर बैठे। सिन्धुराज युद्ध में जब मारे गये तब भोज सन् 1010 में मालवा पर सिंहासनारूढ़ हुये। यह विद्वान् थे। विद्वानों के आश्रयदाता एवं प्रतापी शासक थे। दन्त कथाओं के आधार पर शकारि विक्रमादित्य के पश्चात् इन्हीं का नाम लिया जाता है। इनका राज्य हिमालय से मलयाचल तक और उदयाचल से अस्ताचल तक विस्तृत था।

यही बात उदयपुर की प्रशस्ति में लिखी है।[1] राजा भोज के चाचा मुंज ने मेवाड़ पर आक्रमण किया और वहाँ के आहाड़ नामक गाँव को नष्ट किया। तब से ही चित्तौड़ और मालव दोनों से मिला हुआ मेवाड़ का प्रदेश मालव नरेशों के अधीन था। भोज बड़े धार्मिक थे। उनके बनाये हुये धर्मस्थानों मे से एक शिव मन्दिर है। यह चित्तौड़ के किले में है। इसमें प्रतिष्ठित शिव प्रतिमा का नाम भोज ने भोज स्वामी देव रखा। यह बात चित्तौड़ से प्राप्त हुये

1- आकैलास न्मलय शिरितोऽस्तोदयाद्रिद्वयादा।
मुक्ता पृथ्वी पृथुनरपतेस्तुल्यरूपेण येन ।।

-इपिग्राफिया इन्डिया, भाग 1, पृ0 235

वि0 सं0 1358 (ई0 1301) के लेख में लिखे " श्रीभोज स्वामी देवो जयति" इस वाक्य से सिद्ध होती है।[1] चीरवासे से प्राप्त वि0सं0 1330 (=1273 ई0) का एक और लेख मिलता है जो उपर्युक्त तथ्य को प्रमाणित करता है।[2] आजकल यह मन्दिर अद्भुत जी के नाम से प्रसिद्ध है। इसका जीर्णोद्धार महाराज मोकल जी ने सन् 1428 ई0 में कराया। अतः इसे मोकल जी का मन्दिर भी कहा गया है। भोपाल (भोजपुर) की बड़ी झील भी इस भोज की ही बनायी हुयी है। इस प्रकार यह राजा भोज शैव मतानुयायी हुआ। मेरूतुंग ने अपनी प्रबन्ध चिन्तामणि में माघ की कथा लिखी है कि माघ ने राजा भोज का घर आने पर सत्कार किया था और उसने ऐसा करने में कोई बात उठा न रक्खी। कुछ दिन वहाँ रहकर राजा भोज जब लौटा तब इस अतिथि सत्कार के एवज में उसने अपने बनते हुये भोजस्वामी[3] के मन्दिर का पुण्य माघ को दे दिया।

1- महाकवि माघ, उनका जीवन तथा कृतियाँ-डॉ0मनमोहन लाल जगन्नाथ शर्मा, पृ06[illegible]

2- श्री चित्रकूट दुर्गे रचित त्रिभुवन नारायणरत्यदेवगृहे।
श्री भोजराजरचित त्रिभुव नारायवाख्यदेव गृहे।
योविरचयतिस्म सदाशिवपरिचर्या स्वशिवाप्सुः।

- विएनाओरियन्टल जर्नल, भाग 21,. पृ0 143

3- भोज ने चित्तौड़ के किले पर जो शिवमन्दिर बनाया था-उस मन्दिर नाम भोजस्वामीदेव रखा जो त्रिभुवननारायण देव मन्दिर कहलाया और आज वही अदबद जी का मन्दिर या मोकल जी का मन्दिर जीर्णोद्धार करने से कहलाता है। माघ की कथा में भोजस्वामी का मन्दिर का पुण्य माघ को राजा भोज ने प्रदान किया "स्वयं करिष्यमाणनव्य भोजस्वामी प्रसाद प्रदत्त पुण्यो माल-मण्डलं प्रतिप्रतस्थे।" धाराधिपति इस भोज के समय में तो हमारे महाकवि माघ का होना असम्भव सा है। इसके कितने ही प्रमाण प्राप्त हो चुके हैं। अतः यह भोज दूसरे ही थे।

अत: यदि महाकवि माघ धारा नगरी वाले राजा भोज के समय में होंगे तो इस प्रकार उनका समय 11वीं शताब्दी आता है । परन्तु निम्न स्रोतों से प्राप्त साक्ष्य धारा नरेश परमार भोज से माघ की समकालिकता का खण्डन करते हैं ।

1- सोमदेव ने अपने काव्य में महाकवि माघ का उल्लेख किया है ।[1] सोमदेव का यह काव्य यशस्तिलकचम्पू के नाम से विख्यात है । इसकी रचना 959 ई0 में हुयी है ।

2- श्री आनन्दवर्धन (850 ई0) में अपने ध्वन्यालोक में शिशुपालवध महाकाव्य के श्लोको को उद्धृत किया है ।[2-3]

1- यशस्तिलक चम्पू - सोमदेव, आ0 4, पृ0 13

2- रम्या इति प्राप्तवती: पताका रागं विविक्ता इति वर्द्धयन्ती: ।
यस्यामसेवन्त नमद्वलीका: समं वधूभिर्वलभीर्युवान: ।।

शिशुपालवध, 3/53

3- त्रासाकुल: परिपतन्परितो निकेतान्
पुंभिर्न कैश्चिदपि धन्विभिरन्वबन्धि ।
तस्थौ तथापि न मृग: क्वचिदङ्गनानामा-
कर्णपूर्णनयनेषुहतेक्षणश्री: ।।

शिशुपालवध, 5/26

3- राष्ट्रकूटों के राजा नृपतुंग (सन् 814 ई0) में अपनी कन्नड़ भाषा में जो ग्रन्थ कविराज मार्ग लिखा है उसमें माघ को कालिदास के समकालीन स्वीकार किया है ।[1] इससे ज्ञात होता है कि नृपतुंग के समय नवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में माघ ने साहित्य संसार में प्रतिष्ठा प्राप्त कर ली थी । नृपतुंग 814 ई0 से 880 ई0 तक विद्यमान थे । ये ही अमोघवर्ष प्रथम के नाम से प्रसिद्ध हैं ।

4- माघ कवि शिशुपालवध महाकाव्य के बीसवें सर्ग के अन्त में कवि वंशवर्णन में लिखते हैं कि उनके पितामह सुप्रभदेव के आश्रयदाता राजावर्मलात थे । राजा वर्मलात का बसन्तगढ़ शिलालेख प्राप्त है । उसे विद्वानों ने स0 760 ई0 का स्वीकार कियाहै । सुप्रभदेव जो राजा वर्मलात के प्रधान सचिव थे सन् 760 ई0 तक अवश्य विद्यमान थे । उनके पुत्र दत्तक सन् 800 ई0 के लगभग विद्यमान होने चाहिये । सन् 760 तक वर्मल युवावस्था पार कर चुके होंगे और जब वे वृद्ध होंगे तब सुप्रभदेव मंत्री होंगे । सुप्रभदेव सन् 780 ई0 तक होंगे तब माघ शैशवावस्था में अवश्य होंगे ।

इस भांति बहिरंग प्रमाणों से तो माघ को 11वीं शताब्दी में किसी भी अवस्था में नही रखा जा सकता फिर धारा नगरी के राजा भोज के समय में कैसे रखा जा सकता है ? धार नगरी के राजा भोज के समय में महाकवि माघ का होना नितान्त असंभव सा है ।

1- महाकवि माघ, उनका जीवन तथा कृतियाँ - डॉ0मनमोहन लाल जगन्नाथ शर्मा, पृ0 7।

2- भोज (कर्ण)

कहा जाता है कि बापारावल ने चित्तौड़ पर विजय प्राप्त कर लेने के पश्चात् सौराष्ट्र प्रस्थान किया और इधर वनराज चावड़ा की बहन के साथ विवाह किया । इस रानी से अपराजित नामक लड़के का जन्म हुआ । अपराजित अपराजित ही रहे । उनके दो पुत्र हुये -ज्येष्ठ खल भोज और कनिष्ठ नन्द कुमार । खल भोज युद्धप्रिय थे और ये ही अपराजित के उपरान्त चित्तौड़ पर सिंहासनारूढ हुये और ये ही भोज (कर्ण) के नाम से विख्यात हुये । इनका शासन काल 786 से 809 ई0 तक था । अपने शासनावधि में इन्होंने एक झील का निर्माण कराया तथा एक लिंग शिवजी के मन्दिर का निर्माण कराया ।

चित्तौड़ के यह भोज बड़े दानवीर थे इसीलिये इन्हें कर्ण की भी उपमा दी जाती होगी । एकलिंग का मन्दिर जो भोज स्वामीदेव मन्दिर् भी कहलाता है तथा सूर्य का अतिप्राचीन मंदिर जो आज कालि का मन्दिर कहलाता है-कदाचित् इन्हीं भोज का बनाया हुआ वह मंदिर हो । यदि ऐसा है तो इन्हीं चित्तौड़ वाले भोज से माघ का स्नेहाभाव रहा हो तो कोई आश्चर्य नही है भोज के चीरवासे के शिलालेख में ऐसा वर्णन मिलता है । इनका राज्य भी माल-वातक फैला हुआ था । जिस समय ये थे उस समय भोज प्रतिहार सिंहासनासीन न थे । हरिभद्र सूरी कर्णभोज के पिता के पुरोहित होंगे । माघ और चित्तौड़ वाले भोज में अवश्य मैत्री भाव रहा होगा किन्तु वह मिहिर भोज के आश्रित

रहे होंगे । ऐसे तथ्य भोज प्रबन्ध एवं प्रबन्ध चिन्तामणि से प्राप्त होते हैं । इन सब में कुछ न कुछ सत्य अंश अवश्य है । संस्कृत साहित्य के इतिहास के लेखक श्री सीताराम जोशी लिखते हैं कि द्वितीय भोज 650 से 675 ई0 तक चित्तौड़ पर सिंहासनासीन थे और माघ उन्हीं के समय के थे । परन्तु डॉ0 जोशी का मत असंभव प्रतीत होता है क्योंकि बापारावल सन् 739 ई0 में चित्तौड़ आये । इनसे पहले किसी भोज की उपस्थिति नहीं स्वीकार की जा सकती है ।[1]

3- मिहिर भोज ﴾प्रतिहार﴿

प्रतिहार वंश के यह राजा भोज चित्तौड़ पर सन् 835 ई0से 885 ई0 तक सिंहासनासीन थे ।[2] उस समय उनके राज्य की सीमा उत्तर प्रदेश, पूर्वी सतलज का पंजाब प्रान्त, उज्जैन, राजस्थान, ग्वालियर, मालवा गुजरात और काठियावाड़ थी । बुंदेल खण्ड के चन्देल उनके सामन्त थे ।[3]

मिहिर भोज ने अपना उपनाम आदि बराह रखा था । उसके पताका में वराह का चिह्न भी रहता था । उसके शासनकाल के पाँच शिलालेख प्राप्त हुये हैं और अनेक चाँदी, सोने के सिक्के तथा ताम्रपत्र मिले हैं । सिक्कों पर एक ओर महादिवराह है तो दूसरी ओर धनुष ﴾ चाप﴿का चिह्न भी है ।

1- महाकवि माघ, उनका जीवन तथा कृतियाँ- डॉ0मनमोहन लाल जगन्नाथ शर्मा, पृ07।

2- उदयपुर राज्य का इतिहास-गौरी शंकर ओझा, पृ013।

3- हिस्ट्री आफ मेडिवल इंडिया-सी0वी0वैद्य, पृ0357

माघ कवि ने अपने महाकाव्य शिशुपाल वध में स्थान-स्थान पर वराह, आदि वराह, महावराह शब्दों का तो प्रयोग किया ही है जैसा उनके श्लोकों से विदित हो जाता है[1-10] किन्तु एक श्लोक में तो यहाँ तक कह दिया है कि सब प्रकार से सुयोग्य आप जैसे राजा के रहते हुये दूसरा कौन ऐसा है जो क्षत्रिय राजाओं की प्रशस्ति के अनुरूप राजसूय यज्ञ का अनुष्ठान कर सकता है । भला इस धरती को ऊपर उठाने की क्षमता श्री वराह को छोड़कर अन्य किस पुरुष में है ?[11]

1- हेलयोद्धृतं फणाभृताछादनमेकमोकसः । शिशुपालवध, 1/34

2- श्रीवराहमपहाय योग्यता । शिशुपालवध, 14/14

3- आद्यकोलतुलितां । शिशुपालवध, 14/43

4- स्थूल नासिक वपुर्वसुन्धराम् । शिशुपालवध, 14/71

5- यःकोलतां विभ्रतदंष्ट्राम् । शिशुपालवध, 14/86

6- प्रलयार्णकोत्त्थित इवादिशूकरः । शिशुपालवध, 15/5

7- मण्डलं गोर्वराहः । शिशुपालवध, 18/25

8- कोलकेलिकेलःकिल । शिशुपालवध, 19/98

9- समुद्धृतरसो । शिशुपालवध, 19/116

10- सलिलार्द्र वराह देव । शिशुपालवध, 20/33

11- त्वत्सुराज्ञि भवति स्थिते पुनः कः क्रतुं यजतु राजलक्षणम् ।
उद्धृतो भवति कस्य वा भुवः श्रीवराहमपहाय योग्यता ।।
शिशुपालवध, 14/14

इस श्लोक से संकेत मिलता है कि माघ श्री वराह नामधारी किसी नृप के आश्रय में रहे होंगे और वह नृप भी युधिष्ठिर की भाँति दानी, धार्मिक गुणग्राही यज्ञ-कर्ता, एवं सम्राट की पदवी को सुशोभित कर रहा होगा । धरती को ऊपर उठाने की क्षमता पराक्रमी, यशस्वी एवं सब भाँति से सुयोग्य पुरुष में ही होती है ।

मिहिर भोज चित्तौड़ पर महा कवि माघ के समय सिंहासनारूढ़ था । वह पराक्रमी था तथा भगवती एवं सूर्य का उपासक था । शिलालेखों से उसका दान परिचय प्राप्त होता है किन्तु सिक्कों के एक ओर के चाप चिह्न से उसके पराक्रमी होने का अथवा चापवंश (प्रतिहार वंश) का होने का प्रमाण मिलता है ।[1] यदि माघ कवि वराह के समय में न होते तो अपने श्लोकों में जैसे सर्ग के अन्त में श्री शब्द को किसी भी रूप में लाकर रखे हैं उसी भाँति वराह शब्द को भी लाकर न प्रदर्शित करते । उपर्युक्त कथन से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि महाकवि माघ प्रतिहार वंशीय मिहिर भोज राजा के समकालीन थे जिसकी पुष्टि भोजप्रबन्ध, प्रबन्ध चिन्तामणि और प्रभावक चरित में उल्लिखित माघ विषयक सामग्री से पूर्णतः परिपुष्ट हो जाती है ।

7- <u>न्यायमंजरी से प्राप्त साक्ष्य -</u>

प्रसिद्ध नैयायिक जयन्तभट्ट जो कश्मीर नरेश शंकर वर्मा के समकालीन थे,

---

1- महाकवि माघ, उनका जीवन तथा कृतियाँ -

डॉ0मनमोहन लाल जगन्नाथ शर्मा, पृ0 79

ने अपने ग्रन्थ न्यायमंजरी में सविकल्पक प्रत्यक्ष को समझाने के लिये माघ के चय-
स्त्विषाम्[1] आदि प्रसिद्ध श्लोक को उद्धृत किया है । जयन्त भट्ट का समय राज-
तरंगिणी के साक्ष्य के आधार पर नवम् सदी का उत्तरार्ध और दशम सदी का
पूर्वार्द्ध सिद्ध किया गया है । इस आधार पर माघ 850 ई० से परवर्ती नहीं कहे
जा सकते हैं ।

इस प्रकार बहिः साक्ष्यों के आधार पर माघ का समय 7वीं
शताब्दी से चलकर ।। वीं शताब्दी तक पहुँचता है ।

{ब} अन्तः साक्ष्य -

शिशुपालवध महाकाव्य में कवि माघ ने अपने कुल के विषय में
सब कुछ सांकेतिक रूप में बता दिया है ।[2] तात्कालिक, राजनैतिक, सामाजिक तथा

1- यथा माघेन वर्णितम्-चयस्त्विषामित्यवधारितं पुरा, ततःशरीरीति विभा-
विताकृतिम् । विभुर्विभक्तावयवं पुमानिति क्रमादमुं नारद इत्यबोधि सः ।" इति
न्याय-मन्जरी, आह्निक 2

2- सर्वाधिकारी सुकृताधिकारः श्री वर्मलाख्यस्य बभूव राज्ञः ।
असक्त दृष्टिर्विरजाः सदैव देवोऽपरः सुप्रभदेवनामा ।। 1 ।।
कालेमितं तथ्यमुदर्कपथ्यं तथागतस्येव जनः सचेताः ।
विनानुरोधात्स्वहितेच्छयैव महीपतिर्यस्य वचश्चकार ।। 2 ।।
तस्याभवद्दत्तक इत्युदात्तःक्षमी मृदुर्धर्मपरस्तनूजः ।
यं वीक्ष्य वैयासमजातशत्रोर्वचो गुणग्राहिजनैः प्रतीये ।। 3 ।।
सर्वेण सर्वाश्रय इत्यनिन्द्यमानन्दभाजा जनितं जनेन ।
यश्च द्वितीयं स्वयमद्वितीयो मुख्यः सतां गौणमवाप नाम ।। 4 ।।
श्रीशब्दरम्यकृतसर्गसमाप्तिलक्ष्म,
लक्ष्मीपतेश्चरितकीर्तनमात्रचारु {चारु माघ} ।
तस्यात्मजः सुकविकीर्तिःदुराशयाऽदः,
काव्यं व्यधत्त शिशुपालवधाभिधानम् ।। 5 ।।
शिशुपालवध, कवि वंशख्याति, 1-5

धार्मिक स्थिति की पृष्ठभूमि में शिशुपालवध काव्य के आत्मकथा वाले ये श्लोक महाकवि की जीवनी पर पर्याप्त प्रकाश डालते हैं ।[1]

माघ काव्य में आयी हुयी कवि यशः प्रशस्ति माघ के जीवन काल को सुनिश्चित करने में तो योग दे ही रही है किन्तु साथ में ही कवि के काव्य लिखने के उद्देश्य को भी बता रही है । उदाहरण के रूप में प्रथम 19वें सर्ग का अन्तिम श्लोक की टीका लिया जाय । इस श्लोक में कवि ने बड़ी चतुराई से "माघ काव्यमिदं" और "शिशुपालवधः" तो लिखा जो स्पष्ट है किन्तु साथ में ही उन्होंने उसी चतुराई के साथ अपने जन्म स्थान का भी नाम रख दिया है । कवि ने जब-जब भी अपने विषय में कहा है वहीं पर समासोक्ति अथवा अन्य अलंकारों का प्रयोग किया है । इस श्लोक को ध्यान से पढ़ने पर स्वतः ज्ञात हो जाता है कि कवि यहाँ गुर्जर प्रतिहार राजा की ओर संकेत कर रहा है जिसने सन् 755 से 800 ई0 तक भीनमाल, जालौर, कन्नौज और मालवा पर अपनी सुदृढ़ शक्ति से शासन किया था ।

अनेक बहिः साक्ष्यों से यह पता चलता है कि महाकवि माघ का जन्म सन् 744 से 800 ई0 के मध्य में कभी भी हुआ और इसी काल के आस पास

1- सत्वं मानविशिष्टमाजिरभसादालम्ब्यभव्यः पुरो
लब्धा धक्षयशादिरस्तुरतरश्रीवत्सभूमिर्मुदा ।
मुक्त्वा काममपास्तभीः परमृगव्याधः सनादं हरे-
रेकोधैः समकालमभ्रमुदयी रोपैस्तदा तस्तरे ।।

शिशुपालवध, 19/120

यथासमय उनकी मृत्यु हुयी ।[1] माघ कवि को सन् 880 ई0 से न आगे रख सकते हैं और न सन् 744 ई0 के पूर्व ही रख सकते हैं । यह युग भारतीय इतिहास में आन्तरिक संघर्षों का युग है । जब तक वे जीवित रहे उन्होंने अपने सम्मुख कितनी ही लड़ाइयों को होते हुये देखा । अपने जीवन काल में उन्होंने प्रतिहारों की शक्ति को देखा । वत्सराज प्रतिहार अपूर्व शक्तिशाली था । वत्सराज ने अपना प्रभुत्व उस भूमि की ओर इतना जमा लिया था कि वह भूमि वत्स भूमि ही थी जिसकी ओर आँख उठाने की किसी की सामर्थ्य नहीं थी । वह उस वत्सभूमि की सीमा को आगे से आगे बढ़ाता जा रहा था । भीनमाल उस वत्सभूमि की राजधानी थी । यह वह वत्स देश नहीं है जिसकी राजधानी कौशाम्बी थी । इस वत्सराज ने वीरता पूर्वक युद्धों में विजय प्राप्त करके वत्सभूमि को सदा उन्नतशाली बनाया और कन्नौज तक अपना अधिकार प्राप्त कर लिया । सन् 800 के पश्चात् नागभट्ट द्वितीय सिंहासनारूढ़ हुआ जिसकी नागावलोक वाली सेना अजेय थी । उसने अधिक समय तक राज्य नहीं किया । सन् 834 में लगभग 35 वर्ष की अवस्था में मिहिर-भोज प्रतिहार वंश के नाम को सूर्य की भांति प्रकाशित करने के लिये सिंहासनासीन हुये । हमारे महाकवि माघ उस समय अवश्य थे । महाकवि माघ ने आत्मकथा के रूप में ऐसे कई श्लोक रचे हैं जिनसे यह प्रमाणित होता है कि वह मिहिरभोज के समकालीन थे ।[2]

1- सर्वंकषा - मल्लिनाथ, पृ0 770

2- शिशुपाल वध, 14/14, 18/25, 20/33, 14/10

महाकवि माघ वत्सराज प्रतिहार से लेकर आदि वराह भोज तक जीवित रहे और उन्हीं राजाओं के समय की बहुत सी बातें इस शिशुपाल वध में किसी न किसी रूप में अवश्य विद्यमान हैं। प्रतिहार राजा की प्रशंसा में अपनी जन्मभूमि का संकेत उन्होंने वत्सभूमि के रूप में किया है जो भीनमाल या श्रीमाल है। इस श्लोक के दो श्लिष्ट अर्थ हैं।[1]

कल्याणमूर्ति, अविनाश कारी, शुक्लता को प्राप्त, श्रीवत्सचिहन् से सुशोभित, उन्नत हृदय, अत्यन्त निर्भय शत्रुरूपी हिरणों के लिये व्याघ्ररूप, नित्य अभ्युदय शील भगवान् श्रीकृष्ण ने पहले युद्ध के अनुराग से प्रेरित होकर अहंकारयुक्त बल का आश्रय लेकर तथा उत्साहपूर्वक सिंहनाद करके एक समय में ही तथा एक ही बार में बहुत से बाणों को फेंक कर तत्काल आकाश को आच्छादित कर दिया।

अत्यन्त योग्य, पापात्मा शत्रुओं के नाश कर देने से निश्चिन्तता को प्राप्त श्री सम्पन्न वत्सभूमि (भीनमाल, जालौर आदि का प्रान्त) को उन्नति-पहुँचाने वाले, अत्यन्त निर्भय, शत्रुरूप हिरणों के लिये व्याघ्रस्वरूप, नित्य ही अभ्युदयशील उस गुर्जर प्रतिहार (वत्सराज अथवा नागभट्ट द्वितीय अथवा मिहिर भोज) ने प्रथम युद्ध के विजय से प्रोत्साहित होकर अहंकार युक्त बल का आश्रय लेकर तथा उत्साहपूर्वक सिंह गर्जना करके एक ही समय में तथा एक ही बार में बहुत से बाणों को फेंक कर उसी समय आकाश को ढक दिया।

1- शिशुपालवध।

गुर्जर प्रतिहार वंश की नींव डालने वाले यद्यपि नागभट्ट प्रथम थे किन्तु उनके पश्चात् वत्सराज बड़े ही शक्तिशाली शासक हुये हैं । उनके उपरान्त नागभट्ट द्वितीय । उन्होंने पिता के राज्य को और अधिक बढ़ाया यद्यपि इनका शासन काल इतना लम्बा न रहा । वत्सराज का प्रभाव इतना था कि उन्हीं के नाम से वह देश कुछ काल तक वत्स भूमि कहलाने लगा । इस वत्सभूमि की सीमा को उन्नति की चरम सीमा पर पहुँचाने वाले नागभट्ट द्वितीय थे जो नागावलोक या नाहड़ के नाम से भी ख्याति प्राप्त हैं । इन्होंने कन्नौज का राज्य प्राप्त किया । इनके उपरान्त मिहिर भोज शक्तिशाली शासकों में प्रसिद्ध हुये ।

सम्भवतः इन्हीं गुर्जर प्रतिहार का गुणानुवाद प्रतिहार राज के सन्दर्भ में माघ कवि कर रहे हों जो अपनी वत्सभूमि को उन्नति पर पहुँचा रहे थे ।

इस प्रकार अन्तः साक्ष्य के आधार पर कवि माघ का समय सन् 800 से 900 ई० के मध्य होना चाहिये ।

(ग) अभिसाक्ष्य -

माघ से सम्बद्ध युगों की सांस्कृतिक पृष्ठभूमि

भिन्न-भिन्न आलोचकों, विद्वानों एवं पुरातत्व विशेषज्ञों ने महाकवि माघ के सही काल निर्धारण के अभाव में माघ कालीन संस्कृति कालके सम्बन्ध में अनेक मत प्रस्तुत किये और उन्हें ऐतिहासिक पृष्ठभूमि में प्रस्तुत करने में कई बाधायें उपस्थित हुयीं । महाकवि माघ राजा भोज के सम सामयिक थे । भोज कई थे-उन में वह भोज कौन थे जिनका सम्बन्ध माघ कवि से है । प्रसिद्ध भोज धार में 11वीं शताब्दी में हुये थे जो स्वयं महाकवि, संस्कृतज्ञ, परम विद्वान् एवं दानवीर थे । इनके दरबार में कवियों की भीड़ सी लगी रहती थी । भोज

प्रबन्ध के अनुसार माघ, कालिदास, भवभूति मयूर और बाण आदि भोज के राज्य में थे । कालिदास का का काल महाराज विक्रम का अथवा महाराज चन्द्रगुप्त का काल मानना होगा किन्तु कालिदास नाम के कई व्यक्ति हुये हैं । राजतरंगिणी में मातृगुप्त को ही कालिदास बताया गया है ।[1] कालिदास और भवभूति का साहित्य में साक्षात्कार कराया गया है । भवभूति ललितादित्य के दरबार में थे । तब क्या कालिदास भवभूति के काल की देन है ? ऐसे संभावनापूर्ण अनेक तथ्यों को समक्ष रख कर हमें महाकवि माघ की ऐतिहासिक एवं सांस्कृतिक पृष्ठभूमि का अवलोकन करना है । कालिदास के समकालीन तथा धार के राजा भोज के मित्र होने के नाते हम एक ओर गुप्तकाल की ओर दृष्टि दौड़ाते हैं दूसरी ओर बलात् राजपूत काल तक जाना ही पड़ता है जिस काल में माघ के पितामह सुप्रभदेव के स्वामी राजा वर्मलात तथा माघ कवि के समसामयिक भोज नामधारी राजा हुये हैं । अतः हम गुप्त साम्राज्य से लेकर राजपूत राज्यों तक के काल के ऐतिहासिक चित्र का अवलोकन करेंगे जिसमें 4 थी शताब्दी से लेकर 12 वीं शताब्दी तक पूरे नौ शतक वर्ष आ जाते हैं ।

1- महाकवि माघ, उनका जीवन तथा कृतियाँ -

डॉ0 मनमोहन लाल जगन्नाथ शर्मा, पृ0 117

गुप्त काल -

गुप्तयुग[1] के पूर्व भारत विदेशियों के अधिकार में था । गुप्तों ने जब अधिकार किया उस समय भारत छोटे-छोटे राज्यों में विभक्त था । चार सौ वर्ष के विदेशी शासन ने इस विशाल कायदेश की व्यवस्था अत्यन्त शोचनीय कर दी थी । गुप्त साम्राज्य के राजाओं ने देश में राजनीतिक एकता लाने का प्रशंसनीय प्रयत्न किया । देश इस समय स्वतन्त्र था । चारो ओर शान्ति थी । श्रेष्ठ शासन प्रबन्ध होने से केन्द्रीय शक्ति दृढ़ हुयी । सुव्यवस्था से व्यापार में वृद्धि हुयी । विदेशी व्यापार अत्युच्च शिखर पर था । भारतीय धर्म और संस्कृति का व्यापक प्रसार रहा । भारत के अच्छे कवि एवं नाट्यकार इसी युग की देन है । पौराणिक साहित्य का नवीन रूप धारण करना, बौद्धों के प्रसिद्ध लेखक और दार्शनिक आसङ्ग वसुवन्धु, दिङ्नाग, एवं आर्यदेव, जैन दार्शनिक सिद्धसेन दिवाकर, समन्त भद्र जैसे व्यक्तियों का उत्पन्न होकर मौलिक विचार प्रदान करना तथा विज्ञान के क्षेत्र में दशांश गणना पद्धति, दिल्ली का लौह स्तम्भ स्थापित करना इसी युग की शोभा है । ललित कलाओं में भी चरम उन्नति दिखाई पड़ती है । अजन्ता के भित्ति चित्र, स्थान-स्थान पर देवताओं तथा उनके अवतारों की सजीव प्रस्तर प्रतिमायें, सुन्दर विशालकाय भवनों का इतने प्रचुर परिणामों में यदि किसी एक युग में निर्माण हुआ है तो वह युग केवल गुप्त युग ही है । आध्यात्मिक अभि-व्यंजना के साथ अलंकारों का सुन्दर समन्वय तथा ज्योतिष, गणित, रसायन शास्त्र

1- प्राचीन भारत का इतिहास- रीता शर्मा, पृ0 29।

वैद्यक, खगोल विज्ञान, राजविद्या, अश्व विद्या आदि सैकड़ों विषय पर इसी युग में ग्रन्थ निर्मित हुये हैं तथा हिन्दू धर्म एक नवीन रूप धारण कर सबको अपनी ओर आकर्षित करने लगा । सर्वांगीण सांस्कृतिक उन्नति का वास्तव में यही एक युग रहा है ।

गुप्त युग में वर्ण व्यवस्था पर कोई विशेष ध्यान नहीं दिया जाता था अतः वह सुदृढ़ न होकर कुछ शैथिल्य धारण किये हुये था । सवर्ण और असवर्ण दोनों भाँति के विवाह होते थे उदाहरणार्थ इक्ष्वाकु राजाओं ने उज्जयिनी के शक राज्य परिवार की कन्या स्वीकार किया ।

विवाह के अतिरिक्त आजीविकोपार्जन में भी यही बात थी । ब्राह्मण अपने कर्म के अतिरिक्त नौकरी भी करता था । वह युद्ध में लड़ता तो शिल्पी का भी कार्य करता था । यही अवस्था दूसरे वर्णों की भी थी ।

इस युग में दो दोष था - एक तो अस्पृश्यता और दूसरा बाल विवाह । ध्रुवदेवी का विवाह इसका प्रत्यक्ष प्रमाण है । इस तरह के दोषों के रहते हुये भी इस युग के भारतीयों का सामाजिक और वैयक्तिक जीवन एक अद्भुत संतुलन को लिये हुये थी । इस युग में अर्थ और काम की महत्ता उतनी ही थी जितनी धर्म और मोक्ष की ।

इस भांति उन्होंने एकाधिराज्य स्थापित किया । प्रजा के सेवक बनकर दीर्घकाल तक शांतिमय राज्य किया । उसके पश्चात् गुप्त साम्राज्य पर संकट के बादल घिर आये । कुमार गुप्त और स्कन्दगुप्त राज्य सम्भाल नहीं पाये ।

कुमार गुप्त के समय में विनाशकारी आक्रमण आरम्भ हो गये । स्कन्द गुप्त का हूणों से युद्ध हुआ । यद्यपि विजयश्री गुप्त साम्राज्य को ही मिली किन्तु स्कन्द-गुप्त के पश्चात् यह साम्राज्य नष्ट भ्रष्ट हो गया । इस प्रकार गुप्तकाल भारतीयों का सुपरिचित स्वर्णकाल है जिसमें प्राय: सभी क्षेत्रों में उन्नति हुयी थी । कितने ही प्रमाण उपलब्ध हैं इस तथ्य के कि माघ कवि उस युग की देन किसी रूप में नहीं है किन्तु फिर भी सांस्कृतिक जागृति का वह एक ऐसा युग था जिसकी कई परम्परायें राजपूत काल तक ही नहीं आधुनिक काल तक चलती आयी है ।

हर्ष काल -

गुप्तकाल के पश्चात् हूण राजा तोरमाण तथा मिहिरकुल का नाम आता है । ये आक्रमणकारी थे । भारत इस भांति आक्रमणकारियों से दुर्बल हो गया । अत: अनेकों स्वतन्त्र राज्य का उदय हुआ उनमें बलभी, सौराष्ट्र, कन्नोज, मालवा, बंगाल व आसाम आदि राज्य थे । बलभी का राज्य इनमें प्रमुख था । सातवीं शताब्दी के आरम्भ में इन स्वतन्त्र राज्यों की स्थापना से उत्तरी भारत की राजनैतिक स्थिति अत्यन्त डाँवाडोल थी । छोटे-छोटे राज्य परस्पर लड़ते थे । चारो ओर राजनैतिक अव्यवस्था थी । ऐसे समय में एक ऐसे सम्राट की आवश्यकता हुयी जो बिखरी हुयी शक्तियों को एक सूत्र में बांधकर रख सके । महाराज हर्षवर्धन ने यह कार्य कर दिखाया । इसका विस्तृत उल्लेख साहित्यों एवं इतिहास ग्रन्थ में प्रचुरमात्रा में प्राप्त है ।[1]

1- प्राचीन भारत का इतिहास - के0सी0श्रीवास्तव, पृ0 53।

लगभग 72 राज्य महाराजा हर्षवर्धन के शासनाधीन थे जिसका वर्णन ह्वेनसांग ने अपनी सन् 630 की भारत यात्रा के सन्दर्भ में किया है ।[1] हमें अन्य राज्यों से कोई तात्पर्य नहीं है किन्तु जहाँ पर उसने भीनमाल का वर्णन किया है उस देश से हमारा सम्बन्ध है । सन् 628 में यहीं पर ब्रह्मस्फुट सिद्धान्त के लेखक प्रसिद्ध ज्योतिर्षी ब्रह्मगुप्त ने क्षत्रिय राज्य व्याघ्रमुख का होना स्वीकार किया है । ह्वेनसांग का कहना है कि भीनमाल गुर्जरों की मुख्य राजधानी थी जो आज गुजरात में न होकर राजस्थान के सिरोही जिले में हैं ।[2] चीनी यात्री लिखता है कि भीनमाल का राजा क्षत्रिय युवक था जो बुद्धि व साहस का पूर्ण धनी था तथा बौद्ध धर्म में उसका अटूट विश्वास था । ह्वेनसांग भीनमाल की ओर सन् 641 ई0 के लगभग आया था । इतिहासकारों का कहना है कि वह युवक चापवंशीय क्षत्रिय व्याघ्रमुख का ही उत्तराधिकारी पुत्र था क्योंकि ब्रह्मगुप्त के समय में व्याघ्रमुख वृद्ध थे । हर्ष के पिता प्रभाकरवर्द्धन ने गुर्जर पर विजय प्राप्त की थी । हर्ष ने अपनी दिग्विजय में गुर्जर नाम नहीं दिया किन्तु चीनी यात्री का भीनमाल के राजा का वर्णन ही इस बात का प्रमाण है कि सिंध और कश्मीर की भाँति गुर्जर नाममात्र से हर्ष के साम्राज्य में थे । भीनमाल के उस युवक क्षत्रिय का वर्णन जैसा चीनी यात्री ने किया है बलात् हमारी दृष्टि को उस ओर आकर्षित कर लेता है क्योंकि महामहोपाध्याय डॉ0गौरी शंकर ओझा उसी युवक का

1- प्राचीन भारत का इतिहास- रीता शर्मा, पृ0 390

2- महाकवि माघ, उनका जीवन तथा कृतियाँ -

डॉ0मनमोहन लाल जगन्नाथ शर्मा, पृ0119

उल्लेख करते हुये जो समय निर्धारण कर रहे हैं - उससे महाकवि माघ के समय निर्धारण में असंगति हो गयी है । वर्मलात के शिलालेख में केवल 682 वर्ष दिया है जिसको इन्होंने विक्रमी सं० मानकर सन् 625 ई० का बताया है । ब्रह्मस्फुट के रचयिता ने इसे शक संवत् मानकर इसे सन् 760 ई० बताया है क्योंकि उस समय उधर शक सम्वत् का ही प्रचलन था । व्याघ्रमुख वृद्ध थे अतः सन् 625 मे भी भीनमाल के वेही शासक थे न कि वर्मलात । सन् 641 में व्याघ्रमुख का पुत्र शासक था जो लगभग 22-23 वर्ष का होगा उसी समय ह्वेनसांग अपनी भारत यात्रा के प्रसंग में उधर गया होगा । व्याघ्रमुख के पुत्र ने जब तक राज्य किया भीनमाल का क्या हाल रहा- इस समय की कोई बात हमारे सम्मुख तब तक नहीं आती जब तक प्रतिहार वंश के प्रवर्तक नागभट्ट प्रतिहार का भीनमाल पर राज्य नही हो जाता ।

हर्षकालीन युग एक ऐसा युग था जिसमें धार्मिक सहिष्णुता बहुत ऊँचे स्तर की थी । हिन्दू, जैन, बौद्ध धर्म एक साथ मिलकर मानव की आध्यात्मिक उन्नति कर रहे थे । एक ही राज्य, एक ही नगर, यहाँ तक कि एक ही परिवार में हिन्दू, जैन और बौद्ध धर्म के अनुयायी परम शान्तिपूर्वक मित्रभाव से रहते थे तथा मनुष्य और परमात्मा का सम्बन्ध स्थिर करते हुये शास्त्रार्थ भी करते थे । बुद्ध भी इस समय तक परमात्मा का एक अवतार बन गये थे । इतना ही नहीं बौद्ध धर्म में अन्य देवता भी सम्मिलित होने लगे थे जैसे बोधिसत्व । हिन्दुओं में इस समय विशेष रूप से शिव, विष्णु और सूर्य की पूजा अत्यधिक थी । बनारस का

शिव मन्दिर और मुल्तान का सूर्य मन्दिर इस समय प्रसिद्ध था । मन्दिरों के निर्माण के अतिरिक्त बौद्धों और हिन्दुओं में अंध श्रद्धा का प्रवेश हो चला था । ब्राह्मणों का अग्निहोत्र और क्षत्रियों का अश्वमेध यज्ञ भी अधिकता से होने लगा था । हर्ष के मरणोपरान्त वैदिक धर्मावलम्बियों ने फिर उन्नति की । इस युग में बौद्धों को जिन मतावलंबी कहते थे । बौद्धों का इस समय इतना प्रभाव था कि दूसरे लोग जिनों को भी बौद्ध ही मानने लगे थे और जैनियों को अर्हता बुद्ध जिन के नाम से अधिक प्रख्यात थे । नागानन्द नाटक के प्रथम अंक के प्रथम ही श्लोक में कहा है "बोधो जिन: पातु व:" ।[1] इस युग में कर्म तथा आवागमन में पूर्ण विश्वास था । इस प्रकार इस युग की धर्म भावना मानव चरित्र के निर्माण परिवर्धन एवं परिष्करण में बड़ी सहायक थी ।

हर्ष के समय में वस्त्र धारण करने के विषय में यह कहा गया है कि भारत में सिले हुये वस्त्रों का अधिक प्रचलन नहीं था । मनुष्य धोती पहनते और एक दुपट्टा रखते थे जो कंधे के चारों ओर होता हुआ एक भुजा को आधे भाग तक ढकता हुआ जाता था । स्त्रियां एक लम्बी धोती पहिनती थीं । सिर के बाल मध्य भाग के तो गोल रूप में बंधे रहते थे किन्तु अन्य बचे हुये इधर उधर लटकते रहते थे । कुछ मूछों को काटते थे और कुछ की मूछें अजीब सी रहती थी ।

1- महाकवि माघ, उनका जीवन तथा कृतियाँ -

डॉ0मनमोहन लाल जगन्नाथ शर्मा, पृ0 120

सिर पर माला तथा शरीर पर हार धारण किया जाता था । अरब लोग जब भारत में आठवीं शताब्दी में आये तब से सिले हुये वस्त्रों का प्रचार बढ़ने लगा और कदाचित् 9वीं, 10वीं और 11वीं शताब्दी में इसका प्रचार और द्रुत हुआ माघ ने स्त्रियों को घाघरे (लहंगे) और चोली पहिने भी वर्णित किया है । यह भी इस बात का प्रमाण है कि महाकवि माघ सातवीं शताब्दी के होकर आठवीं शताब्दी के अन्त अथवा 9वीं के मध्य भाग में होंगे । इस युग में विधवायें श्वेत वस्त्र धारण करती थीं । उनका विवाह नहीं होता था किन्तु सती प्रथा अवश्य थी । माघ ने तो इस प्रथा की प्रशंसा की है । पर्दा प्रथा थी । माघ काव्य में भी घूंघट निकालना, शिविरों मे स्त्रियों को पहुचाना जहाँ उन्हें कोई न देख सकता था आदि मिलते हैं जो पर्दा प्रथा के ही लक्षण हैं । उस समय के भारतीयों में स्वच्छता और शुद्धता के प्रति एक विशेष प्रकार का आग्रह था । भोजन से पूर्व हाथ मुंह धोना, बचे हुये भोजन का दुबारा प्रयोग न करना, मिट्टी तथा लकड़ी के बर्तनों का दुबारा प्रयोग न करना, लकड़ी से दांत साफ करना, लहसुन और प्याज का लगभग नगण्य प्रयोग करना, भोजन के रूप में मुख्य रूप से रोटी, घी शक्कर, मक्खन, दूध इत्यादि का प्रयोग करना इस युग में मनुष्यों की आदत थी । गांवों तथा नगर के चारों ओर दीवालें बनी रहती थीं तथा सड़कों के दोनों ओर दूकाने रहती थीं । सड़के अधिकांश कच्ची रहती थी । निम्न प्रजाति एवं कर्म के लोग शहर से बाहर रहते थे । यह निम्न प्रजाति एवं कर्म के लोग इस प्रकार थे - नट, जल्लाद, भंगी, मछुये, कसाई मोची, धोबी, जमादार इत्यादि ।

शिलालेख, ताम्रपत्र और सिक्के आदि भी उस समय की स्थिति का दर्शन करा देते हैं। यहाँ पर मुख्य-मुख्य बातों का उल्लेख आवश्यक हो गया है। हर्ष ने उन राज्यों पर आक्रमण किया जिन्होंने उनकी अधीनता स्वीकार नहीं की। वे राज्य जिन पर उनका आधिपत्य इस प्रकार हुआ-पंजाब, कन्नौज, मिथिला, बंगाल, उड़ीसा, कश्मीर, सिंध, नेपाल, सौराष्ट्र और कामरूप थे। लगभग समस्त आर्यावर्त पर जैसा शासन इन्होंने किया वैसा किसी भी हिन्दू नरेश में उनके उपरान्त नहीं किया। इसीलिये हर्षवर्द्धन को हिन्दुओं का अन्तिम सम्राट कहा जाता है।[1] उनकी मृत्यु के पश्चात् साम्राज्य नष्ट भ्रष्ट हो गया। चारों ओर अराजकता की शक्तियाँ फिर से सक्रिय हो उठीं। इतिहास पुरानी स्थिति को दुहराने लगा। नरेशों में परस्पर प्रतिशोध की भावनायें जागृत हो उठीं। अवसर के प्राप्त होते ही उन्होंने फिर सिर उठाया और आक्रमण आरम्भ कर दिये। हर्ष की मृत्यु ने एक नवीन युग को निमन्त्रण दिया। वह था मध्य युग जिसको इतिहास विशेषज्ञ राजपूत काल की संज्ञा देते हैं और इसी से हमारे महाकवि माघ घनिष्ठ रूप से सम्बन्धित हैं।

राजपूत काल -

सातवीं शताब्दी के अन्त के भाग से ही उत्तरी भारत में राजपूत सत्ता का उत्कर्ष हुआ।[2] इस समय किसी एक का तो राज्य नहीं था। देश

1- प्राचीन भारत का इतिहास- के०सी०श्रीवास्तव, पृ० 53।

2- प्राचीन भारत का इतिहास- रीता शर्मा, पृ० 395

छोटे-छोटे राज्यों में विभक्त था जो सब अपने आपको स्वतन्त्र समझते थे । राजा वर्मलात भी उनमें एक था । अरबों के आक्रमण पर भीनमाल के चाप इधर उधर हो गये । इस समय में कन्नौज की महत्ता सर्वोपरि थी क्यों कि वह उत्तरी भारत की राजनैतिक, धार्मिक एवं सामाजिक शक्तियों का प्रभावशाली केन्द्र था। प्रतिहार राजा यहाँ राज्य कर रहे थे । वहाँ पर कौन-कौन राजा राज्य कर रहे थे -किस-किस समयावधि में थे - का पूर्ण विवरण हमें कन्नौज और आस-पास के ऐतिहासिक चित्र का अवलोकन करने से स्पष्ट हो जायेगा ।

सिन्ध में अरब राज्य के स्थापित होने के कुछ वर्ष पश्चात् मगध और गौड़ में गुप्त राज्यवंश का अन्त हुआ । कन्नौज का राजा इस समय यशोवर्मा था । उसने मगध और गौड़ राज्य पर आक्रमण कर वहाँ पर शासनाधीन गुप्तवंशीय राजा को मार कर अपने राज्य का विस्तार पूर्वी समुद्र तक कर लिया । कन्नौज की महत्ता हर्ष के समय से ही सर्वोपरि समझी जाती थी । इस समय कन्नौज का वही महत्त्व था जो मौर्य और गुप्त काल में पाटलिपुत्र का और मुसलमानों के समय में दिल्ली का । अतः उत्तरी भारत का प्रत्येक महत्वाकांक्षी कन्नौज को ही अपनी राजधानी बनाना चाहता था । कन्नौज पर अधिकार करने के लिये सब लालायित रहते थे । यशोवर्मा ने भी यही किया । यशोवर्मा का समय 725ई0 से 752 ई0 के मध्य का माना जाता है । इसकी दिग्विजय का वर्णन वाक्पति-राज में मिलता है । इसी यशोवर्मा से ललितादित्य राजा ने लोहा लिया और यशोवर्मा इस युद्ध में पराजित हो गये । पराजय के पश्चात् कन्नौज साम्राज्य की शीघ्र ही अवनति हुयी । यशोवर्मा के समय में प्राचीन हिन्दू धर्म का प्राधान्य

स्थापित हो गया । पूर्व मीमांसा का प्रवर्तक कुमारिल भट्ट भवभूति का शिक्षक और वाकपति राज का गुरु था । कन्नौज प्राचीनवादियों का केन्द्र बन गया और समूचे भारत में कान्यकुब्ज ब्राहमणों का प्रभाव स्थापित हो गया । वेद और मीमांसा के अध्ययन का प्रचलन फिर से शुरू हो गया । वैदिक कर्मकाण्ड के सिद्धान्त एवं दर्शन का प्रसार दक्षिण तक पहुँच गया परिणामस्वरूप बौद्ध धर्म को अवदस्थ होकर लुप्त होना पड़ा । यशोवर्मा के उत्तराधिकारी निर्बल सिद्ध हुये और काश्मीर तथा बंगाल के राज्यों के दबाव ने उनकी स्थिति और नगण्य बना दी । यशोवर्मा कौन थे किस वंश से उसका सम्बन्ध था-मालुम नहीं चल पाया परन्तु उसका नाम और सिक्के मौखरियों के शैली के हैं । इसके बाद के राजा भण्डिकुल के थे । यह हर्ष के मामा का लड़का था और सेनापति था । ऐसा पता चलता है कि यशोवर्मा के पश्चात् कन्नौज का साम्राज्य उसी सेनापति के वंश के हाथ चला गया किन्तु ललिताद्दित्य के अधिकारी जयापीड़ ने कन्नौज के शासक वज्रायुद्ध को भी हरा दिया। पहला कन्नौज साम्राज्य जब इस भांति काश्मीरियों के आक्रमण से जीर्ण-शीर्ण हो रहा था तब उसके पूर्व, दक्षिण और पश्चिम में नयी शक्तियाँ उठी थीं । इस समय पाल, गंग राष्ट्रकूट और प्रतिहार राज्यों का उदय हो रहा था । इस समय अरबों ने सिन्ध से और आगे बढ़ने का उपाय किया । सन् 739 ई० में उनकी सेना ने सौराष्ट्र और कच्छ को जीता । आगे पहुँचने पर चालुक्यों ने उनकी शक्ति को नष्ट कर दिया । भीनमाल राज्य के साथ तो अरबों की प्राय: मुठभेड़ होती रही । अरबों के आक्रमण से पूर्व तक भीनमाल पर चापवंश का राज्य था जिसका अन्तिम राजा वर्मलात नाम उल्लेख में 760 ई० का प्राप्त होता है । वह वसन्तगढ़ को

राजधानी बनाकर रह रहा था क्योंकि इस समय अरबों के आक्रमण से चापों की बहुतसी शक्ति नष्ट हो चुकी थी और नवीन राज्यों में जैसे कन्नौज क्षीण हो चला था । बारम्बार के आक्रमण से भीनमाल की भी चापशक्ति हीन हो गयी थे इधर उधर बिखर गये थे क्योंकि इस समय राष्ट्रकूट और प्रतिहार राजा शक्ति में आगे बढ़ रहे थे । चालुक्य राजा से सन 754 में उसके सामन्त दंतिदुर्ग राष्ट्रकूट ने उसका राज्य छीन लिया । दंतिदुर्ग के पश्चात् सन् 760 से 775 ई0 तक कृष्ण के समय में राष्ट्रकूट सत्ता जब स्थापित हो गयी उस समय गुर्जर देश के राजा नागभट्ट ने सिन्ध के आसपास मुसलमानों को हराकर ख्याति प्राप्त की । नागभट्ट ने अपनी राजधानी श्रीमाल या भीनमाल रखी और मारवाड़ से भड़ौच तक उसका राज्य था । मगध और गौड़ राज्यों में गोपाल का उत्तराधिकारी धर्मपाल सन् 770 से सन् 809 ई0 तक लगभग हुआ । कन्नौज का सम्राट तब इन्द्रायुध था । सन् 783 ई0 के पश्चात् धर्मपाल ने उसे उतारकर चक्रायुध को गद्दी पर बैठा दिया । चन्द्रायुध के अभिषेक के समय कन्नौज के सामन्तों ने उसे कन्नौज का सम्राट स्वीकार किया । इनमें पंजाब, गान्धार और कांगड़ा के राज्यों तक की गणना थी । इसको देखते हुये कन्नौज का साम्राज्य यद्यपि अब उतना शक्ति सम्पन्न नहीं था फिर भी उसका शासन दूर-दूर तक माना जाता था । नागभट्ट के सहोदर के पौत्र प्रतिहार राजा वत्सराज ने धर्मपाल को युद्ध में पराजित किया किन्तु उन दोनों पर राष्ट्रकूट कृष्ण के पुत्र ध्रुव धारावर्ष (783-793) ई0 ने चढ़ाई कर दी । लाट और मालवा प्रान्तों के लिये राष्ट्रकूटों और प्रतिहारों के मध्य लड़ाई रहती थी ।

ध्रुव ने अपना राज्य तो बढ़ाया किन्तु जब ध्रुव के दोनों पुत्र-गोविन्द और स्तम्भ के मध्य गृह युद्ध हुआ तब उस अवसर से लाभ उठाकर वत्सराज के पुत्र जो नागभट्ट द्वितीय थे धर्मपाल और चक्रायुध दोनों को हराकर कन्नौज पर अपना अधिकार कर लिये। यह समय सन् 792-799 ई0 का था। अब प्रतिहार वंश के शासक ही उत्तरी भारत के महान, शक्तिशाली सम्राट थे। प्रतिहारवंश का सर्वप्रथम प्रतापी एवं शक्तिशाली शासक नागभट्ट प्रथम था जो मंडौर का स्वामी था। इसने 725 से 740 ई0 तक राज्य किया। मंडौर पृथ्वी राज के समय में प्रतिहार वंश की राजधानी थी। राठौरों के पूर्व मंडौर मारवाड़ की राजधानी थी। राठौरों ने मंडौर के प्रतिहारों के यहाँ पर एक बार शरण भी ली थी। राठौरों ने फिर जोधपुर को अपनी राजधानी बनायी जो उसके समीप में ही है। मारवाड़ का पूर्व नाम गुजरात था और आजकल का गुजरात तो पहले लाट नाम से प्रसिद्ध था। ये प्रतिहार गुर्जर नहीं थे किन्तु गुर्जर भूमि के अधिपति थे। अतः गुर्जर प्रतिहार कहलाये। इसी नागभट्ट ने सिन्ध पर 712 ई0 में अधिकार प्राप्त कर लेने के पश्चात् भीनमाल की ओर होने वाले आक्रमण को रोका। कोई आश्चर्य नहीं चापवंश इसकी शक्ति को देखकर भीनमाल को छोड़कर बसन्तगढ़, अनहिल पाटण, बढ़वाण आदि स्थानों में बस गये हों पर यह बात नागभट्ट प्रथम तक तो होती हुई नहीं दिखलाई पड़ी क्योंकि इनमें कोई वैमनस्य नहीं गया। दोनों ने मिलकर अरबों का मुकाबला डटकर किया होगा। भीनमाल पर नागभट्ट द्वितीय ने सन् 816 ई0 के पूर्व अधिकार कर लिया होगा। नागभट्ट प्रथम के पश्चात् उसका भतीजा कुकत्स्थ शासक हुआ (740 से सन् 755 ई0 तक)। उसके उपरान्त उसके भाई देवशक्ति शासक हुये फिर उसके पुत्र वत्सराज (770 से 800 ई0 तक)।

वत्सराज ने कन्नौज लिया । नागभट्ट द्वितीय वत्सराज के पश्चात् कन्नौज के शासक हुये । नागभट्ट ने दिग्विजय की और सन् 810 में कन्नौज को अपनी राजधानी बनायी । इसने 810 से 825 तक राज्य किया फिर रामभद्र शासक हुआ (सन् 825 से सन् 835 ई० तक), तत्पश्चात् उसके पुत्र मिहिर भोज ने राज्य किया । इनका शासन काल सन् 835 से 885 ई० तक था ।

इस समय राजनैतिक अव्यवस्थातथा अराजकता थी । देश छोटे-छोटे राज्यों में विभाजित था । जिस राजपूत ने जहां पर अवसर पाया वहीं पर उसने अपने बाहुबल से राज्य स्थापित कर लिया । इन शासकों में अलंकार तथा मिथ्या सम्मान की भावनायें कूट-कूट कर भरी हुयी थीं । अपनी कीर्ति, आत्म सम्मान तथा धर्मविजय के नाम पर युद्ध करना ही जीवन का उद्देश्य समझते थे । ब्राह्मणों ने इनकी स्थिति को सुदृढ़ किया । ये ब्राह्मण ऊँचे-ऊँचे पदों पर राज्य में नियुक्त किये गये ।

इस युग के राजपूतों में निरंकुशता के साथ-साथ स्वेच्छाचारिता के भाव थे । वे अपने को देवतातुल्य समझते थे । अपनी पूजा कराते थे । ब्राह्मण मंत्रियों का जो कुछ भी प्रभाव उन पर था-वह वैयक्तिक था । राजाओं के नीचे सामन्त और जागीरदार होते थे जिनको या तो वेतन मिलता था या जागीरे दी जाती थीं । राज्य की आय का साधन भूमिकर था । व्यापार तथा उद्योग धन्धों से भी अच्छी खासी रकम कर के रूप में एकत्रित कर राज्य की आय बना दी जाती थी ।

सुदृढ़ शासन व्यवस्था और अच्छी राज्य व्यवस्था का प्राय: अभाव ही था । राजदरबार में षड्यन्त्र, नित्य प्रति हत्या की घटना, सामन्तों का विद्रोह, राजकर्मचारियों एवं रानियों के मध्य भ्रष्टाचार आदि बातें प्राय: दृष्टव्य थीं ।

सार्वजनिक और निजी युद्ध इस युग का एक व्यसन सा था किन्तु फिर भी देश के विभिन्न भागों के मध्य आदान-प्रदान और सम्पर्क के पर्याप्त साधन थे । व्यापार सम्पन्न अवस्था में था । कवि लेखक विद्वानों को राजा के दरबार में पर्याप्त संरक्षण एवं प्रोत्साहन मिलता था । मंदिरों की देख-रेख, गाँव की खेती, सिंचाई, कर की वसूली, अपराधियों को पकड़ना यह सब पंचायत का काम था । राजा वर्मलात के शिलालेख में भी कुछ मनुष्यों की गोष्ठी का उल्लेख है । यह गोष्ठी पंचायत सरीखी है ।

इस प्रकार- इस युग की आरम्भिक शताब्दियों में देश धार्मिक मतभेद और जातीय ईर्ष्याद्वेष से बचा हुआ था । जब कोई राजा पड़ोसी देशके राजा पर विजय प्राप्त कर लेता था तो पराजित राजा वहाँ का शासक नियुक्त कर दिया जाता था या उसी परिवार वाले किसी अन्य व्यक्ति को किन्तु शर्त इतनी सी होती कि वह पराजित राजा विजय प्राप्त राजा की अधीनता स्वीकार के रूप में कुछ भेंट अथवा कर देता रहे । प्रतिहारवंश के सम्बन्ध में इतनी ही जानकारी पाते हैं कि उन्होंने बढ़वार के चापों पर विजय प्राप्त करके उनसे कर लिया । हो सकता है कि भीनमाल के चापों के साथ भी कुछ वर्षों तक ऐसी ही बात रही हो और अन्त में उन्हें भीनमाल से निकाल कर बाहर कर दिया हो । इन सब प्रमाणों

से अरबों के आक्रमण के पश्चात् चाप वंशीय राजा वर्मलात का होना सिद्ध होता है । महाकवि माघ ऐसे ही नैतिक वातावरण में पोषित होते हुये प्रतिहार कुल की संरक्षता प्राप्त करते हुये शिशुपालवध महाकाव्य की रचना करने में समर्थ हुये तथा अहंकार एवं पूजा की उस भावना को तथा उस समय की अन्य राजनैतिक तथा सेना सम्बन्धी मान्यताओं एवं परम्पराओं को यथावत चित्रित करने में सफल हो सके ।

इस युग में वर्ण व्यवस्था ने जातिपाँति का रूप धारण कर लिया था । सामाजिक परिधि के संकीर्ण होने से ये लोग विदेशियों के साथ आत्मसात न हो पाये । जातिबन्धन अब इतने कठोर हो गये थे कि उनमें नवीन तत्वों का प्रवेश सम्भव नहीं था । खान,पान, विवाह तथा आजीविका के नियम भी इस युग में बदल चुके थे ।

इस युग में स्त्रियों का जीवन भी अत्यन्त साहस तथा वीरता से पूर्ण था । पुरुषों की भाँति वे भी वीरता से ओतप्रोत थीं । पतिभक्ति उनमें उच्चकोटि की थी । पति के मरणोपरान्त सती होना वे अपना कर्तव्य समझती थीं। पति के मारे जाने पर अथवा असह्य रोग से पीड़ित होने से मरणोन्मुख पति के सम्मुख सतीत्व की रक्षा के लिये अग्नि में हंसते-हंसते प्रवेश कर जाना उनके लिये बायें हाथ का खेल था । हर्षचरित में सती दाह का वर्णन है । महाकवि माघ ने भी इसका वर्णन किया है । पर्दा प्रथा का प्रचलन भी खूब था । परन्तु उसका स्वरूप एक विशेष प्रकार का था । माघ काव्य में भी कई स्थानों पर स्त्रियों के परदे का वर्णन आता है ।[1]

1- आस्तीर्णतल्परचितावसथः क्षणेन वेश्याजनः कृतनव प्रति कर्म काम्यः ।
छिन्नानछिन्नमतिरापततो मनुष्यान् प्रत्युग्रहीच्चिरनिविष्टइवोपचारैः ।।

शिशुपालवध, 5/27

विधवाओं का विवाह शनैः-शनैः बन्द हो रहा था । स्त्रियों की पुरुषाधीनता बढ़ रही थी । वे इस युग में आकर विलास की सामग्री बन गयी थीं । मदिरा पान का भी प्रयोग ज्यादा था । विशेष-अवसरों पर पुरुष-स्त्री दोनों ही मदिरा का सेवन कर भोगमय जीवन बिताते थे । माघ काव्य में इसका सजीव वर्णन मिलता है ।[1]

इस युग में कला और साहित्य का पर्याप्त विकास हुआ । भाषा में चमत्कार और उसको सुन्दर बनाकर पाठकों के सम्मुख सजाकर रखने की रीतियां साहित्य में प्रतिष्ठित हो गयी थीं । भारवि से अलंकार शैली का विकास हुआ माघ ने उसे पूर्णता दी । मौलिकता तथा नवीनता तो अब इस युग की देन न रही अतः पूर्व के कवियों जैसा भाव अथवा रस प्रधान कविता तो रही नही, रस सौन्दर्य के स्थान पर अलंकारों के कृतिम सौन्दर्य वाली शैली चल पड़ी । यह अवश्य था कि संस्कृत साहित्य के प्रायः सभी अंगों में उन्नति हुयी । भवभूति माघ, वामन, राजशेखर, दण्डी, बाण, आनन्दवर्धन, मम्मट, वाग्भट सोमदेव, भास्कराचार्य इसी युग की देन हैं ।

इस युग में प्रायः सभी कथानक रामायण अथवा महाभारत से लिये जाते थे । कुछ कवि अपने दाताओं के चरित्रों को लिखकर ऐतिहासिक

1- यानाज्जनः परिजनैरवतार्यमाणा राज्ञीर्नरापनयनाकुलसौविदल्लाः ।
स्रस्तावगुण्ठनपटाः क्षणलक्ष्यमाणवक्त्रश्रियः सभयकौतुकमीक्षते स्म ।।
शिशुपालवध, 5/17

काव्यों की परम्परा डाल रहे थे किन्तु ये सब माघ के पश्चात् के हैं-पूर्व के अथवा तत्कालीन भी नहीं । इनमें बहुत से कवि राज सम्मानित थे इसलिये इनकी रचनाओं में यत्र-तत्र तात्कालिक राज प्रभाव देखने को मिलता है । इस दृष्टि से देश के राजनैतिक इतिहास के निर्माण में इनसे सहायता मिलती है ।

यह युग हिन्दू धर्म की पूर्ण विजय तथा बौद्ध धर्म के पराभव का काल था । मूर्ति निर्माण का यह युगथा । अतः बुद्धदेव को अवतार मानकर उनकी भी मूर्तियां बनने लगीं और मूर्तिपूजा होने लगी । स्वर्ग-नरक की कल्पना चित्रमय रूप धारण करने लगी । सैकड़ो कला मन्दिर बने । भित्ति चित्र अंकित किये गये । धार्मिक क्रिया कलापों और अनुष्ठानों का महत्त्व बढ़ गया । आचार की उपेक्षा. भक्ति और पूजा-पाठ पर जोर दिया जाने लगा । इस सबने स्थापत्य कला और चित्र कला को प्रोत्साहित किया । माघकाव्य में उपर्युक्त तथ्यों के प्रमाण श्लोक रूप में प्राप्त है ।[1-3] अतः निश्चय ही महाकवि माघ राजपूत युग के हैं ।

1- भीमास्त्रराजिनस्तस्य बलस्य ध्वजराजिनः ।
कृतघोराजिनश्चक्रे भुवः सरुधिरा जिनः ।। शिशुपालवध, 19/112

2- स संचरिष्णुर्भुवनान्तरेषु यां यदृच्छयाऽशिश्रियदाश्रयः श्रियः ।
अकारि तस्यै मुकुटोपलस्खलत्करैस्त्रिसंध्यं त्रिदशैर्दिशे नमः ।।
शिशुपालवध, 1/46

3- श्रियः पतिः श्रीमति शासितुं जगज्जगन्निवासो वसुदेव सद्मनि ।
वसन् ददर्शावतरन्तमम्बराद्धिरण्यगर्भाङ्गभुवंमुनिं हरिः ।।
शिशुपालवध 1/1

तथा इस युग में मिहिर भोज राजा के समकालीन थे । इस प्रकार इनका समय सन् 800 से 880 के मध्य प्रमाणित होता है ।

माघ के काल के सम्बन्ध में विद्वानों का मत -

महाकवि माघ के काल निर्धारण में विद्वानों के भिन्न-भिन्न मत हैं [1] -

1- आंग्ल भाषा में लिखित "संस्कृत कवियों का समय निरूपण" नामक पुस्तक जिसका हिन्दी रूपान्तर श्री सरयू प्रसाद मिश्र ने किया है, ने महाकवि माघ को भारवि कवि से भी प्राचीन घोषित किया है । कवि भारवि को 584 ई0 के उत्कीर्णित लेख के आधार पर 584 ई0 का माना है ।

2- वियेना ओरियन्टल जर्नल के द्वितीय भाग के द्वितीय खण्ड में श्री याकोबी ने महाकवि माघ को छठीं शताब्दी का बताया है ।

3- डाॅ0 भोला शंकर व्यास अपने संस्कृत कविदर्शन में माघ को श्रीमाली ब्राह्मण बताते हुये उन्हें राजस्थान के पार्वत्य प्रदेश स्थित डूंगरपुर- बाँसवाड़ा का निवासी कहा है । उनकी सम्मति में माघ का समय सातवीं शती के उत्तरार्ध

1- महाकवि माघ, उनका जीवन तथा कृतियाँ -

डाॅ0मनमोहन लाल जगन्नाथ शर्मा, पृ085

से लेकर भट्टी से लगभग 50 साल बाद मानना अधिक संगत है । भट्टी का समय उनके हिसाब से सातवीं शताब्दी का प्रथम चरण है (610 ई0 से 615 ई0)

4- डॉ0 कीथ अपनी हिस्ट्री ऑफ संस्कृत लिटरेचर में लिखते हैं कि माघ कवि सातवीं शताब्दी के अन्तिम भाग में हुये होंगे ।

5- पं0बलदेव प्रसाद उपाध्याय अपने संस्कृत साहित्य के इतिहास में माघ कवि को सातवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में हुये स्वीकार करते हैं ।

6- डॉ0गौरी शंकर हीराचन्द्र ओझा अपनी पुस्तक "महाकवि माघ" में महाकवि माघ को सातवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में हुये स्वीकार करते हैं ।

7- पं0सीताराम जयराम जोशी तथा विश्वनाथ शास्त्री अपने संस्कृत साहित्य के इतिहास में माघ का समय सन् 660 से 675 ई0 तक बताते हैं ।

8- श्री एस0के0डे0 अपने संस्कृत साहित्य के इतिहास में लिखते हैं कि महाकवि माघ सातवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में हुये होंगे ।

9- श्री हंसराज अग्रवाल अपने संस्कृत साहित्येतिहास में लिखते हैं कि माघ सन् 650ई0 से 700 ई0 तक रहे हैं ।

10- श्री भूप नारायण दीक्षित ने अपनी हिन्दी शिशुपालवध या माघ काव्य की भूमिका में लिखा है कि बाह्य प्रमाणों से तो यह सिद्ध है, महाकवि माघ नवमी शताब्दी के हैं किन्तु आन्तरिक प्रमाण उन्हें सातवीं शती के मध्य या आठवीं शती के प्रारम्भ का बताते हैं ।

11- पं0 तारानाथ ने अपनी एनसाइक्लोपीडिया में माघ कवि को उद्भट पंडित का समकालिक बताये हुये माघ का समय आठवीं शताब्दी का प्रथम चरण

निर्धारित किया है ।

12- एम0एस0भंडारे अपनी शिशुपालवध की प्रथम चार सर्ग की आंग्ल भाषा में किये हुये अनुवाद की भूमिका में लिखते हैं कि माघ कवि आठवीं शताब्दी के उत्तरार्ध तक ही रहे थे । इसके पश्चात् नहीं ।

13- पं0छज्जू राम विद्यासागर अपने संस्कृत का सम्पूर्ण इतिहास में लिखते हैं कि महाकवि का समय 8वीं शताब्दी निश्चित है ।

14- प्रो0 के0बी0पाठक "आँन दी डेट आँफ माघ" शीर्षक में जो जे0बी0बी0आर0ए0 एस0 वाल्यूम,20 पेज 303-306 में लिखते हैं कि महाकवि माघ आठवीं शताब्दी के अन्तिम भाग में हुये थे ।

15- श्री चन्द्रशेखर पाण्डे अपनी संस्कृत साहित्य की रूपरेखा में माघ कवि के लिये लिखते हैं कि उनका आविर्भाव काल सन् 800 ई0 के पश्चात् का नहीं हो सकता ।

16- महामहोपाध्याय श्री दुर्गाप्रसाद का लिखना है कि महाकवि माघ नवमी शताब्दी से तो किसी भी अवस्था में भी अर्वाचीन नहीं है ।

17- श्रीमान राम अवतार शर्मा अपने "भारतीय इतिवृत्ति"में महाकवि माघको जयापीड़ के पूर्वकालिक बताते हुये माघ का समय नवीं शताब्दी का आरम्भ कहा है ।

18- पं0 नागरदास,भाव नगर निवासी"श्रीकृष्ण सुभाषित रत्नमंजूषा" में लिखते हैं कि माघ का समय सन् 850 ई0 के आसपास का है ।

19- श्री एम0एम0उफ का कहना है कि माघ 860 ई0 में थे ।

20-श्रीवेबर लिखते हैं कि माघ नवमी शताब्दी के हैं ।

21- श्री मैकडोनल कहते हैं कि माघ कवि नवमी शताब्दी मे तो निश्चित ही थे और वे दशमी शताब्दी के पहले विद्यमान थे ।

22-श्री क्लाट के अनुसार माघ कवि दशम शतक के आरम्भ में थे ।

23- पं0 रमेशचन्द्र दत्त अपनी हिस्ट्री ऑफ सिविलाइजेशन इन इण्डिया, बुक 5, अध्याय 12 में लिखते हैं कि माघकवि 12वीं शताब्दी के हैं ।

काल सम्बन्धी निष्कर्ष -

इस तरह माघ का काल विद्वानों की सम्मति में 5वीं शताब्दी से चलकर 12वीं शताब्दी तक पहुँचा है । इसमें से पाँचवीं से सातवीं और दशवीं से बारहवीं शताब्दी तक के मत अन्त: एवं बाह्य साक्ष्यों एवं अभिसाक्ष्यों से मेल नहीं खाते । अस्तु बाह्य साक्ष्य तथा अन्त: साक्ष्य एवं अभि साक्ष्यों की उपर्युक्त समालोचना के आधार पर महाकवि माघ का स्थिति काल सन् 800 ई0 से 880ई0 के मध्य निश्चित किया जा सकता है ।

महाकवि माघ का व्यक्तित्व एवं कृतित्व -

(1) माघ की युवावस्था -

महाकवि माघकाबाल्यकाल तो बहुत ही सुन्दर रूप में व्यतीत हुआ होगा क्योंकि उनके पिता दत्तक के पास अटूट धन था । घर पर राजसी ठाट-बाट तो पूर्वकाल से ही रहे होंगे । पितामह सुप्रभदेव राजा वर्मलात के सर्वाधिकारी (मंत्री) ठहरे ।

उनके घर मे किस बात का अभाव था । लालन-पालन सुन्दर रहा होगा । कुछ बड़े होने पर विद्यारम्भ हुआ होगा और विद्यार्थी जीवन जितना श्रेष्ठ उस समय के योग्य निकलना चाहिये था उससे अच्छा ही होगा ।

महाकवि माघ कुछ भी हों, वे कहीं भी पढ़े हों उनका पाण्डित्य अद्भुत था । उनका ज्ञान व्यापक था । व्याकरण पुराण और कामशास्त्र पर तो उनका अधिकार था ही इनके अतिरिक्त आयुर्वेद, ज्योतिष, तर्क, मीमांसा, दर्शन, वेद और वेदांग के भी वे ज्ञाता थे । अर्थशास्त्र और राजशास्त्र का उन्हें पर्याप्त ज्ञान था । इन सब विद्याओं को प्राप्त कर लेने के पश्चात् ही उन्होंने गृहस्थ जीवन में प्रवेश किया होगा ।

इस प्रकार की उच्च विद्याओं को प्राप्त तथा समृद्ध एवं उच्च कुलोत्पन्न माघ पंडित को इस काल के प्रसिद्ध नरेश महाराज वराहमिहिर भोज ने अपने यहाँ उच्च पद देकर सम्मानित किया । अपने कार्य को उन्होंने बड़ी योग्यता एवं क्षमता के साथ सम्पन्न किया । महाराज उन पर बहुत प्रसन्न थे । वे उनको अपना अधीनस्थ न मानकर उनको अपना एक योग्य साथी मानते थे तथा उनके प्रति अपना मैत्रीपूर्ण व्यवहार रखते थे ।

युवक माघ राज्य के उच्च पदों पर कार्य करते हुये अपनी विद्वता से नागरिकों को प्रसन्न रखते थे तथा साथ ही विद्वद् गोष्ठियों में भी भाग लेते थे । इनके पाण्डित्य की उस समय के विद्वानों के मध्य धाक थी । हिन्दू, बौद्ध और जैन तीनों सम्प्रदाय के विद्वानों से इनका सहानुभूति पूर्ण परिचय था ।

महाकवि माघ अपनी युवावस्था में ब्राह्म मुहूर्त में उठकर कविता बनाया करते थे, क्योंकि उस समय चित्त की एकाग्रता रहती थी, वायु भी मन्द-मन्द रूप में बहती हुयी मस्तिष्क शक्ति को और भी अधिक जागरूक रखती है। प्रकृति की छटा उस समय सुन्दर रहती है। किसी भी कार्य को करने की अपूर्व क्षमता रहती है। जिस बात को हम सोच नहीं सकते वह उस समय अतिशीघ्र ही समझ में आ जाती है। अतः महाकवि माघ ने भी कविता करने का यही समय उपयुक्त समझा। ऐसा उनके श्लोक में वर्णित है।[1] सूर्योदय होने तक स्नान से निवृत्त होकर फिर सन्ध्या पर बैठ जाते होंगे, मध्याह्न में भी सन्ध्या पर और सायंकाल में भी सन्ध्या, इस भांति त्रिकाल सन्ध्या कालसन्ध्या करते होंगे तभी तो महाकवि ने प्रथम सर्ग में त्रिकाल सन्ध्या का वर्णन किया है।[2] फिर शास्त्र का अभ्यास दरबार से लौटने के बाद करते होंगे। इसी के साथ ही साथ वह कुछ देर अपने राजदरबार का भी कार्य देखते होंगे। तदुपरान्त कुछ देर के लिये अध्ययन का भी कार्य करते होंगे।[3] यह शास्त्राभ्यास बनाये रखने के लिये करते होंगे।[4]

1- क्षणशयितविबुद्धाः कल्पयन्तः प्रयोगानुदधिमहतिराज्ये काव्यवद्दुर्विगाहे।
गहनमपररात्र प्राप्त बुद्धिःप्रसादाःकवय इव महीपाश्चिन्तयन्तयन्त्यर्थजातम्।।
शिशुपालवध, 11/6

2- स संचरिष्णुर्भुवनान्तरेषु यां यदृच्छयाऽशिश्रियदाश्रयःश्रियः।
अकारि तस्यै मुकुटोपलस्खलत्करैस्त्रिसन्ध्यत्रिदशैर्दिशो नमः।।
शिशुपालवध, 1/46

3- श्लथतां वज्रस्तथापरेषामगलद्धारणशक्तिमुज्झतः स्वाम्।
सुगृहीतमपि प्रमादभाजां मनसःशास्त्रमिवास्त्रमग्रपाणेः।।
शिशुपालवध, 20/35

4- संप्रदायविगमादुपेयुषीरेष नाशमविनाशिविग्रहः।
स्मर्तुमप्रतिहतस्मृतिःश्रुतिर्दत्त इत्यभवदत्रिगोत्रजः।।
शिशुपालवध, 14/79

मध्यान्ह काल में वे भोजन करने के उपरान्त कुछ विश्राम करके अपने राजपद सम्बन्धी कार्य के सम्पादन करने के लिये राजप्रासाद जाते होंगे अन्यथा घर पर ही रह कर शयन करते होंगे तथा तीसरे पहर 4 या 5 बजे काव्यगोष्ठी का आनन्द लेते होंगे। तदनन्तर सायंकालिक नित्यकर्म, संध्यापूजनादि करके भोजनादि से निवृत्त होकर अपने रंगमहल के अन्तः पुर में जाकर विनोदमयी बातों में, कार्यों में व लीलाओं में तल्लीन होते होंगे। इन लीलाओं के चित्र तो इतने आये हैं कि उनकी कोई सीमा नहीं।[1]

महाकवि माघ अपने घर, वेशभूषा, स्त्री की वेशभूषा के सम्बन्ध में भी उल्लेख करते हैं।[2] इस श्लोक के आधार पर ज्ञात होता है कि माघकवि का घर विशाल होगा जिसमें अन्तःपुर के प्रकोष्ठों के झरोखे होंगे और उन झरोखों में छोटी-छोटी जालियाँ होंगी जिनमें से स्त्रियाँ बाहर की हलचल देख रही होंगी, किन्तु बाहर वाले भीतर वाले व्यक्ति को नहीं देख पाते होंगे। ऐसे घर में बैठकर वे विद्वानों तथा कवियों के साथ शास्त्र चर्चा तथा कवि गोष्ठियों का आनन्द प्राप्त करते थे।

1- महाकवि माघ, उनका जीवन तथा कृतियाँ -

डा0 मन मोहन लाल जगन्नाथ शर्मा, पृ0 214

2- दधति परिपतन्त्यो जालवातायनेभ्यस्तरलतपनभासो मन्दिराभ्यन्तरेषु।

प्रणयिषु वनितानां प्रतिरिच्छत्सु गन्तुं कुपितमदनमुक्तोत्प्तनाराचलीलाम्॥

शिशुपाल वध, 11/50

महाकवि माघ के युवावस्था के कार्य संक्षेप में इस प्रकार

1- दैनिक कृत्यों का विधिवत् निष्ठापूर्वक सम्पादन

2- राज्यकार्य का उचित रीति से सम्पादन

3- नियमपूर्वक स्वाध्याय तथा काव्य रचना

4- विद्वानों तथा कवियों के साथ शास्त्र चर्चा एवं काव्य गोष्ठियों में भाग लेना।

5- राज्य सभाओं में पाण्डित्य प्रदर्शन

6- लौकिक जीवन में यथावसर आनन्दोपभोग

7- देशाटन और स्थान-स्थान पर विद्वानों से शास्त्रार्थ आदि

§11§ माघ की वृद्धावस्था -

प्रबन्धचिन्तामणि में ज्योतिषियों ने दत्तक को कहा था कि माघ वैभवशाली होकर फिर दरिद्र हो जायेंगे और इसी रूप में दुःखी होकर वह पंचत्व को प्राप्त होंगे । दत्तक ने देखा कि मनुष्य की आयु 100 वर्ष की होती है अतः 36000 गड्ढे खोदकर उनमें इतना धन कर कर रख दिया कि आयुपर्यन्त वह समाप्त न हो और माघ कभी निर्धन न होने पायें ।[1] प्रभावक चरित्र इस बात के लिये मौन है किन्तु भोज प्रबन्ध में इतना उल्लेख अवश्य है कि माघ महाकवि

1- महाकवि माघ, उनका जीवन तथा कृतियाँ -

डॉ० मनमोहन लाल जगन्नाथ शर्मा, पृ० 216

दरिद्रता के मारे हुये राजा भोज के निकट अवश्य गये होंगे जहाँ से उनकी पत्नी को अभूत धन प्राप्त हुआ किन्तु याचकों की भीड़ मिल जाने से जो कुछ भी भोज से प्राप्त हुआ था वह सब याचकों के निमित्त लग गया । माघ के निकट पहुँचते-पहुँचते कुछ भी शेष नहीं रहा । इस पर माघ के आलाप में एक बात यह भी है कि इस अकाल के समय में हम ब्राह्मणों से कौन अनुष्ठान, यज्ञ आदि करायेगा । मेरे मुख से दरिद्रता के मारे निषेध वाचक शब्द इन याचकों के आगे निकले, इससे पूर्व ही मेरे प्राणों तुम शीघ्र ही निकल जाओ ।

माघ की युवावस्था तो बड़ी विविधताओं से संकुल है किन्तु उस जीवन में वह वैभवशाली अधिक रहे हैं । वैभव और प्रभुत्व के दिनों में कौन ऐसा है जो दुर्व्यसनी न रहा हो । माघ का जीवन प्रायः सभी क्षेत्रों को छूता रहा है । भोग के समय भोग, राग के समय राग, विद्वानों के सम्पर्क में ज्ञान चर्चा, क्रिया-काण्डों के समय विधि चर्चा, विराग के समय ईश्वर भक्ति-ये सब उनके जीवन में मिलेगी ।[1-2]

संभवतः यज्ञ के आचार्य माघ स्वयं बने होंगे अन्यथा विधि पूर्वक उदगाता व होता के नाम लिखकर मंत्रोच्चारण की जानकारी कैसे प्राप्त करते ? यह इनके श्लोकों से ही स्पष्ट है -

1- सप्तभेदकरकल्पितस्वरंसाम सामविदसंगमुज्जगौ ।
तत्रसूनृतगिरश्च सूरयः पुण्यमृग्यजुषमध्यगीषत ।।
शिशुपालवध, 14/2।

2- शब्दितामनपशब्दमुच्चकैर्वाक्यलक्षणविदोऽनुवाक्यया ।
याज्यया यजनकर्मिणोऽत्यजन्द्रव्यजातमपदिश्यदेवताम् ।।
शिशुपालवध, 14/20

महाकवि माघ का अन्तिम समय सुखमय नहीं बीता । अर्थ और बीमारी दोनों लेकर ही वह मरे ।[1] भोज जैसे आश्रयदाता भी उनको मरते समय की वे वेदना से नहीं बचा सके ।[2]

वृद्धावस्था के प्रथम चरण में इन्होंने शिशुपालवध महाकाव्य पूरा किया । भगवद् भक्ति को जो स्वरूप इसमें प्रस्फुटित हुआ है वह उनके जीवन भर के ज्ञान और अनुभवों के निचोड़ के रूप में है । शिशुपालवध की रचना जैसा कि साहित्यों में उल्लेख मिलता है इनके द्वारा तीन खण्डों में की गयी ।

1- युवावस्था के आरम्भ में प्रथम सर्ग की रचना

2- युवावस्था के अन्त में तीसरे तथा आठवें सर्ग की रचना

3- प्रौढ़ एवं वृद्धावस्था में शेष भाग की रचना

युवावस्था की रचनाये प्राय: स्फुट रूप में थी जिनको इन्होंने अन्तिम समय में कुछ पूर्वही क्रमबद्धता प्रदान कर महाकाव्य का अंग बना दिया ।

1- प्रबन्ध चिन्तामणि के अनुसार उन्होंने पूरे 100 वर्ष की आयु पायी किन्तु कदाचित् इससे भी अधिक 136 वर्ष की आयु इन्होंने प्राप्त की हो । ज्योतिष-सिद्धान्तानुसार 120 वर्ष वाला पूर्णायु होता है । पुरातन संग्रह में उनके 84 वर्ष तक जीवित रहने का प्रमाण मिलता है ।

2- दैव के प्रतिकूल हो जाने पर अनेक प्रकार के साधन निष्फल हो जाते हैं । सूर्य के अवलम्बन के लिये उसकी एक सहस्त्र किरणे भी कुछ नहीं कर सकती ।

माघ की सन्तति -

महाकवि माघ की मृत्यु के पश्चात् उनके घर का नाम रखने वाला उनकी एकमात्र पुत्री के अतिरिक्त कोई न था । शिशुपालवध महाकाव्य को देखते हुये ऐसा प्रतीत होता है कि उनके एक से अधिक सन्तति नहीं हुयी थी । भले ही पुत्रियाँ अधिक हुयी हो फिर भी एक पुत्र था ऐसा प्रसंग महाकाव्य में बाललीला के एक श्लोक में आया है [1] जिससे उपर्युक्त अनुमान की पुष्टि होती है

इस दृश्य को देखते हुये महाकवि माघ के चाहे पुत्र हो चाहे पुत्री कोई न कोई अवश्य होना चाहिये जिसकी बाललीला का अनुभव उसने घर में रहते हुये अवश्य किया है जिसका सजीव चित्रण उनके श्लोक से स्पष्ट है ।

महाकवि माघ ने अपनी पुत्री का विवाह किया होगा । पुत्री के रूप चित्र का भी वर्णन भी महाकाव्य में आया है । [2] इस श्लोक से कवि ने यह

1- उदय शिखरिशृगप्रांगणेष्वेव रिङ्गन्
सकमलमुखहासं वीक्षितः पद्मिनीभिः ।
विततमृदुकराग्रःशब्दयन्त्या वयोभिः
परिपतति दिवोऽङ्के हेलया बालसूर्यः ।।
शिशुपालवध, 11/47

2- रथाङ्गभर्त्रेऽभिनवं वराय यस्याःपितेव प्रतिपादितायाः ।
प्रेम्णोपकण्ठं मुहुरङ्कभाजो रत्नावलीरम्बुधिराबबन्ध ।।
शिशुपालवध, 3/36

स्पष्ट करना चाहा है कि जामाता को अपनी पुत्री जब पिता दे देता है तब पिता अपने कन्या के कण्ठ में प्रेमवश रत्नावली बांधता है तथा कन्या दान प्रथा का निर्वाह करता है ।

महाकवि माघ के सामने ही कदाचित् जामाता का देहान्त भी हो गया हो और उसी के साथ उनकी पुत्री सतीत्वधर्म का पालन करती हुयी सती हो गयी हो तो भी कोई आश्चर्य नही है । माघ के कन्या थी । इसका प्रमाण कवि ने पाठकों के सम्मुख उसी बाल सूर्य वाले पुत्र का उदाहरण देते हुये इसके सती होने के दृष्टान्त से रखा है ।[1] इस श्लोक में कवि ने एक छोटी सी बालिका का उपर्युक्त स्थिति का एक यथावत् चित्र खींचा है । एक पुत्री का पिता जो भुक्त भोगी हो जिसने घर में बालक-बालिकाओं के होने, खेलने-बोलने का दृश्य देखा हो-वह ही ऐसे चित्र उपस्थित कर सकता है । इससे तो इस बात की पुष्टि हो जाती है कि उनके एक बालिका भी थी और इससे यह भी स्पष्ट हो जाता है कि उसका विवाह भी सम्पन्न किया गया था । इस कन्या के विवाह के पश्चात् पति के घर जाने का दृश्य भी महाकाव्य में एक स्थान पर परिलक्षित होता है।[2]

1- अरुणजलजराजीमुग्धहस्ताग्रपादा बहुलमधुपमालाकज्जलेन्दीवराक्षी ।
अनुपतति विरावैः पत्रिणां व्याहरन्ती रजनिमचिरजाता पूर्वसन्ध्यासुतेव ।।

शिशुपालवध, 11/40

2- अपशङ्कमङ्कपरिवर्तनोचिताश्चलिताः पुरः पतिमुपैतुमात्मजाः ।
अनुरोदितीव करुणेन पत्रिणां विरुतेन वत्सलतयैष निम्नगाः ।।

शिशुपालवध, 4/47

कैसा करुणोत्पादक दृश्य है यह । शिशु क्र० का दृश्य कवि ने उपस्थित किया है । माघ कवि पक्षियों के कलरव के रूप में इसमें रुदन कर रहे हैं ।

माघ के जामाता ने भी अच्छी आयु प्राप्त की होगी । वह युवावस्था का पूर्ण उपभोग कर 60 या 65 वर्ष की आयु में मृत्यु को प्राप्त हुआ होगा । तब कमलिनी रूपी पुत्री अति दुःखी अवस्था में उसी के पीछे रोती-रोती अन्ततोगत्वा सती हो गयी होगी । ऐसा भी एक चित्र काव्य से एक स्थान पर परिलक्षित होता है ।[1]

शिशुपाल वध महाकाव्य में, जो वृद्धावस्था में समाप्त किया हुआ प्रतीत हो रहा है ऐसा संकेत नहीं मिलता है जिससे पता चलता हो कि कवि की कोई सन्तति उनकी वृद्धावस्था तक जीवित रह कर उनकी उस अवस्था तक सहारा बनी हो ।[2]

अतः निष्कर्ष रूप में हम यह कह सकते हैं कि अन्तिम समय में महाकवि को सहारा देने व वंश की रक्षा करने वाली कोई भी संतति जीवित न रही ।

1- रुचिधाम्नि भर्तरि भृशं विमलाः परलोकमभ्युपगते विविशुः ।
ज्वलनं त्विषः कथमिवेतरथा सुलभोऽन्यजन्मनि स एव पतिः ।।

शिशुपालवध, 9/13

2- महाकवि माघ, उनका जीवन तथा कृतियाँ-

डॉ० मन मोहन लाल जगन्नाथ शर्मा,

पृ० 219

माघ की रचनायें -

माघ की एकमात्र रचना शिशुपाल वध के विषय में लिखने के पूर्व यह निर्धारित करना आवश्यक है कि क्या माघ जैसे महापंडित एवं विद्वान कवि ने केवल एक ग्रन्थ की रचना की ? जिसकी आयु इतनी लम्बी हो, जिसको वैभव प्राप्त हो और इन सबसे परे जिसमें यश प्राप्त करने की उत्कट भूख हो क्या ऐसा कवि केवल एक ही काव्य की रचना कर शान्त रहा सकता है ? शिशुपाल वध महाकाव्य के अतिरिक्त माघ के नाम से अन्य श्लोक भी सुभाषित रत्न भाण्डागारम् औचित्य विचार चर्चा, जीवन वार्ता आदि ग्रन्थों मे परिलक्षित होते हैं । इससे यह अनुमान लगाया जा सकता है कि महाकवि माघ ने शिशुपाल वध महाकाव्य के अतिरिक्त किसी और ग्रन्थ की रचना की हो जो आज तक प्राप्त नही हो सका। किसी ने उसको प्राप्त करने का प्रयास ही नही किया अथवा स्वतः ही वे ग्रन्थ नष्टभ्रष्ट हो गये हों अथवा अज्ञानावस्था में नष्टभ्रष्ट कर दिये गये हों अथवा मुसलमानों के हाथों पड़कर हम्माम को गर्म करने के लिये जला दिये गये हों । यह भी हो सकता है कि उन्होंने स्फुट रचनायें ही लिखी हों और प्रबन्ध काव्य के रूप में मात्र शिशुपाल वध ही लिखा हो ।

धारा नगरी के भोजतक काव्य ग्रंथों का, लक्षण ग्रन्थों का, नाटकों एवं गद्य ग्रन्थों का महान् आदर रहा क्योंकि राजा भोज स्वयं कवि, आलोचक एवं लेखक व गुण ग्राहक थे । अतः जो ग्रन्थ प्रकाश मे न थे वे भी उसके समय में प्रकाश में लाये गये थे । महाराजा भोज ११वीं शताब्दी में थे । धर्म का नाश करने वाले,

ग्रन्थों को नष्ट-भ्रष्ट करने वाले, हिन्दू धर्म का मुस्लिम धर्म में परिवर्तन करने वाले तथा मुस्लिम धर्म का प्रचार करने वाले मुस्लिमों का भारत में आगमन हिन्दू धर्म साहित्यों और साहित्यिक ग्रन्थों को नष्ट करने वाला था । अतः हो सकता है कि माघ कवि की अन्य रचनायें भी नष्ट कर दी गयी हों, जला दी गयी हों व गाड़ दी गयी हों किन्तु यह बात तो उनके शिशुपाल वध पर भी घटित हो सकती थी । माघ काव्य कैसे बचा रहा जब कि अन्य ग्रन्थ नष्ट कर दिये गये । जो श्लोक अन्यत्र मिलते हैं उनके सम्बन्ध में आलोचकों का कहना है कि ये बिखरे हुये श्लोक माघ काव्य के अतिरिक्त किसी अन्य ग्रन्थ से उद्धृत हैं जिनको भी माघ ने ही बनाये थे और अपने मूल रूप में जो आज अप्राप्य हैं । सुभाषित रत्नभाण्डागारम् में ये श्लोक माघ के नाम से मिलते हैं ।

माघ के फुटकर श्लोक -

इन समस्त श्लोकों के अतिरिक्त महाकवि माघ से सम्बन्ध रखने वाले दूसरे भी श्लोक हैं जो भोज प्रबन्ध और प्रबन्ध चिन्तामणि में महाकवि माघ के मुख से कहलाये गये बताये जाते हैं [1] किन्तु मूलरूप में अभी तक ऐसा कोई माघ विरचित अन्य ग्रन्थ नहीं प्राप्त है जिसमें उल्लिखित समस्त श्लोक क्रमबद्ध रूप से वर्णित हों - यह कहना उचित एवं तर्क संगत नहीं है कि महाकवि माघ ने ही इन श्लोकों की रचना की है ।

1- हिस्ट्री ऑफ क्लासिकल संस्कृत लिटरेचर- एम०कृष्णमाचार्य, पृ० 157

अत: निष्कर्ष यह निकला कि महाकवि माघ ने अपने जीवन में कदाचित् एक ही ग्रन्थ की रचना की थी और वह रचना माघ काव्य-"शिशुपालवध" है - अन्य श्लोक तो फुटकर हैं जिनका कोई ठोस प्रामाणिक आधार नहीं है ।

शिशुपालवध की टीकायें -

शिशुपालवध महाकाव्य पर विद्वानों ने समय-समय पर कई टीकायें लिखी गयी । प्रमुख टीकाकार इस प्रकार हैं -चारित्रवर्धन, वेद भट्ट, देवराज, हरिदास, श्री रंगदेव, श्रीकान्त, भारतसेन, चन्द्रशेखर, कवि वल्लभ चक्रवर्ती, लक्ष्मीनाथ, भागवदत्त, वल्लभदेव, महेश्वर पंचानन, भागीरथ, जीवानन्द विद्यासागर, गरुण, आनन्ददेववानी, दिवाकर, बृहस्पति, राजकुंड, जयसिंहाचार्य, मल्लिनाथ, पद्मनाथदत्त, वृणाकर, रंगराज, एकनाथ, भारतमल्लिका, गोपाल और एक अज्ञात नामा व्यक्ति ।

माघ की विद्वता एवं व्यापक बहुज्ञता -

महाकवि माघ के शिशुपालवध को आदि से लेकर अन्त तक के अध्ययन से यह स्पष्ट होता है कि महाकवि माघ का संस्कृत भाषा पर असाधारण अधिकार रहा होगा । वह न केवल मानव प्रकृति को ही समझते थे अपितु अश्व, गज आदि पशुओं के भी ज्ञाता थे । अचेतन प्रकृति में चेतना का स्फुरण कराने की अद्भुत क्षमता तो उनके काव्य के प्रकृति वर्णन में पूर्ण रूप से दृष्टिगोचर है । नव सर्गगते माघे नव शब्द न विद्यते अथवा काव्येषु माघ: कवि कालिदास: ये सूक्तियाँ उनके लिये निराधार सिद्ध नहीं होती ।[1] महाकवि माघ की प्रतिभा बहुमुखी थी ।

1- महाकवि माघ उनका जीवन तथा कृतियाँ - डॉ0मनमोहन लाल जगन्नाथ शर्मा, पृ0399

उस प्रतिभा का उपयोग जिस भी दिशा में हुआ वही दिशा उनके कवित्व के अद्भुत आलोक से उद्भासित हो गयी । भिन्न रुचिर्न्हिलोके उक्ति भी उनके काव्य में यमक योजना पर उचित प्रतीत होती है । कोई विद्वान उनके अर्थालंकारों की प्रशंसा करता है तो कोई उनके काव्य सौष्ठव की । कोई उनके वर्णन वैचित्र्य पर आकर्षित होता है तो कोई उनके भाव सौष्ठव पर । कोई उनकी किसी कल्पना से ही मुग्ध होता है तो किसी को उनके पाण्डित्य पर आश्चर्य होता है । इस प्रकार उनकी बहुज्ञता का परिचय अभीष्ट ही है ।

क- वेद और दर्शन का ज्ञान -

महाकवि माघ का श्रुति विषयक ज्ञान अत्यन्त प्रशंसनीय है । प्रातः काल के समय का अग्निहोत्र वर्णन अत्यन्त ही सुन्दर एवं रोचक ढंग से उनके काव्य में मिलता है ।[1]

यज्ञ सम्बन्धी समस्त बातों एवं क्रिया कलापों का उन्हें पूर्ण ज्ञान था । वेद की ऋचायें स्वर सहित कैसे बोली जाती हैं-इसका भी उन्हें पूर्ण ज्ञान था ।[2]

1- प्रतिशरणमशीर्ण ज्योतिरग्न्याहितानां विधिविहितविरब्धैः सामधेनीरधीत्य।
कृतगुरुदुरितौघध्वंसमध्वर्युवर्यैर्हुतमयमुपलीढे साधु सानाय्यमग्निः ।।

शिशुपालवध, 11/41

2- सप्तभेद कर कल्पित स्वरं साम सामविदसंगमुज्जगौ ।
तत्र सूनृत गिरश्च सूरयः पुण्यमृग्यजुषमध्यगीषत ।।

शिशुपालवध, 14/21

महाकवि माघ को सांख्य सिद्धान्तों का पर्याप्त ज्ञान था। इसका उल्लेख राजसूय यज्ञ वर्णन वाले स्थान पर मिलता है।[1] योगशास्त्र की चर्चा करते समय भी उनका सांख्य ज्ञान स्पष्ट रूप से हम सबके समक्ष परिलक्षित होता है।[2]

महाकवि माघ के मीमांसा दर्शन के ज्ञान का परिचय राजसूय यज्ञ के प्रसंग में मिलता है।[3]

अद्वैत वेदान्त के तत्वों का प्रतिपादन भी कई स्थान पर शिशुपाल वध में दृष्टिगत है। संसार को मिथ्या माया स्वीकार कर ब्रह्म अथवा परमात्मा को ही एकमात्र सत्य बताने की बात तथा केवल ब्रह्म ज्ञान प्राप्ति की साधना एवं मोक्ष प्राप्ति की उत्कट अभिलाषा को माघ ने अनेक स्थानों पर प्रकट किया है। वेदान्त के कुछ अन्यान्य सिद्धान्तों की भी उन-उन अवसरों पर चर्चा आयी है।[4-5]

1- तस्यसांख्यपुरुषेणतुल्यतां बिभ्रतः स्वयमकुर्वतः क्रियाः ।
कर्तृता तदुपलम्भतोऽभवद्वृत्तिभाजिकरणे यथार्त्विजि ।।

शिशुपालवध, 14/19

2- शाब्दितामनपशब्दमुच्चकैर्वाक्यलक्षण विदोऽनुवाक्यया ।
याज्यया यजनकर्मिणोऽत्यजन्द्रव्यजातमपदिश्य देवताम् ।।

शिशुपालवध, 14/20

3- मैत्र्यादिचित्त परिकर्मविदो विधाय क्लेशप्रहाणमिह लब्धसबीजयोगाः ।
ख्यातिं च सत्व पुरुषान्यतयाधिगम्य वांछन्ति तामपि समाधि भृतो निरोद्धुम् ।।

शिशुपालवध, 4/55

4- ग्राम्यभावमपहातुमिच्छवो योगमार्गपतितेन चेतसा ।
दुर्गमेकमपुनर्निवृत्तये यं विशन्ति वशिनं मुमुक्षवः ।। शिशुपालवध, 14/64

5- उदीर्णरागप्रतिरोधकं जनैरभीक्ष्णमक्षुण्णतयाऽतिदुर्गमम् ।
उपेयुषो मोक्षपथं मनस्विनस्त्वमग्रभूमिर्निरपायसंश्रया ।।

शिशुपालवध, 1/32

महाकवि माघ ने एक स्थान पर और व्यक्त किया है कि जिस तरह जीवात्मा पूर्व शरीर की पाँचो इन्द्रियों के साथ नवीन देह में प्रविष्ट होता है उसी भाँति भगवान श्रीकृष्ण ने इन्द्रप्रस्थ में प्रवेश किया ।[1] इस श्लोक में पुनर्जन्म का एक सनातमरूप बड़ी सुन्दरता से प्रस्तुत किया है । इन उदाहरणों से यह विदित होता है कि महाकवि माघ वेद और दर्शन के रहस्य को बारीकी से समझते थे ।

(ख) पौराणिक ज्ञान -

पौराणिक ज्ञान भी कवि का असीम था । प्रतीत होता है कि कवि को समस्त पुराणों, महाभारत, भागवत, गीता आदि की पूर्ण जानकारी थी । काव्य को आदि से अन्त तक पढ़ लेने पर ज्ञात होता है कि पौराणिक कथायें तो माघ की जिह्वा पर नाचती थी । पद-पद पर काव्य में किसी न किसी कथा का उल्लेख है और इस तरह वहाँ अनेक पुराणों की कथायें आ गयी हैं ।[2-4]

1- असकृदगृहीतबहुदेहसम्भवस्तदसौ विभक्तनवगोपुरान्तरम् ।
पुरुषः पुरं प्रविशति स्मपंचभिः समभिन्द्रियैरिव नरेन्द्रसूनुभिः ।।

शिशुपालवध, 13/28

2- गतया निरन्तरनिवासमद्भुरः परिनाभिनूनमवमुच्य वारिजम् ।
कुरुराज निर्दयनिपीडनाभयान्मुखमद्भुरोहि मुरविद्विषः श्रिया ।।

शिशुपालवध, 13/11

3- शिरसि स्म जिघ्रति सुरारिबन्धनेछलवामनं विनयमानं तदा ।
यशसेव वीर्यविजितामरद्रुमप्रसवेन वासितशिरोरुहे नृपः ।।

शिशुपालवध, 13/12

4- प्रजा इवाङ्गदरविन्दनाभेः शम्भोर्जटाजटतटादिवापः ।
मुखादिवाय श्रुतया विधातुः पुरान्निरीयुर्मुरजिद्ध्वजिन्यः ।।

शिशुपालवध, 3/65

(ग) साहित्यक ज्ञान -

महाकवि माघ को साहित्य के विभिन्न अंगों का पूर्ण ज्ञान था। अतः क्या अलंकार शास्त्र, क्या छन्दशास्त्र, तथा क्या रस सिद्धान्त सब ही साहित्यक बातों की चर्चा उनके काव्य में आ गयी है।

(घ) सामरिक ज्ञान -

युद्ध विषयक बातों की माघ काव्य में आश्चर्य जनक चर्चा हुयी है। कवि ने महाकाव्य में न केवल सैनिक प्रमाण के यथावत् वर्णनों में युद्ध सम्बन्धी बातों का परिचय दिया है किन्तु युद्धस्थल का भी रोमांचकारी तथा यथावत् वर्णन किया है। इन दृश्यों को पढ़ने से यह अनुमान लगने लगता है कि कवि को रणभूमि का प्रत्यक्ष अनुभव है। युद्ध के ऐसे विपुल वर्णन काव्य में अन्यत्र दुर्लभ हैं। वन विहार, जलविहार, चन्द्रोदय वर्णन, नायिकाओं के उपालंभ आदि श्रृंगार सम्बन्धी बातों से पाठकों को मुग्धकर कवि उन्हें एक यज्ञ में सम्मिलित कर देता है और फिर सहसा एक युद्ध का दृश्य उनके सामने आता है। बात ही बात में एक घमासान युद्ध हो जाता है जिसमें विभिन्न अस्त्र-शस्त्र आंखों के सामने नाचने लगते हैं। कवि की यह वर्णन चारुता पाठकों को अवाक् कर देती है।

(ङ) संगीत शास्त्र का ज्ञान-

साहित्य शास्त्र की अन्य बात पर जैसे कवि का अधिकार था वैसा ही अधिकार संगीत एवं अन्यान्य ललित कलाओं पर भी था। गायन, वाद्य

स्वर ताल, लय आदि के सम्बन्ध में कवि की अधिकारपूर्ण उपमायें एवं उक्तियाँ सिद्ध करती हैं कि महाकवि संगीत प्रेमी थे। उनकी संगीत निपुणता उनके श्लोक से स्पष्ट होती है।[1-2]

(च) <u>नाट्य शास्त्र का ज्ञान</u> -

नाट्यशास्त्र का भी महाकवि माघ को पूर्ण ज्ञान था। इन्होंने विभिन्न नाट्यांगों की उपमा बहुत ही सुन्दर ढंग से की है।[3] नाटकों की मुख सन्धि को विस्तृत एवं अन्यान्य प्रतिमुख, गर्भ, विमर्श, निवर्हण, संधियों को क्रमशः सूक्ष्म रखना चाहिये-इसका वर्णन बहुत ही कमनीय ढंग से कवि ने प्रस्तुत किया है।[4]

1- रणद्भिराघट्टनया नभस्वतः पृथग्विभिन्न श्रुतिमंडलैः स्वरैः।
स्फुटीभवद्ग्राम-विशेषमूर्च्छनामवेक्षमाणं महतीं मुहुर्मुहुः॥

शिशुपालवध, 1/10

2- श्रुति समधिकमुच्चैः पंचमं पीडयन्तः सततमृषभहीनं भिन्नकीकृत्य षड्जम्।
प्रणिजगदुरकाकुश्रावकस्निग्धकंठाः परिणतिमिति रात्रेर्मागधा माधवाय॥

शिशुपालवध, 11/1

3- दधतस्तनिमानमानुपूर्व्या बभुरक्षिश्रवसो मुखे विशालाः।
भरतज्ञकविप्रणीतकाव्यग्रथिताङ्का इव नाटकप्रपंचाः॥

शिशुपालवध, 20/44

4- स्वादयन्रसमनेक संस्कृत-प्राकृतैरकृतपात्रसंकरैः।
भावशुद्धिसहितैर्मुदंजनो नाटकैरिव बभार भोजनैः॥

शिशुपालवध, 14/50

जिस भांति दर्शकगण नाटकों को देखते समय श्रृंगार आदि नवों रसों का अनुभव करते हुये आनन्द प्राप्त करते हैं। उसी भांति युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ में आये हुये लोग भोजन करते समय मधुर अम्ल आदि छहों रसों के व्यंजनों का आस्वादन कर आनन्द प्राप्त कर रहे थे। नाटक में जिस भांति संस्कृत, प्राकृत अनेक भाषाओं का व्यवहार होता है। उसी भांति उस यज्ञ के भोज पदार्थों में भी बहुत पदार्थ संस्कृत अथवा पकाये गये थे और कुछ प्राकृत अथवा वैसे ही रखे गये थे। जिस भांति नाटक में एकपात्र का अभिनय कोई दूसरा अभिनय नहीं करता था उसी प्रकार भोजन के एक पात्र से दूसरा पात्र नहीं मिलता था। नाटक में जैसे शुद्ध स्थायी भाव रहता है वैसे ही यज्ञ के भोज्य पदार्थों में भी स्वाभाविक शुद्धि होती है। इस दृष्टान्तों से महाकवि माघ की नाट्य विषयक जानकारी प्राप्त होती है।

§छ§ राजनीति विषयक ज्ञान -

महाकवि की राजनीतिज्ञता का परिचय विशद रूप से महाकाव्य में दृष्टिगोचर होती है। द्वितीय सर्ग के श्रीकृष्ण-उद्धव बलराम संवाद से तथा राजसूय यज्ञ अवसर पर पर युधिष्ठिर और भीष्म द्वारा कहे गये वाक्यों से महाकवि माघ के गंभीर राजनीतिक ज्ञान का पता चलता है। राजनीतिपारंगत इस कवि ने अपने काव्य में बहुत से राजनीतिक तत्व हमारे सम्मुख रखे हैं। राजा के क्या-क्या कर्तव्य होने चाहिये, राजा की सेना सम्बन्धी नीति क्या होनी चाहिये, संधि, विग्रह आदि के प्रयोग किस तरह किये जाने चाहिये आदि सामान्य

और विशेष बातों को अपनी युक्तियाँ देकर तर्क की कसौटी पर रखकर पाठ को हेतु सरल और सहज बना कर अपनी राजनीति विजय सीमा में अपनी प्रवीणता का परिचय कवि ने कराया है ।

(ज) आयुर्वेद का ज्ञान -

आयुर्वेद अथवा वैद्यक शास्त्र का महाकवि माघ को पूर्ण ज्ञान था क्योंकि तत्सम्बन्धी सूक्ष्म बातों तक का उल्लेख हम शिशुपाल वध में इधर उधर प्राप्त करते हैं । यहाँ नहीं कहीं-कहीं तो वह एक वैद्य के रूप में भी उपस्थित दिखायी देते हैं ।

जिस भाँति तरुण ज्वर में जिसमें पसीना होने पर शान्ति हो सकती है, जल से स्नान करा देने से रोगी का ज्वर बिगड़ जाता है, उसी प्रकार दण्डनीय शत्रु के साथ सन्धि की बात करने से वह भी बिगड़ जाता है ।[1] इस तरह अन्यत्र भी आयुर्वेद सम्बद्ध प्रसंग काव्य में आये हैं जिनसे कवि के आयुर्वेद ज्ञान का परिचय मिलता है । श्लोक 2/96, 2/84, 2/93, 2/94, 3/72, 12/72, 20/76 इसके प्रमाण हैं ।

(झ) ज्योतिष ज्ञान -

कवि ने आयुर्वेद की तरह ज्योतिष शास्त्र का भी अध्ययन किया था । काव्य में कई स्थानों पर इसके उल्लेख प्राप्य हैं । यह बात उनके श्लोक 3/21 से प्रमाणित होती है ।

1- चतुर्थोपायसाध्ये तु रिपौ सान्त्वमपक्रिया ।
स्वेद्यमामज्वरं प्राज्ञः कोऽम्भसा परिषिञ्चति ।।

चक्रधारी महारथी श्रीकृष्ण जो सदैव अभिलषित वस्तुओं का सम्पादन करने वाले हैं जिनका मार्ग सब दिशाओं में बाधा रहित है तथा जिनकी गति तीव्र है आज अपने पुष्परथ में उसी तरह अवस्थित है जैसे पुण्य नक्षत्र में अवस्थित चंद्रमा हों ।[1]

इस तरह अन्यत्र भी ज्योतिष सम्बन्धी कई प्रसंग आये हैं जिनमें कवि के ज्योतिर्विद होने का प्रमाण मिलता है । श्लोक 2/84,2/93,2/94 इसी सन्दर्भ में दृष्टव्य हैं ।

(न) पशु विद्या का ज्ञान -

महाकवि माघ को पशु प्रकृति का जैसा निकट का परिचय था वैसा कदाचित् ही किसी कवि का रहा हो । उन्होंने हाथी, घोड़ो, ऊँटो, सांडों आदि का यथावत् वर्णन किया है । काव्य के श्लोक 5/49, 5/50, 12/5, 12/12 17/68, 18/6 इसके ज्वलन्त प्रमाण हैं ।

(ट) व्याकरण शास्त्र का ज्ञान -

माघ कवि व्याकरण के विशेष पण्डित थे । अपने समय में वे महावैयाकरण कहलाते थे और इसमें कोई संदेह नहीं कि वह इस पद के सर्वथा

1- रराज सम्पादकमिष्टसिद्धेः सर्वासु दिक्ष्वप्रतिषिद्धमार्गम् ।
महारथः पुष्परथं रथाङ्गी क्षिप्रं क्षपानाथ इवाधिरूढः ।।

शिशुपालवध, 3/22

योग्य थे । शिशुपाल वध का एक-एक श्लोक उनके व्याकरण के पाण्डित्य का साक्षी है । इसी लिये आलोचकों को यह भ्रम हुआ कि भट्टि काव्य की भाँति शिशुपाल वध भी व्याकरण के नियमों को समझाने के लिये रचा गया है । यह एक सत्य है कि शिशुपालवध व्याकरण सिखाने के लिये नहीं रचा गया । यह तो पूर्णतया एक महाकाव्य है जिसमें व्याकरण सम्बद्ध श्लोक प्रचुर मात्रा में हैं । 19वें सर्ग का 103वां श्लोक इसका एक उदाहरण है[1]। इस श्लोक में यह कहा गया है कि गर्वोद्धत शत्रुओं को मारने वाले उन भगवान श्रीकृष्ण के बाण (पा धातु के) पान करने के अर्थ में तो शत्रुओं के रक्त पान कर रहे थे और रक्षा करने के अर्थ में जगत् की रक्षा कर रहे थे।

उपसर्ग का प्रयोग क्यों किया जाता है-इसका भी उदाहरण द्वारा कवि ने उत्तर दिया है[2]। मदिरा के उत्कट नशे ने स्त्रियों के अंगों में विद्यमान किन्तु चिरकाल तक अप्रयुक्त होने वाले विलास को इस भाँति प्रकट कर दिया जैसे धातु में विद्यमान अर्थ को उपसर्ग प्रकट कर देता है ।

इस प्रकार कई स्थानों पर श्लोकों (2/112, 19/75, 19/80, 14/23, 14/24, 4/61, 14/66, 14/48, 14/20, 1/14, 1/15, 1/16,

---

1- उद्धतान् द्विषतस्तस्य निघ्नतो द्वितयं ययुः ।
पानार्थे रुधिरं धातौ रक्षार्थे भुवनं शराः ।।

शिशुपालवध, 19/103

2- सन्तमेव चिरमप्रकृतत्वाद प्रकाशितमदिद्युतदङ्गे ।
विभ्रमं मधुमदः प्रमदानां धातुलीनमुपसर्ग इवार्थम् ।।

शिशुपालवध, 10/15

3/70, 3/73, 5/50) द्वारा उदाहरण प्रस्तुत करते हुये व्याकरण निष्ठ प्रयोगों को पाठकों के समक्ष रखा है । उनके इन नवीनतम प्रयोग तथा सिद्धान्त के उल्लेख को देखकर सहज ही यह अनुमान होता है कि व्याकरण उनके लिये एक सरल एवं प्रिय विषय रहा होगा । व्याकरण की परिभाषायें अतिनीरस हुआ करती हैं किन्तु उन्होंने उन परिभाषाओं का अपनी मनोहर उपमाओं में प्रयोग किया है और उसका संयोग अत्यन्त मनोहर हो गया है । व्याकरण के सूक्ष्म से सूक्ष्म नियमों का उन्होंने कहीं उल्लंघन नहीं किया । कदाचित् एकआध स्थल ही ऐसा करना पड़ा हो परन्तु यह तो स्पष्ट ही है कि व्याकरण चर्चा अप्रस्तुत विधान के रूप में आयी है । अलंकार रूप में रहने से उससे उनके काव्य की शोभा वृद्धि ही हो रही है ह्रास नहीं हो रहा है ।

माघ के सम्बन्ध में इसी निष्कर्ष पर पहुँचना ठीक है कि वह न केवल एक सरल कवि थे किन्तु अनेक शास्त्रों के सर्वमान्य विद्वान भी थे । ऐसी विद्वता दूसरे संस्कृत कवियों में बहुत कम देखने को मिलती है । भारवि में राजनीतिक दक्षता और श्रीहर्ष में दार्शनिक पटुता अवश्य है किन्तु माघ अनेक शास्त्रों में पारंगत होने से इनसे कहीं आगे बढ़ जाते हैं । क्या हिन्दू दर्शन, क्या बौद्ध दर्शन, क्या नाट्यशास्त्र, अलंकार शास्त्र, व्याकरण, संगीत, काव्य, आयुर्वेद, अश्व विद्या, गज विद्या सामाजिक विज्ञान, मनोविज्ञान, अथवा क्या पुराण, ज्योतिष, स्मृति, वेद, वेदांग आदि शास्त्र का उत्कृष्ट ज्ञान उन्हें प्राप्त था । उन्होंने पांडित्य को कवित्व का अंग बनाया कवित्व को पांडित्य का नहीं । अतः यह कहना महाकवि के लिये अधिक युक्तिसंगत होगा कि कवित्व की प्राप्ति के लिये उन्होंने एक बड़ी साधना की । वह कवि प्रथम थे आचार्य बाद में ।

राज्याश्रयी माघ -

प्रभावक चरित और सिद्धर्षि प्रबन्ध से यह स्पष्ट है और सिद्ध भी है कि महाकवि माघ के पितामह श्री सुप्रभदेव राजा वर्मलात के मन्त्री थे। इनके पुत्र दत्तक बड़े योग्य व्यक्ति थे जिनके पास अटूट धन था। दत्तक ने माघ को इतना धन दिया जो उनकी 100 वर्ष तक की आयु के लिये पर्याप्त हो सकता था। वह दत्तक धन की विपुल राशि कहाँ से प्राप्त किये? क्या वह दत्तक भी किसी राजा के यहाँ कार्यरत थे अथवा सुप्रभदेव का ही उपार्जित किया हुआ धन इतना प्रचुर था जिससे महाकवि माघ को राजसी वैभव प्राप्त हो सके? शिशुपाल वध महाकाव्य में तो केवल सुप्रभदेव के मंत्री होने की बात है। दत्तक के विषय में राज्याश्रय वाली कोई बात नहीं है। दत्तक लोक सम्मानित व्यक्ति थे और सर्वाश्रय नाम से प्रसिद्ध थे। सर्वाश्रय होना तभी सार्थक हो सकता है जब वह राज्य सम्मानित और वैभवशाली हों। दत्तक भी अपने पिता निश्चय ही सुप्रभदेव की ही भाँति राज्य में एक अच्छे पद पर रहे होंगे। राज्याश्रय काल में ही सुप्रभदेव तथा उनके पुत्र दत्तक के द्वारा उपार्जित धन ने कवि माघ को इतना धनी बना दिया था कि छोटे-मोटे राजा तो साधारण जनों की भाँति माघ के घर पर आया-जाया ही करते थे किन्तु भोज जैसे महान राजा भी उनके यहाँ आतिथ्य से प्रसन्न हुये।

सम्पत्तिशाली होने के साथ ही वह विभिन्न विषयों के ज्ञाता थे। वेद, वेदांग, शास्त्र, पुराण, विभिन्न कोश सभी तो उन्हें कण्ठाग्र थे। इनके

अतिरिक्त उनको अन्य बहुत सी बातों का भी पूरा-पूरा ज्ञान था । लक्ष्मी के स्वामी तथा सरस्वती के वरद पुत्र महाकवि माघ लौकिक रूप से एक दृष्टि से निर्द्वन्द थे । फिर वह ऐसे कुल में उत्पन्न हुये थे जिसको राज्याश्रय प्राप्त था । उस काल में राज्याश्रयी व्यक्ति विशेष रूप से सम्मानित होते थे । सम्भव है कि महाकवि माघ ने राज्याश्रय प्राप्त किया हो[1] । भोज के सत्कार की बात तथा जगत् स्वामी के मन्दिर का पुण्य लाभ की बात इससे मेल बैठता है[2] । शिशुपालवध महाकाव्य के कुछ श्लोक भी इसके प्रमाण प्रस्तुत करते हैं जिनसे यह सिद्ध होता है कि महाकवि माघ निश्चित ही किसी राजा के आश्रय में थे ।[3-4]

1- महाकवि माघ, उनका जीवन तथा कृतियाँ -

डॉ0मनमोहनलाल जगन्नाथ शर्मा, पृ025

2- क्षणमयमुपविष्टः क्ष्मातलन्यस्तपादः प्रणति परमवेक्ष्य प्रीतिमह्नाय लोकम् ।
भुवनतलमशेषं प्रत्यवेक्षिष्यमाणः क्षितिधरतटपीठादुत्थितः सप्तसप्तिः ।।

शिशुपालवध, 11/48

3- न तस्थौ भर्तृतः प्राप्तमान संप्रतिपत्तिषु ।
रणैकसर्गेषु भयं मानसं प्रतिपत्तिषु ।।

शिशुपालवध, 19/38

4- मुक्ताफलयोगशुद्धिभाजां गुरुपक्षाश्रयिणां शिलीमुखानाम् ।
गुणिना नतिमागतेन संधिः सहचापेन समंजसो बभूव ।।

शिशुपालवध, 20/9

माघ का व्यक्तित्व -

महाकवि माघ का बदन गोरा, लम्बा व आकर्षक था । वे अत्यन्त रूपवान व स्वस्थ थे । गले में मूल्यवान्, मोतियों की माला आभूषण के रूप में और वक्ष:स्थल पर यज्ञोपवीत रहता था । वे बहुत ही महीन सफेद धोती धारण करते थे तथा उनके कन्धे के चारों ओर उपवस्त्र पड़ा रहता था । वे स्वभाव से विनोदी व्यक्ति थे ।[1] जब कभी किसी संभाषण में दूसरों की गोष्ठी में सम्मिलित होते थे तब उनके बोलने में वैचित्र्य भरा रहता था । वे प्राय: प्रसन्नचित्त रहते थे । आपत्तियों के अवसर-पर भी वह मुस्कराते ही रहते थे । उनका व्यवहार बहुत ही कोमल एवं उदार था । प्रकृति से तो वह विनीत थे । पर वे जो कुछ कार्य करते उसमें यश, प्रतिष्ठा एवं प्रशंसा की एक उत्कट चाह उनके हृदय में बनी रहती थी । इनका काव्य इस बात का प्रमाण है कि उन्होंने इसी यशोलिप्सा के कारण अपने पाण्डित्य, चमत्कारी प्रतिभा, एवं बहुज्ञता का स्थान-स्थान पर परिचय दिया है । कभी-कभी कालिदास से टक्कर लेते हुये दिखायी पड़ते हैं और कभी भारवि को परास्त करते हुये दिखायी पड़ते हैं । उनमें कवित्व एवं पांडित्य का गुण का समन्वय स्पष्ट रूप से दृष्टिगत होता है । धर्म के प्रति उनके समभाव थे । किसी भी धर्म के प्रति उनकी कोई अश्रद्धा नहीं दिखायी पड़ती । वे धार्मिक समन्वय में विश्वास रखने वाले व्यक्ति थे । वैसे वे विशुद्ध सनातनी धर्मी

1- महाकवि माघ, उनका जीवन तथाकृतियाँ -

डॉ० मन मोहन लाल जगन्नाथ शर्मा, पृ० 232

परम्परा के पोषक व अनुगामी थे फिर भी वह जैन बौद्ध आदि तत्काल प्रचलित धर्म के प्रति भी आस्था रखते थे ।

इन सब बातों के अतिरिक्त महाकवि माघ अपने ढंग के श्रृंगार प्रेमी रसिक व्यक्ति थे । सरल रसिकता के कारण प्रेम की गहराई के दर्शन उनके जीवन में नहीं होते । उनका प्रेमवासना प्रधान है -ऐसा कहना यदि उचित नहीं है तो कम से कम उन्होंने जिस प्रेम का वर्णन किया है - वह वासना का वर्णन कहा जा सकता है - प्रेम का नहीं । उसमें अपने प्रेमी अथवा प्रिय के प्रति जो भावों की अपेक्षित उच्चता एवं विशालता अथवा सर्वस्व समर्पण करने की भावना होनी चाहिये - उसके दर्शन नहीं होते । उनके व्यक्तित्व का यह कोना शून्य सा है, थोड़ा विकृत भी ।

﴾ द्वितीय अध्याय ﴿

कथावस्तु-वर्णन

शिशुपाल वध महाकाव्य की कथा अनेक ग्रन्थों में उपलब्ध है ।[1-2] इस महाकाव्य की कथावस्तु महाभारत के सभापर्व, राजसूय पर्व, अर्घाभिहरण पर्व, शिशुपाल वध पर्व में प्राप्त होती है ।[2-3] श्रीमदभागवत के दशम स्कन्ध के 69वे से 74वें अध्याय में भी इसका उल्लेख हमें मिलता है ।[4] इसके अतिरिक्त पदमपुराण[5], विष्णु पुराण[6] तथा ब्रहमवैवर्त पुराण[7] में भी यह कथा संक्षेप में वर्णित है ।

शिशुपाल वध कथा का आधार महाभारत है किन्तु श्रीमदभागवत् में यह कथा संक्षेप में है । शिशुपाल वध महाकाव्य की रचना माघ कवि ने महाभारत की कथा के आधार पर की है ।

1- महाकवि माघ, उनका जीवन तथा कृतियां - डॉ० मनमोहन लाल जगन्नाथ शर्मा, पृ० सं० 313

2- बृहत्त्रयी एक तुलनात्मक अध्ययन - डॉ० सुषमा कुलश्रेष्ठ, पृ०सं०-43

3- महाभारत सभापर्व, 33 से 45 अध्याय तक

4- श्रीमदभागवत दशम स्कन्ध, 69 से 74 अध्याय तक

5- पदमपुराण, 279/1-23

6- विष्णुपुराण चतुर्थांश, 14/44-53, 1/15

7- ब्रहमवैवर्तपुराण, 113/23-37

अपना काव्य आरम्भ करने के पूर्व माघ ने ऐसी विषयवस्तु का चुनाव किया जिसके आधार पर वह भारवि-काव्य का अनुकरण कर सके। माघ ने भी भारवि के समान अपने काव्य का कथानक महाभारत से लिया है, किन्तु काव्य रचना करने के पूर्व पूरा कथानक गढ़ लिया हो— ऐसा नहीं है। माघ शास्त्रज्ञाता पण्डित थे। अनेक ग्रन्थों तथा शास्त्रों में उनका समान आधिपत्य था। अपने काव्य के प्रणयन काल में जब जैसा अवसर आया उन्होंने उसके आधार पर परिवर्तन करके अपने कथानक को सुन्दर बनाया। माघ ने अनेक स्थलों पर मौलिक परिवर्तन भी किया है।

शिशुपालवध महाकाव्य की सर्गानुसार संक्षिप्त कथावस्तु[1.3]

प्रथम सर्ग -

समस्त लोकों के आधारभूत लक्ष्मीपति श्रीकृष्ण एक दिन अपने पिता वसुदेव के गृह में बैठे थे। उसी समय उन्होंने आकाश से नीचे की ओर फैलते हुए तेज को देखा। पहले तो उन्होंने उसे कोई तेज पुन्ज समझा किन्तु कुछ समीप आने पर हाथ पैर आदि कुछ धुंधली आकृति देखकर शरीर धारी है — ऐसा अनुमान लगाया किन्तु जैसे वह आकृति निकट आयी तो यह नारद जी हैं- ऐसा समझा। नारद जी गौरवर्ण के थे। कमल जैसी उनकी जटायें थीं। मेखला पहने हुए कृष्ण मृग चर्म को शरीर पर डाले हुए सुवर्ण सूत्र से बना हुआ यज्ञोपवीत धारण किये हुए एवं हाथ में स्फटिक की माला लिए हुए थे। ऐसे नारद जी द्वारिकापुरी में आये।

नारद के निकट आते ही श्रीकृष्ण भगवान् अपने ऊँचे आसन से वेगपूर्वक उठ खड़े हुए और श्रीकृष्ण ने पूजायोग्य देवर्षि नारद जी की अर्घ्यपाद्य आदि षोडशोपचारिक रीति से पूजा की । पूजा सामग्रियों से यथावत आतिथ्य किया और समुचित आसन पर उनको अपने सम्मुख बैठाया और उनकी प्रशंसा करते हुए आने का कारण जानना चाहा । तब नारद जी ने भगवान के दर्शन को ही प्रधान कारण बताया और इन्द्र-सन्देश रूप में शिशुपाल को मारने के लिए कहा। शिशुपाल ही पूर्वजन्म में हिरण्य कश्यप तथा रावण होकर देवपीड़न किया करता था जिसका वध नृसिंहावतार और दशरथ नन्दन राम के अवतार ने तब-तब किया था । वही रावण आज शिशुपाल के नाम से पृथ्वी पर दिखलायी पड़ रहा है । यह शिशुपाल बचपन में विष्णु की भाँति चार भुजाओं वाला तथा तीनों नेत्रों से शिव के स्वरूप वाला था। इन्द्र सन्देश को नारद जी से सुनकर श्रीकृष्ण जी ने शिशुपाल को मारने की स्वीकृति दे दी । इस काव्य में कृष्ण द्वारा रुक्मिणी-हरण प्रसंग को लेकर शिशुपाल और कृष्ण में वैर भी वर्णित है ।

द्वितीय सर्ग -

नारद जी के लौटने के बाद श्रीकृष्ण सोचने लगे कि मित्रकार्य सम्पादनार्थ युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ में सम्मिलित होना चाहिये । देवकार्य सम्पादनार्थ शिशुपाल के वध के लिए चेदि देश चाहिये । इस विषय पर मन्त्रणा करने के लिए चाचा उद्धव और अग्रज बलराम जी को साथ लेकर तात्कालिक निर्णय लेने के लिए

रत्न-जटित सभा में गये। वहाँ स्तम्भ आँगन छत रत्नजटित थे। उनमें तीनों का प्रतिबिम्ब चारों ओर दिखायी पड़ने से केवल उन तीन व्यक्तियों के वहाँ होने पर भी वह सभा भवन चारों ओर अनेक पुरुषों से भरा हुआ प्रतीत हो रहा था। वहाँ पर वे ऊँचे सिंहों से अधिष्ठित स्वर्ण आसनों पर बैठ गये।

तब श्रीकृष्ण जी ने कहा कि युधिष्ठिर अपने बन्धु बान्धवों के साथ यज्ञ तो कर सकता है किन्तु शिशुपाल जो सर्व साधारण को दुःखी कर रहा है यह कष्टप्रद है। अतः आप दोनों की सम्मति आवश्यक है। तब बलराम जी बोले- अपनी उन्नति और शत्रु का विनाश ये ही दो नीति की बातें हैं। सन्तोष विकास का बाधक है। मूल सम्पत्ति को ही सुस्थिर जानने वाले व्यक्ति को विधाता भी आगे नहीं बढ़ाता। स्वाभिमानी पुरुष शत्रुओं का समूल नाश किये बिना उन्नति नहीं प्राप्त करते। उपकारी शत्रु के साथ भी सन्धि कर लेना उचित है किन्तु अपकारी मित्र के साथ नहीं। अतः बलराम जी का कहना है कि शिशुपाल को मारना अधिक उचित है और उद्धव जी ने तर्क पूर्ण विविध युक्ति-युक्त वचनों से बलराम जी के वचन का खण्डन कर धर्मराज युधिष्ठिर के यहाँ यज्ञ में सम्मिलित होने के लिए कहा तथा अपने गुप्तचरों द्वारा शिशुपाल समर्थक राजाओं में फूट डालने की सलाह दी। जब युधिष्ठिर आदि राजा आप की पूजा करने लगेगें। तब शिशुपाल से सहन नहीं होगा और आपको अपशब्द कहेगा। इस प्रकार अपनी बुआ सात्वती के प्रति शिशुपाल के सौ अपराधों को सहन करने की पूर्व प्रतिज्ञा पूरी हो जायेगी और आप शिशुपाल का वध कर देगें तथा उसके

हस्तिनापुर पर आक्रमण के उद्देश्य पूर्ति में सहायक होंगे । इस प्रकार के उद्धव जी के वचन सुनकर कृष्ण जी ने सभा विसर्जन किया ।

तृतीय सर्ग -

उद्धव जी की सम्मति सुन लेने के बाद तुरन्त युद्ध का आग्रह समाप्त हो जाने से सौम्यमूर्ति वाले श्रीकृष्ण इन्द्रप्रस्थ की ओर इस भाँति चल पड़े, जैसे उष्ण किरणों वाला सूर्य उत्तर दिशा को त्यागकर दक्षिण दिशा के मार्ग को ग्रहण कर लेता है । अनेक बहुमूल्य श्वेत छत्र, चामर मणियों से जटित मुकुट वाले श्रीकृष्ण कानों में मरकत मणि से जड़े हुए स्वर्ण कुण्डल पहने हुए थे । वे लाल नख वाले थे । उनके नीले वर्ण वाले वक्षःस्थल पर मोतियों का हार था । कौस्तुभमणि धारण किये हुए थे तथा कटिसूत्र से पैर के आगे तक मोतियों की माला पड़ी थी । देह भाग पर पीताम्बर था हाथों में सुदर्शन चक्र कौमोद की गदा, नदक, खड्ग, शार्ङ्ग-धनुष और पान्चजन्य शंख आदि ग्रहण कर अत्यन्त तीव्र रथ पर सवार हुए जिस पर गरुड़ चिह्नांकित पताका फहरा रही थी, उनके पीछे बड़ी-बड़ी पताका फहराती चतुरङ्गिणी सेना थी । श्रीकृष्ण के चलते समय नगाड़ों की प्रतिध्वनि हो रही थी । यादव सेना श्रीकृष्ण के पीछे-पीछे चल रही थी । हाथियों का मदजल टपक-टपक कर धूल में मिलने से कीचड़ बना रहा था और रथों के पहिये उस कीचड़ में नेमि पर्यन्त धँसे जा रहे थे । भगवान् की राजधानी सुवर्णमयी द्वारिकापुरी समुद्र को मध्य में विदीर्ण कर ऊपर निकली हुयी बड़वानल की ज्वाला सी सुशोभित थी ।

उसकी अट्टालिकायें परकोटे बहुत ऊँचे और चिकने थे । उन पर बने चित्र सजीव प्रतीत हो रहे थे । वहाँ की सुन्दरियाँ सदा कामोत्कण्ठित रहती थीं । ऐसी स्वर्गमयी द्वारिकापुरी से बाहर निकलकर श्रीकृष्ण जी ने समुद्र को देखा । उसमें बहुत सी नदियाँ आकर मिल रही थीं । उस पर श्यामल बनाली सुहावनी लगती थी । शीतल मन्द सुगन्ध से सैनिकों का श्रम दूर हो रहा था । ऐसे समुद्र तट पर पड़ाव डालकर सैनिकों ने लवङ्ग के फूल का कर्णभूषण पहना और नारियल-पानी पिया ।

चतुर्थ सर्ग -

श्री-कृष्ण भगवान् ने मार्ग में चलते हुए इन्द्रनील मणि के साथ विविध प्रकार की धातुओं से युक्त विन्ध्याचल पर्वत की भाँति रैवतक पर्वत को देखा । कहीं-कहीं इस पर्वत पर बड़ी चट्टानें हैं तो कहीं लतायें फैली हुयी हैं जिन पर भँवरे मँडरा रहे हैं । अनेक शिखरों से यह एक ओर आकाश को घेरे हुए है तो दूसरी ओर यह समीपवर्तियों को तथा छोटे-छोटे पर्वतों की श्रेणियों से पृथ्वी मंडल को घेरे हुए है । इसके शिखर इतने ऊँचे हैं कि वे सूर्य के समीप से जान पड़ते हैं । उन शिखरों में बहुमूल्य रत्न भरे हुए हैं । झरनों का प्रवाह भी नीचे शिलाओं पर गिरकर अपूर्व छटा को प्रदर्शित करता है । यहाँ पर स्फटिक के तट की किरणों से श्वेत जलवाली तथा दूसरी ओर इन्द्रनीलमणि की कान्ति से नीले जलवाली नदियाँ यमुना के नीले जल से सुशोभित गंगा की शोभा को धारण करती हैं । भाँति-भाँति

के पुष्पों पर भ्रमर मंडराते रहते हैं। चितकबरे बालों वाले हिरण यहाँ भ्रमण करते हैं। कमलों से भरे जलाशय यहाँ हैं। कहीं-कहीं पर सघन बाँसों के वृक्षों में चमरी गायें फिरती हैं।

सारथी दारूक ने कहा- सूर्य के उदय तथा चन्द्रमा के अस्त होते रहने पर दोनों पाश्वों में लटकते हुए दो घण्टाओं वाले हाथी के समान यह पर्वत शोभित है, स्वर्णमयी भूमिवाला यह रैवतक पर्वत ऊँचे शिखरों से गिरते हुए झरनों के जल-बिन्दुओं से देवाड्•गनाओं का शरीर शीतल करता है। एक ओर सुवर्णमयी दूसरी ओर रजतमयी दीवाल से यह पर्वत भस्मोदधूलित करते हुये एवं नेत्र से अग्नि कण निकालते हुए शिव जी के समान प्रतीत होता है। विकसित चम्पक से पिड्•गलवर्ण कनकमयी दीवालों से सुमेरूतुल्य इस पर्वत के द्वारा भारत वर्ष इलावृत्त के समान शोभित है। रात्रि में औषधियां चमकती हैं। सुखकर वायु बहती है। यहाँ रत्नों की खाने हैं। यहाँ किन्नर विहार करते हैं। यह भोग-भूमि होकर भी सिद्ध भूमि है, मैत्री आदि चारों वृत्तियों के ज्ञाता अविद्या आदि पांचों क्लेशों को त्यागकर सबीज योग को प्राप्त किये हुए प्रकृति पुरूष का ज्ञान प्राप्त कर सिद्ध पुरूष निवास करते हैं। परम श्रेष्ठ यह रैवतक पर्वत ऊपर उठते हुए श्यामल मेघों से मानों श्रीकृष्ण का अभ्युत्थान कर रहा हो।

पंचम सर्ग -

रैवतक पर्वत पर विहार करने के लिए श्रीकृष्ण भगवान ने सेनासहित प्रस्थान किया। कहीं गजराजों के झुण्ड, कहीं घोडों के एक ओर रथ-श्रेणि भूमि की

धूलि को महीन करती हुई चल रही थी तो दूसरी ओर भारवाही ऊँट चल रहे थे। उस सेना निवेश में एक ओर पर्वताकार विशालकाय हाथियों के झुण्ड मद चुआ रहे थे। दूसरी ओर भागते हुए घोड़े सैनिकों को व्याकुल कर रहे थे। एक ओर बैल जुगाली कर रहा था। कहीं नीम के कड़वे पत्तों को खाते समय मधुर एवं कोमल आम्रपल्लव को कोई ऊँट इस प्रकार उगल रहा था जिस प्रकार निषाद भ्रम से मुख में पड़े हुए ब्राह्मण को गरुड़ ने उगल दिया था। इस प्रकार वहाँ सान्ध्य मेघ के समान अरुण वर्ण के पट मण्डप सुशोभित हो रहे थे।

श्री कृष्ण के अनुचर राजाओं ने वहाँ पर पहुँचकर गुफाओं के घरों को अपना आवास बना लिया तथा अन्य नृपतिगण ने भी श्री कृष्ण के गरुण ध्वजा वाले शिविर के समीप ही अपने अपने शिविरों को लगाया। यह समय ग्रीष्म ऋतु का था जो स्त्रियाँ वाहनों पर थीं उनको कंचुकी नीचे उतारने में व्यस्त थे। नीचे उतरते समय उन रानियों के घूँघट का वस्त्र थोड़ा सा खिसक गया तो लोग कुतूहल से उनके मुख श्री को देखने लगे। स्त्रियाँ अपनी केशराशि पर रंगबिरंगी पुष्पों को गूँथे हुए थीं। शरीर पर चोली सुशोभित हो रही थीं सेना अब पर्वत पर शिविर तान कर मनोविनोद करने में व्यस्त थीं।

छठाँ सर्ग -

छ: ऋतुओं का वर्णन- जब श्रीकृष्ण ने रैवतक पर्वत पर विहार करने की इच्छा की तो सब ही ऋतुएं अपनी-अपनी समृद्धि लेकर वहाँ पर एक साथ ही आ पहुँची। "बसन्त ऋतु" आने पर वृक्षों ने नवपल्लवों को तथा लताओं ने सुरभित

पुष्पों को उत्पन्न किया । मन्द शीतल हवा बहने लगी । आम में मंजरी लग गयी । कोयल कुहुकने लगी । भौंरे गुंजार करने लगे । कामपीड़ित रमणियों की दूतियां उनके पति के पास जाकर रमणियों के पास जाने के लिए कहने लगी । पराग से परिपूर्ण एक ओर कमल खिल रहे थे । धूप की गर्मी के कारण लताओं के कोमल पत्ते कुछ मुरझा गये थे । भांति-भांति के पुष्पों से सुन्दर सुगन्ध निकल रही थी । मलयानिल प्रवाहित हो रहा था । कुरुबक पुष्पों की कान्ति भ्रमरों के कारण कमनीय थीं । चम्पा पुष्पों के मध्य विकसित अशोक पुष्प सुशोभित था । आम्रों से रजःकण गिर रहे थे । बकुल पुष्पों पर रसरूपी आसव के पान से अधिक मधुर स्वर वाली भ्रमरावलियां इतस्ततः गुन्जार कर रहीं थीं । पलाश पुष्प राशि दावाग्नि सी प्रतीत हो रही थी ।

<u>ग्रीष्म ऋतु</u>- ग्रीष्म ऋतु के आने पर शिरीष तथा नवमल्लिका के फूल विकसित हो गये। शिरीष पुष्प के पराग की कान्ति हरित तथा पीत रूप धारण कर रही थी । इसमें चमेली की सुगन्धि से वायु सुगन्धित थी । रमणियां आर्द्र चन्दन लगाये हुए स्तनों को प्रियतमों के वक्षस्थल पर रखकर आलिङ्गन करने लगी ।

<u>वर्षा ऋतु</u> - बार बार बिजली रूपी आँखों को चमकाती हुई, विशाल ऊँचे उठे हुए पयोधर मेघों की पंक्तियां समय की बिना प्रतीक्षा किए ही इस पर्वत पर आ गई । रमणियां प्रियतम के पास जाने लगीं । गगन मण्डल गजाकार कृष्णकाय मेघों से आच्छन्न हैं तो मण्डलाकार इन्द्रधनुष दूसरी ओर । पवन कन्दली के पुष्पों को कंपाता हुआ वन के वृक्षों को झकोर रहा है । मेघों के गर्जन से मयूर नृत्य कर

रहे हैं । नवीन कदम्ब के मकरन्द से यह वायु गगन को लाल रंग का बना रही है । मेघों ने जल वृष्टि कर प्रथम जल बूंदों से गर्मी को दूर कर दिया, और पृथ्वी की धूलि साफ हो गयी ।

शरद ऋतु- के आरम्भ में चन्द्रकिरणें निर्मल हो गयी मयूर और हंस की ध्वनि क्रमशः कर्णकटु तथा कर्ण मधुर हो गयी । मृग समूह धान खाना भूल गये झुण्ड-झुण्ड तोते उड़ते हुए हरे-हरे पत्तों से ऋतु माला की भांति है । बंधूक के पीले-पीले पत्तों में पराग से युक्त लाल रंग की केशर भी कितनी सुन्दर है । सरोवरों में लाल कमल हैं । सप्त वर्ण के पुष्पों के गुच्छों से सुगन्धित यह वायु कितनी कामोत्तेजक है । सरोवरों में निर्मल जल है । जिसमें कमल खिल रहे हैं और श्वेत हंस विचरण कर रहे हैं ।

हेमन्त ऋतु- अब हेमन्त ऋतु की वायु प्रवाहित हो रही हैं । जो कितनी ठंडी है प्रियंगु लताओं के पुष्प इस ऋतु में विकसित हो रहे हैं । इस ऋतु में हाथी डूब जाने योग्य अगाध पानी वाले जलाशयों का पानी जमकर कम हो गया है ।

शिशिर ऋतु - के आने पर भ्रमर गुन्जार करने लगे।सूर्य किरणों का तेज मन्द पड़ने लगा ।

सप्तम सर्ग - वन विहार-वर्णन -

छहों ऋतुओं के आने पर श्रीकृष्ण भगवान् और यादव लोग अपनी रमणियों के साथ वन-विहार करने निकले । रमणियां और यादवगण भी विविध प्रकार से काम कला का प्रदर्शन कर रहीं थी । सारस पक्षियों की आवाज कामी-जनों को कामधनुष टंकार के समान लग रही थी । अर्द्ध विकसित कलियां वायु के स्पर्श एवं भ्रमरों के बैठने से पूर्ण विकसित होकर रमणियों का कामवर्धन कर रही थी । किसी रमणी के नेत्र में पड़ा पुष्प रज मुँख से फूंककर दूर करते हुए नायक को देखकर उसकी सपत्नी की आँख क्रोध से लाल हो रही है । इस प्रकार चिरकाल तक वन में थकने के कारण रमणियों के केश बिखर गये । आँखे अलसाने लगीं । कपोल मण्डल लाल हो गये । स्तन खिन्न हो गये । पैर लाल लाल हो गये । उनमें से निरन्तर पुष्प तोड़ने से थकी हुई कोई रमणी पति के गले में बाहें डालकर प्रियतम के वक्ष: स्थल पर अलसा रही थी । नवोढ़ा के पसीने को पोछने के बहाने नायक उसका आलिङ्गन कर रहा है ।

अष्टम सर्ग-

जल विहार-वर्णन वन विहार से थकी हुई विशाल स्तनों वाली उन यादव स्त्रियों के नेत्र कमल बन्द होने लगे और किसी भाँति पृथ्वी पर अपने चरणों को रखतीं हुयी जलाशय की ओर चलने लगीं । वे पंक्तिबद्ध जा रही थीं । स्त्रियों के जाते समय धूप से बचाव के लिए प्रियतमों ने अपनी चादर तान दी। तो कुछ स्त्रियों ने छातों को तानकर धूपका बचाव किया । जलाशय के मार्ग में

कहीं हंसिनी बैठी थी कहीं नदियां द्रुत वेग से बह रही थी । कहीं मोती बिखरे थे । भ्रमर समूह रमणियों के मुखपर बैठ रहे थे । मोर मोरनी पर पंख से छाया कर रहा था । हंस समूह कमल में छुपकर दिन व्यतीत कर रहे हैं । चकवा चकई का मुख चुम्बन कर रहा था । ऐसे मार्गों से यादवाङ्गनायें जलाशय में पहुँची । उस समय भगवान् के पटरानियों के पाणिकमल से जलाशय के कमलों की शोभा तुच्छ हो रही थी । विजयसार पुष्प के समान गौरवर्ण रमणियों का शरीर पानी में डूबने पर भी झलक रहा था । पति के द्वारा सपत्नी को सींचे जाने पर रोती हुई रमणी के दुःख से जलाशय का जल श्यामल हो जाता था । पानी में गिरे हुए रमणियों के सुवर्ण भूषण बड़वाग्नि की ज्वाला सी सुशोभित हो रही थी । देवों को आश्चर्य चकित करने वाली किसी सुन्दरी को देखकर श्रीकृष्ण भगवान् को समुद्र से निकली लक्ष्मी का स्मरण हो रहा था । रमणियों के इस प्रकार जल क्रीड़ा कर निकलने पर सूर्य अस्तोन्मुख हो गये ।

नवम सर्ग -

सूर्यास्त वर्णन - दिन का अन्तिम समय सूर्यास्त मन्ददृष्टि वृद्ध पुरुष के जैसा क्षीण कान्ति प्रतीत हो रहा था । पक्षी समूह अपने निवास को जा रहे हैं अरुण वर्ण वाला आधा अस्त हुआ सूर्यबिम्ब सृष्टि के आदि में ब्रह्मा के द्वारा नख से विदीर्ण किये गये सुवर्ण मय अण्डा के समान सुशोभित था । संध्या के प्रादुर्भूत होने पर मदोन्मत्त कामिनियां नेत्रों में सुरमा लगा रही थी । कुसुम्भ

पुष्पों के तुल्य लाल रंग से युक्त सन्ध्या के आगमन पर सबने उसे प्रणाम किया । चक्रवाक अब पृथक हो गये । अन्धकार से समस्त संसार व्याप्त हो गया । संध्या बीत गई । दिन में शिथिल पड़ी हुयी रमणियों की कामवासना जागृत हो उठी थी । नक्षत्र चमकने लगे । चन्द्रमा भी आकाश में उदय हुआ । शेषनाग की मणियों की किरणों के समान पूर्व दिशा में चन्द्रिका छिटकने लगी । सम्पूर्ण चन्द्रमण्डल के निकलने पर अन्धकार नष्ट हो गया । समुद्र बढ़ने लगा । कुमुदिनी विकसित होने लगी । खिड़कियों से चन्द्रकिरणें महलों में प्रवेश करने लगीं । रमणियां शृंगार करने लगीं । किसी ने मोती का हार किसी ने करधनी पहनी । किसी ने नेत्रों का काजल लगाया । पति के आगमन के लिए उत्कण्ठित हो रही थी । कोई प्रियतमा का गाढ़ आलिङ्गन कर रहा था किन्तु मद्यपान छोड़ सभी युवतियाँ सुरत में अग्रसर हो गयीं ।

दशम सर्ग - मद्यपान वर्णन -

कामी-लोग रमणियों का अधर-पान कर रहे थे । भ्रमर समूह मद्य के सौरभ से आकृष्ट हो गूँज रहे थे । कोई नायक प्रियतमा के द्वारा दिये गये मद्य को पी रहा है । कोई नवोढा रमणी मद्य के नशे में लज्जारहित हो अर्धोन्मिलित नेत्र से पति को देख रही थी । मद्यपान से धुले हुए लाक्षा रस वाले अपने अधर को प्रियतम के अधर का स्पर्श कर लाक्षारस के रंग रही थी-ऐसा भाव सखि के सामने प्रकट करती हैं । पति के गाढ़ आलिङ्गन करने पर स्वेद से रमणी का वस्त्र गीला, शरीर पुलकित और नीवी नीचे की ओर खिसक रही थी ।

मद विकार के प्रकट होते ही वे स्त्रियाँ अधूरे वाक्य बोल रही थीं। गिरते हुए वस्त्र व आभूषणों की उपेक्षा कर रही थीं। तथा बिना किसी कारण उठकर चले आने का प्रयास करने लगी। मदिरा में मस्त वे अपने सहज स्वभाव को भी करने लगा। मद्यपान से मतवाली सुरत संभोग के लिए लालायित रमणियों के नेत्र विलास की कल्पना में कानों तक फैले हुए थे। कोई तो इतनी मुग्ध थीं कि पति से सम्भाषण करने की इच्छा रखकर भी बोलने में असमर्थ रही। स्नेह रस से पूर्व रमणियों का देह अब भीतर से आर्द्र हो गया था। इस प्रकार पतियों की रुचि के समान सुरत करती. कराती सभी रमणियाँ थक गयीं।

एकादश सर्ग -प्रभात वर्णन -

प्रातःकाल स्तुति पाठ करने वाले बन्दीजनों ने विकार रहित मधुर ध्वनि में जो दूँर-दूर तक जा रही थी। अधिक श्रुतियों से युक्त षड्ज स्वर को बिना छिपाये हुए पंचम स्वर को छोड़कर तथा वीणा वादन के साथ ऋषभ स्वर से रहित आलाप में रात्रि के बीतने तथा प्रभात के आगमन का वर्णन सुनकर लोगों को जगानें की चेष्टा करने लगे। चन्द्रमा के अस्तप्राय होने पर पूर्वीदिशा स्वच्छ हो रही थीं। चन्द्र की शुभ्र किरणों से पश्चिम दिशा अरुण वर्ण हो रही थी। मालती पुष्प की सुगन्ध से युक्त वायु के बहने से रात्रि के अवतरित सुरत से श्रान्त रमणियों की कामाग्नि पुनः उददीप्त हो रही थी। प्रभात की शीतल वायु बहने लगी। पाण्डुवर्ण चन्द्रमा की कान्ति रमणियों की मुख कान्ति से हीन हो रही थी। द्विज लोग प्रातः कार्य प्रारम्भ कर रहे थे। निकलता सूर्य बड़वानल की ज्वाला से

सन्तप्त अङ्गार जैसा लाल हो रहा था । नदियों की धारा लाल हो रही थी । चन्द्रकिरणों से स्फटिक मणि निर्मित सा प्रतीत होता हुआ । रात्रि का वह सुधा धवल प्रासाद इस समय सूर्य किरणों के सम्पर्क से कुमकुम जल से स्नान सा प्रतीत हो रहा था । पूर्व दिशा में सुवर्ण के तुल्य पीले वर्ण की सूर्य किरणें शोभित हो रहीं थीं।अब सूर्य धीरे-धीरे आकाश में चढ़ रहा था । सूर्य के उदय होते ही प्रणत व्यक्तियों ने उसको प्रणाम किया । किरणें अब नदी तटों पर सुशोभित हुई । झरोखों की जालियों से होकर सदन कक्ष के भीतर प्रवेश करने वाली बालसूर्य की किरणें सोते हुए प्रियतमों पर बाण की भाँति पड़ रही थी ।

द्वादश सर्ग -

प्रातःकाल होने पर जब सूर्य उदय हो गया तब रथों,घोड़ों तथा हाथियों पर आरूढ़ होकर राजागण शिविर के प्रवेश द्वार के बाहर प्रसाधन के योग्य वेश धारण किये हुए श्रीकृष्ण की प्रतीक्षा करने लगे । भगवान् श्रीकृष्ण तीव्र-गामी घोड़ों के रथ पर आरूढ़ होकर आये । उनके पीछे तम्बू कनात समेटकर गाड़ी ऊँट आदि पर लादकर पैदल सेना चलने लगी । रथों के पहियों से विदीर्ण भूमि हाथियों के पैरों से समतल हो रही थी । बहुत से छत्रधारी राजाओं के होने से सर्वत्र छत्र ही छत्र दिखायी पड़ रहे थे । इतनी विशाल होने पर भी सेना मर्यादा बद्ध थी । प्रस्थान करने पर श्रीकृष्ण का पाँचजन्य शंख सुनायी पड़ा तो उधर नगाड़ों की ध्वनि सुनाई दी । सुवर्ण मयी धूल रेवतक पर्वत के नीचे भागों पर छा गई।

सीधी गर्दन को आगे की ओर फैलाये हुए एवं गले की घंटियों को बजाते हुए ऊँटों ने लम्बे-लम्बे डगों से चरणों को भूमि पर रखते हुए लम्बे-लम्बे मार्ग को क्षण भर में ही तय कर लिया। विशालकाय ऊँचे पर्वतों व नदियों को लाँघती हुई वह यादव सेना चली जा रही थी। मार्ग में उन्हें कृष्णसार मृग भी दिखायी पड़े। सेना जब ग्रामों में से होकर जा रही थी तो ग्राम वधुएं श्रीकृष्ण की ओट में होकर छिप-छिप कर देखने लगी। कहीं-कहीं धान के खेतों की रखवाली करने वाली स्त्रियां तोतो को उड़ा रही थी तो दूसरी ओर मृगों के समूह आकर चरने लगे। व्याकुल स्त्रियों को मन्द मन्द मुस्कराते हुए श्रीकृष्ण ने देखा। जलप्राय देशों में कहीं पर हंसों का शब्द सुनायी दिया। सेना पर्वतों को भी पार करते हुए बढ़ती गयी। हाथी बादलों को चीरते हुए बढ़ रहे थे। वे मार्ग के वृक्षों को उखाड़ते जाते थे। पर्वतों पर नित्य चढ़ने के अभ्यास उन्नत स्तनों वाली आँवला के वन में बैठी हुई पहाड़ी स्त्रियों ने श्रीकृष्ण को देखा। वहीं पर सिंह सोये हुए थे। हाथियों के द्वारा हिलाये गये पेड़ को डालियों में लगे छत्तों से मधुमक्खियों के कारण लोग इधर उधर भाग रहे थे। हाथियों के प्रवेश के पहले घोड़ों की टापों से नदी पंकिल हो जाती थी। इस प्रकार विशाल सेना यमुना नदी के तट पर आकर रुक गयी। उस यमुना नदी को कुछ लोगों ने नावों से कुछ ने तैरकर और हाथी घोड़े बैल आदि ने उसमें घुसकर पार किया। यमुना को पार कर श्रीकृष्ण की सेना हस्तिनापुर पहुँची।

त्रयोदश सर्ग -

श्रीकृष्ण भगवान् ने यमुना पार करके पहुँचने पर युधिष्ठिर उनकी अगवानी के लिए चारों अनुजों के साथ पहुँचे । कुरुवंशियों की सेना में हर्ष से नगाड़ों की गम्भीर ध्वनि होने लगी । युधिष्ठिर दूर से ही श्रीकृष्ण को देखकर अपने रथ से नीचे उतरना चाहते ही थे कि श्रीकृष्ण ने उनसे पूर्वही शीघ्रता के साथ अपने रथ से उतरकर विशेष विनयशीलता दिखायी और त्रिलोकवन्दित फूआ के पुत्र युधिष्ठिर को नम्र होकर प्रणाम किया । युधिष्ठिर ने छाती से लगाकर आलिङ्गन किया । इसके अनन्तर भगवान् भीमादि का यादवों ने पाण्डवों का आलिङ्गन किया ।

भगवान् श्रीकृष्ण अर्जुन के हाथ का सहारा लेकर युधिष्ठिर के रथ पर चढ़ गये । युधिष्ठिर भगवान् के सारथि बने । भीम चामर चलाने लगे अर्जुन ने छत्र थामा, नकुल सहदेव अनुचर बनकर पार्श्व में खड़े हो गये । इस प्रकार आगे बढ़ती सेना की दुन्दुभि आकाश तक पहुँच गयी । इसके पश्चात् भगवान् हस्तिनापुर में प्रविष्ट हुए । उन्हें देखने के लिए रमणियाँ अपना काम अधूरा छोड़कर महल पर पहले से खड़ी थी । कोई रमणी अनिमेष दृष्टि से भगवान् को देख रही थी । कोई अंगुली के इशारे से बुला रही थी । जिस समय कृष्ण भगवान् सभास्थल में पहुँचे उस समय वहाँ की शोभा अमरावती की शोभा को तिरस्कृत कर रही थी । उसके महल पद्मराग-मणि से बने थे । उसके महल पद्मराग मणि से बने थे । उसके बीच इन्द्रनील मणि लगे थे । नागमणियों से बने उस सभास्थल का प्रांगण मेघ के गरजने से

वैदूर्यमणियों के अंकुरों से युक्त हो जाता था । भवन के समीप ही वृक्ष लगे हुए थे जिनके आलवालों में जलभरा हुआ था । उस सभा-भवन में कमलिनी के नीचे जल ऐसा छिपा हुआ था कि उस पर स्थल की भ्रान्ति हो जाती थी । उस स्थान को सूखा समझकर चलते हुए दुर्योधन को देखकर भीमसेन के अट्टहास करने पर सब राजा क्षुब्धा हो गये । इस अद्‌भुत सभा-स्थल में पहुँचकर भगवान् तथा युधिष्ठिर रथ से उतरकर रत्नजटित स्वर्ण सिंहासन पर दोनों एक साथ बैठे ।

चतुर्दश सर्ग -

सिंहासनारूढ़ भगवान् श्रीकृष्ण से युधिष्ठिर नेकहा मुझे आपके द्वारा धर्मराज कहलाने का सौभाग्य मिला है । आपके कारण ही यह भारतवर्ष चिरकाल तक मेरे अधीन हो गया । अतः दोषहीन यज्ञ करने का इच्छुक मैं सम्पूर्ण यज्ञ साम-ग्रियों को एकत्र कर आपकी आज्ञा की प्रतीक्षा कर रहा हूँ । आपको सान्निध्य से मेरा यज्ञ निर्विघ्न पूर्ण हो जायेगा । कृष्ण ने कहा राजन् आप मुझे अर्जुन से भिन्न मत समझिये । वैदिक लोग सामवेदादि पढ़ने लगे । द्रौपदी के हविष्यादि यज्ञ सामग्री के निरीक्षण करने से संस्कार प्राप्त हविष्य को ऋत्विक् लोग अग्नि में छोड़े गये हविष्य का भोग करने के लिए उतावले हो गये । युधिष्ठिर ने कहा मैं हवन करके क्षात्रधर्म पूर्वक बढ़ाये हुए धन को ब्राह्मणों को देना चाहता हूँ । तब कृष्ण ने कहा राजसूय यज्ञ आपके अतिरिक्त और कौन कर सकता है । आप मुझको अपने करणीय कार्यों में अपनी इच्छा के अनुसार जहाँ चाहें वहाँ नियुक्त करें ।

मेरा सुदर्शन चक्र उस राजा के शिर को देह से पृथक कर देगा जो आप के इस राजसूय यज्ञ में सेवक की भाँति कार्य न करेगा ।

पुरोहितों द्वारा सब अनुष्ठानों के कर्ता राजा-युधिष्ठिर ही थे । यज्ञ कर्ता पुरोहित भी शुद्ध उच्चारण कर आहूत देवताओं को लक्ष्य करके अग्नि में आहुतियाँ छोड़ने लगे । उदगाता लोग कर-विन्यास द्वारा अस्खलित स्वर से सामवेद का गान करने लगे । होता तथा अध्वर्यु ऋग्वेद और यजुर्वेद का पाठ करने लगे । व्याकरण शास्त्र के विद्वान् पुरोहित उदात्तादि स्वर बदलकर अपने यजमान के प्रकृत कर्म के अनुकूल अर्थ का निश्चय कर रहे थे । यज्ञाग्नि भी पड़े हुए घृत का आस्वादन कर रही थी । हवन का धुआँ ऊपर जा रहा था। राजसूय यज्ञ में जितनी क्रियायें हुयीं किसी में कोई त्रुटि नहीं थी । यज्ञ समाप्त होने पर युधिष्ठिर यथेष्ट दक्षिणा ब्राह्मणों को देकर संतुष्ट कर रहे थे । उन्होंने अंजलि में संकल्प का जल देने के साथ ही स्वर्ण की कामना से विपुल धनराशि की प्रचुर दक्षिणा उन ब्राह्मणों को दी । ये ब्राह्मण भी शुद्ध आचरण वाले वेद सम्मत शास्त्रों को धारण करने वाले वर्ण संकरता से रहित कुलीनगुणी थे । अतिथि सत्कार में उन्होंने थोड़ी सी भी थकावट नहीं अनुभव किया । याचकों को भी उन्होंने सन्तुष्ट किया ।

इस प्रकार यज्ञ के अन्त में भीष्म ने अर्घ्यदान के सम्बन्ध में कहा कि-स्नातक, गुरु, बन्धु, पुरोहित, जामाता तथा राजा- ये 6 अर्घ्यपात्र कहे गये हैं । ये सभी तुम्हारी सभा में आये हैं किन्तु इनमें से एक ही अत्यन्त गुण युक्त व्यक्ति

की पूजा करनी चाहिये । इस समय ब्राह्मणों तथा राजाओं के समुदाय में सर्वगुण सम्पन्न ब्रह्म के अंश योगियों के ध्येय, एवं सृष्टि पालन, संहार करने वाले सर्वज्ञ भूभारहर्ता, पन्चमहाक्लेशों से रहित, कर्मफल से असम्पृक्त पुराण पुरुष भगवान् श्रीकृष्ण को प्रथमार्ध्य देकर महाराज युधिष्ठिर ने यज्ञ सम्पन्न किया ।

पन्चदश सर्ग -

श्रीकृष्ण भगवान् की अग्रपूजा को देखकर उस अग्रपूजा से चेदि नरेश शिशुपाल द्वेष करने लगा । वह पहले से ही भगवान् से क्रुद्ध था । उसने सभा में बैठे-बैठे अपने सिर को ऐसे हिलाया कि मुकुट की मणियों चारों ओर चमकने लगीं। उसकी भृकुटि तन गयी । आँखे लाल हो गयी । उसने क्रुद्ध होकर कहा कुन्ती पुत्र युधिष्ठिर अपने प्रियजनों को सभी गुणवान मानते हैं किन्तु तुमने साधुजनों से अपूजित कृष्ण की पूजा की है जो राजा भी नही है, तुम्हारा धर्मराज नाम लोग झूठे ही कहते हैं । यदि कुन्ती पुत्रों तुम्हारे लिए कृष्ण इतना पूजनीय था तो अन्य राजाओं को सभा में बुलाकर क्यों अपमानित किया । हो सकता है आप सभी मूर्ख हो किन्तु पके हुए बालों वाला नष्ट बुद्धि यह भीष्म भी असावधान है । हे शान्तनु पुत्र तुमने 6 व्यक्तियों को अर्ध्यपात्र बताया। उनमें से यह कौन सा स्नातक है जिसकी तुमने अग्रपूजा करवायी है । आखिर तुम नीचगामिनी गंगा के ही पुत्र ठहरे ।

इसके बाद शिशुपाल श्रीकृष्ण को कहने लगा कि तुम्हें राजोचित पूजा नहीं स्वीकार करनी चाहिये थी । तुमने डंडे से मधुमक्खियों को मारकर अपना नाम "मधुसूदन" रखा । क्या तुम्हें याद नहीं राजा मुचुकुन्द की शैय्या तुम्हारे लिए शरणदायिनी बनी । तुम मगधपति जरासन्ध से अठारह बार पराजित हुए । जो तुम सबल कहलाते हो वह बलराम की संगत में रहने से । "सत्यप्रिय" नाम तो "सत्यभामा" के साथ प्रेम रखने के कारण हुआ । अपनी सेना की रक्षा करने में असमर्थ किन्तु रथ के चक्के (सुदर्शन चक्र) को सदैव धारण करने से तुम "चक्रधर" कहलाये । श्रीपति इसलिये कहलाये कि समुद्र की कन्या श्री नाम्नी के साथ विवाह हुआ था । अन्यथा ययाति के शाप से तो यदुवंशियों की राजलक्ष्मी तो कब की चली गयी । गुणहीन तुम्हारी यह पूजा केशहीन सिर में कंघी फेरने के समान हास्यास्पद है । शिशुपाल अन्य राजाओं से कहने लगा । सिंह के समान आप लोगों के रहते हुए कुन्ती पुत्रों ने गीदड़ तुल्य कृष्ण की पूजा की है । यह आप लोगों का अपमान है । जिस कृष्ण ने वृषभ रूपधारी अरिष्टासुर का संहार किया वह अपवित्र आत्मा क्या पूजा की पात्रता प्राप्त कर सकता है ? पूतना का इसने वध किया । शकटासुर का वध किया । यमलार्जुन को उखाड़ दिया । गोवर्धन पर्वत को ऊपर उठा लेना आश्चर्य की बात नहीं है। कंस की गायों को चराने वाले इसने कंस का वध किया । यह आश्चर्य की बात जरूर है ।

हे युधिष्ठिर! गुणों द्वारा ही मनुष्य पूजनीय होता है किन्तु कृष्ण में पूजा के योग्य कोई गुण नहीं है । यह तो अकृतज्ञ है यह सुख से विहीन है । दूसरे महान लोगों के गुण भी इसके समीप आकर विलीन हो जाते हैं । भगवान्

श्रीकृष्ण शिशुपाल के अपराधों को मन ही मन गिन रहे थे । इसके बाद भीष्म ने कहा जिस किसी राजा को भगवान् श्रीकृष्ण की पूजा स्वीकार नहीं वह अपना धनुष चढ़ा ले। यह मेरा बाँया पैर उन सभी राजाओं के सिर पर है । इससे शिशुपालपक्षीय राजा लोग बड़े क्षुब्ध हुए । बाणासुर का मुख क्रोध से भर गया । द्रुम राजा लाल हो गया । नरकासुर का पुत्र वेणुदारी भी क्रुद्ध हुआ । उत्तमौजा आहुकि, दंतवक्त्र, कालयवन, सुबल आदि राजाओं ने भी क्रोध किया । शिशुपाल अपशब्द कहता हुआ सभा-भवन से बाहर आ गया । पाण्डुपुत्रों ने शिशुपाल को रोका किन्तु वह तीव्रगामी घोड़े पर सवार होकर इन्द्रप्रस्थ पहुँचा और सेना की तैयारी की । राजाओं को कृष्ण और भीष्म को मारने के लिए ललकारने लगा । युद्ध के लिए प्रस्थान के समय रमणियाँ पति का फिर दर्शन न पाने की आशंका से काँपने लगी ।

षोडश सर्ग -

इस सर्ग में श्लेष अलंकारों का प्रयोग किया गया है । रणयात्रा की तैयारी के अनन्तर शिशुपाल द्वारा भेजे गये एक दूत ने सभा में भगवान् श्रीकृष्ण के समीप पहुँचकर स्पष्ट रूप में प्रिय अप्रिय बातें कहना प्रारम्भ किया । उसने कहा कि-युधिष्ठिर की सभा में आप को अपशब्द कहकर शिशुपाल लज्जित है । अत: आपका सत्कार करना चाहता है । अर्थात् वध करना चाहता है । सूर्यवत् तेजस्वी वशीकृत चित्तवाले,कर्म समर्थ आप को कौन राजा प्रणाम नहीं करता ।

अथवा अग्नि में फतिंगे के समान अत्यल्प सामर्थ्य वाले स्वकार्य विनाशक एवं सबके अपकर्ता आप को किस गुण से लोग प्रणाम करते हैं ।

इस प्रकार दूत के कहने पर श्रीकृष्ण के संकेत से सात्यकि ने उत्तर दिया । हे दूत तुम्हारा एक ही वाक्य बाहर से अत्यन्त कोमल तो भीतर से वही वाक्य बहुत कठोर है । यह वाणी विष मिले अन्न के समान अनर्थकारिणी है । छोटे मनुष्यों का हृदय भी तुच्छ होता है । ये आकाश बेलि के समान होते हैं । शिशुपाल की गालियाँ सुनकर भी कृष्ण ने कुछ नहीं कहा । सिंह तो बादलों का गर्जन सुनकर ही दहाड़ता है । श्रृगालों की आवाज से नहीं । शिशुपाल के व्यर्थ प्रलाप से श्रीकृष्ण की प्रतिष्ठा में क्या कोई कमी आयी । नीच पुरुष वास्तव में दूसरों के अवगुण की कथाओं से ही अपने लोगों को संतुष्ट करता है।अपने गुणों का बखान वे उच्चस्वर से करते हैं । महान पुरुष कायर की भाँति प्रलाप नहीं करते बल्कि अवसर आने पर पराक्रम दिखाते हैं ।

सात्यकि ने कहा शिशुपाल जिस भावना से आयेगा । उसके अनुसार उसके साथ व्यवहार किया जायेगा । फिर दूत ने कहा बुद्धिहीन व्यक्ति अपनी भलाई दूसरों के समझाने पर भी नही समझता । यही आश्चर्य है । मांसप्रिय सिंह के द्वारा छोड़ी गयी गजमुक्ता के समान युधिष्ठिर से अपूजित भी शिशुपाल का महत्त्व कम नहीं हुआ है । सैकड़ो अपराधों को सहन करने वाले आप का रुक्मिणी हरण रूप एक ही अपराध क्षमाकर शिशुपाल आपसे आगे हैं । वे यादवों से युद्ध करना चाहते हैं । वे मित्रों के लिए चन्द्रतुल्य आह्लादक शत्रुओं के लिए

सूर्य तुल्य सन्तापदायक है । वे चतुरङ्गिणी सेना से लड़ सकते हैं । आप उपेन्द्र हैं तो वे इन्द्र को जीतने वाले हैं । शिशुपाल की तेजस्विता में सूर्य भी उनकी समानता नहीं कर सकता । अपितु शिशुपाल बड़े-बड़े भूभृतों का स्वतेज से अतिक्रमण कर जाता है ।

सप्तदश सर्ग -

शिशुपाल दूत का वचन सुनकर सभी राजा बड़े क्रुद्ध हुए । उत्मुक, युधाजित, सुधन्वा, आहुकि, मन्मथ आदि भी क्रोधित हुए किन्तु कृष्ण और उद्धव जी शान्त बने रहे । बलराम तो दूत की अवज्ञा करने के भाव से अट्टहास करने लगे । निषध नामक राजा तो दक्ष प्रजापति के यज्ञ को विध्वंस करने के लिए उद्यत रुद्र के गण वीरभद्र ने भयानक रूप धारण किया । पृथु राजा रण के उत्साह से अपने सीने को सहलाने लगा । गन्दिनी के पुत्र अक्रूर भी अत्यन्त क्रुद्ध हुए । सात्यकि के पितामह शिनि ने क्रुद्ध होकर पैर पटका तो पाताल लोक दिखायी पड़ने लगा और नागगण संतप्त होने लगे राजा शारण और विदूरथ क्रोध से बड़बड़ाने लगे । इस प्रकार इसकी बात सुनकर सभी राजा क्रुद्ध हुए तत्पश्चात् श्रीकृष्ण की सेना में युद्ध की तैयारी होने लगी । नगाड़े बजने लगे सैनिकों ने कवच पहने । हाथियों में हौदे रथों में अश्वों को तथा घोड़ों पर जीन रखते हुए व्यक्तियों राजागण त्वरा (जल्दी) करने के लिए कहने लगे ।

भगवान् श्री कृष्ण ने स्वयं भी अनिवार्य अस्त्रों शाङ्गधनुष कौमोद की गदा, नन्दक खड्ग आदि आयुधों को ग्रहण कर रथ पर आरूढ़ हो गये ।

पताका पर गरुड़ शोभित थे।भगवान् का रथ जैसे ही आगे बढ़ा सैनिक भी पीछे-पीछे प्रलयकाल की भाँति साथ हो गये । हाथी घोड़े चिग्घाड़ने व हिनहिनाने लगे । कन्दराओं में सोये हुए सिंह निकलकर भाग रहे थे।दिशायें धूल धूसरित हो रही थीं । शत्रु को देखकर वे लोग आकाश में मेघ की छाया के समान सर्वत्र फैल गये । प्रलय में त्रिभुवन को जठर में धारण करने वाले श्रीकृष्ण ने दूर से ही शत्रु की सेना का अनुमान कर लिया । वीरों पर सेना की धूलि पड़ने से उनके केश सफेद दिखने लगे तथा सूर्यबिम्ब भी छिप गया । दिशायें छिप गयीं । मुख आदि सात स्थानों से मद क्षरण करने वाले हाथियों के ऊपर फैला हुआ धूलि-समूह चन्दोवा जैसा प्रतीत हो रहा था । पर्वत के समान विशालकाय हाथी मदजल की धारा से धूलि को धो रहे थे ।

अष्टादश सर्ग -

युद्ध भूमि में दोनों शत्रु परस्पर युद्ध कर रहे थे । पैदल-पैदल से घोड़े-घोड़ों से, रथी-रथी से,हाथी-हाथी से भिड़ गये । रणभेरी की गंभीर, ध्वनि, रथों की घरघराहट गजराजों की तुमुल चिंघाड़ और अश्वों की हिन-हिनाहट ये सब मिलकर मानों परमात्मा की अव्यक्त सत्ता में खो गये हों । धनुष धारी लोग धनुषों पर प्रत्यन्चा चढ़ाते हुए टंकार करने लगे । बन्दी लोग उत्साहवर्द्धनार्थ योद्धाओं का नाम लेकर उनकी वीर गाथा गा रहे थे । शत्रु की तीक्ष्ण तलवार से कवच [illegible] कट जाने से उसमें पड़ी रक्तरेखा मेघ मध्यस्थ बिजली

जैसी चमक रही थी । नाक के रास्ते में घुसे बाण से घोड़े हिनहिना रहे थे । युद्ध में रक्त इतना बहा कि मानों असंख्य नदियाँ बह रही हैं । पक्षीगण माँस खाने की इच्छा से आकाश में इस भाँति मँडरा रहे थे । मानों भीषण अस्त्रों के आघात से शरीर को त्यागकर जाने वाले प्राण ही मूर्तिमान होकर अब भी अपने शरीर को देख रहे हों । वह रणस्थली भरे प्राणियों के कटे अंग-प्रत्यंगों से व्याप्त इस प्रकार दिखलायी पड़ रही थी मानों विधाता की विशाल सृष्टि की निर्माण स्थली हो । हाथी के शरीर में घुसे दाँत हाथी बड़ी कठिनता से निकाल रहा था । रक्त के संसर्ग से लाल-लाल उनके दाँत समुद्र में उत्पन्न होने वाले प्रवलांकुर के समान सुशोभित हो रहे थे । रक्त गन्ध के सूँघन से क्रोधोन्मत्त हाथी वीरों को कुचलकर उसकी अँतड़ी को पैर में फँसी रस्सी के समान चीर रहा था । डण्डे कट जाने से राजाओं के श्वेत छत्र भूमि में लुढ़ककर ऐसे मालूम पड़ते थे मानों मृत्यु के भोगने के लिए चाँदी के थाल रखे गये हैं । निरन्तर उस रणक्षेत्र में माँस को खाते और रक्त कोपीते हुए गीदड़ हर्ष से हुआँ-हुआँ कर रहे थे ।

एकोनविंश सर्ग -

संग्राम में शिशुपाल की सेना को हारते देख बाणासुर का पुत्र वेणुदारी मत्तहाथी के समान यादव सेना पर टूट पड़ा। बलराम जी ने उसकी गर्दन काट दी । सात्यकि के पितामह शिनि की प्रभावशाली सेना शिशुपालपक्षीय शाल्व की सेना को जीतकर अपनी डींग हाँकने लगी । श्रीकृष्ण के पुत्र प्रद्युम्न ने अपने

पीछे वेग से आती हुई शत्रु राजाओं की सेना को अकेले ही इस प्रकार रोका जिस प्रकार सब ओर से आती नदी को समुद्र रोकता है । असंख्य बाणों से बिंधा वीर बालक का शरीर मंजरीयुक्त विशाल वृक्ष के समान शोभा पा रहा था । इस वीर बालक का एक भी बाण विफल नहीं होता था ।

शिशुपाल की सेना ने इस वीर बालक के समक्ष आत्मसमर्पण किया । देवतागण इसकी वीरता से प्रसन्न हो पुष्पवृष्टि कर रहे थे यह देख-शिशुपाल क्रोधित हो गया । वह चतुरंगिणी सेना के साथ प्रद्युम्न की ओर दौड़ पड़ा । शिशुपाल की सेना में प्रत्यंचा के टंकार के शब्द तथा विविध वाद्य बजने लगे । घोड़े हिन-हिनाने लगे । तलवारें चमकने लगी । शिशुपाल की वह विकट शस्त्रसज्जा काव्य रचना के समान सर्वतोभद्र, चक्रबन्ध गोमूत्रिकाबन्ध मुरजबन्ध तथा अर्धभ्रमकबन्ध आदि से युक्त दुर्जेय दिखायी दे रही थी । वह संग्राम में आते ही यादव सेना से टकरा गयी । उभय दलों में विकट संग्राम होने लगा । असंख्य वीरो, हाथी घोड़ो का संहारकरता हुआ, शिशुपाल तेजी से आगे बढ़ रहा था । शिशुपाल को आता सुनकर श्रीकृष्ण का पांचजन्य(शंख) बोल उठा । वे कौस्तुभमणि तथा पीताम्बर धारण किये हुए थे । अत्यन्त देदीप्यमान रथ पर आरूढ़ होकर महाधनुष लिए भगवान् संग्राम में आ पहुंचे । उनके आते ही गगन कंपित हो उठा । पृथ्वी के भारभूत शिशुपाल पक्षीय राजाओं का सिर भगवान् ने चक्र से काट दिया ।

विंशः सर्ग -

भगवान के पराक्रम को न सहने वाले शिशुपाल की भृकुटि टेढ़ी हो गयी और उसने तीक्ष्ण बाण छोड़ना शुरू किया । उसके बाणों से आकाश ढक गया । धरती सूर्य कोई दिखायी नहीं दे रहा था । शिशुपाल के वज्र के समान धनुष टंकार से धरती हिल रही थी । यह देख भगवान् का धनुष शिशुपाल की ओर तन गया । भगवान के बाणों को कोई देख नहीं पा रहा था । भगवान् ने शिशुपाल के बाणों को इस भाँति काट दिया जैसे वादी के प्रमाणों को प्रतिवादी काट्य प्रमाणों और युक्तियों द्वारा गिरा दिया हो । कभी-कभी दोनों बाण मध्य में टकरा कर चिनगारियाँ उत्पन्न करने लगे । शिशुपाल ने हारकर श्रीकृष्ण को जीतने की इच्छा से श्रीकृष्ण पर प्रस्वापन नामक अस्त्र चलाया। पर भगवान् के कौस्तुभमणि के सामने होते ही वह विलीन हो जाता था । तदु-परान्त शिशुपाल ने नागास्त्र छोड़ा जिससे निरन्तर विष उगलने वाले सर्प प्रकट होकर सेना पर आक्रमण करने लगे भगवान के गरुड़ के भय से सभी सर्प छुप गये । सूर्य उस समय ताँबे के तवे की भाँति लाल ऐसा प्रतीत हो रहा था । मानो राहु ने उसको ग्रस लिया हो । नागास्त्र के बाद शिशुपाल ने आग्नेयास्त्र छोड़ा। वह अग्नि जब समस्त जगत को जलाती हुयी दिखायी दी तो भगवान् ने मेघास्त्र छोड़ा । मेघ दिशाओं को आच्छादित करने लगे । सूर्य मेघों में विलीन हो गये । बिजली चमकने लगी और इतनी वर्षा हुई कि बाढ आ गयी इस तरह पराजित शिशुपाल श्रीकृष्ण को वचन रूपी बाणो से व्यथित करने लगा लेकिन सभी प्रयत्नों

से विफल होने पर राजसूय यज्ञ में शिशुपाल की अभद्र वाणी सुनकर श्रीकृष्ण ने शिशुपाल के शरीर को सुदर्शन चक्र से शिर से विहिन कर दिया । शिशुपाल का सिर कटकर पृथ्वी पर गिरा । तब राजाओं ने अपने विस्मित नेत्रों से देखा कि परम देदीप्यमान तेज शिशुपाल के शरीर से निकलकर श्रीकृष्ण के शरीर में प्रविष्ट हो गया ।

1- शिशुपालवध महाकवि माघ- पंडित हरगोविन्द शास्त्री,
पृ0 सं0 23

2- महाकवि माघ उनका जीवन तथा कृतियाँ - डॉ0 मनमोहन लाल-
जगन्नाथ शर्मा, पृ0सं03।4

3- शिशुपालवध महाकाव्य- मूलप्रति ।

मूल कथावस्तु में परिवर्तन और उसका प्रयोजन

शिशुपालवध महाकाव्य की कथावस्तु महाकवि माघ को महाभारत और श्रीमद्भागवत में मिल गयी किन्तु इन दोनों की कथावस्तु का सन्दर्भ लेते हुए अध्ययन से स्पष्ट परिलक्षित होता है कि माघ कवि ने कई जगह पर आख्यानों में परिवर्तन किये हैं जो सम्भवत: काव्य की शोभा वर्धन में सहायक होंगे । कवि अपनी मौलिक उद्भावना शक्ति के लिये अपने महाकाव्यों, खण्ड काव्यों एवं काव्यों के प्रसिद्ध कथानकों को अपने उद्देश्य सिद्धि हेतु एक नवीन मोड़ दे देते हैं ।[1]

महाकवि तुलसी रामायण और वाल्मीकि कृत रामायण में भी भिन्नता है तथा उत्तर रामचरित नाटक को दु:खान्तता से बचाने के लिए महाकवि भवभूति ने अन्त में अपने कौशल से सीता और राम का मिलन दिखाया है । अभिज्ञान शाकुन्तलम् में दुष्यन्त के चरित्र की रक्षा के लिए दुर्वासा के शाप की कल्पना करनी पड़ी । इसी तरह शिशुपाल वध महाकाव्य के कथानक में भी कवि ने यथावश्यक परिवर्तन किये हैं । इन परिवर्तनों से कथानक मूल रूप से भिन्न सर्वथा एक नूतन रूप न धारण कर ले, ऐतिहासिक और पौराणिक सत्य में कहीं विरोध न आ जाय कवि को इन बातों का भी ध्यान रखना था । शिशुपाल वध महाकाव्य में बड़े परिवर्तनों के अतिरिक्त छोटे-छोटे परिवर्तन भी हैं क्योंकि माघ का काव्य लिखने का उद्देश्य न केवल शिशुपाल का ही वध है अपितु यश: प्राप्तिपूर्वक हरि[2]

1- महाकवि माघ, उनका जीवन तथा कृतियाँ-डॉ० मनमोहन लाल जगन्नाथ शर्मा, पृ० सं० 314

2- बृहत्त्रयी-एक तुलनात्मक अध्ययन- डॉ० सुषमा कुलश्रेष्ठ, पृ० सं० 45

का गुणगान (चरित्र वर्णन) करना भी है । वह स्वयं अपने काव्य को "लक्ष्मीपते-रचरित कीर्तनमात्रचारु" कहते हैं ।

महाकाव्य के पूर्ववर्ती ग्रन्थों में प्राप्त शिशुपालवध से सम्बद्ध कथाओं तथा माघ-प्रणीत महाकाव्य की कथा का विवेचन-शिशुपालवध के प्रमुख स्रोतों-महाभारत, श्रीमद्भागवत् में शिशुपालवध कथा का आरम्भ महर्षि नारद के आगमन से ही होता है । तीनों में क्रमशः युधिष्ठिर अपने भाइयों सहित श्रीकृष्ण द्वारा नारद की विधिवत् पूजा एवं उनके आसन ग्रहण करने की बात का वर्णन है । महाभारत में नारद सौम्य, दुर्मुख, प्रभृति ऋषियों सहित आते हैं । श्रीमद्भागवत् में अकेले ही श्रीकृष्ण के सम्मुख सूर्य सदृश प्रकट होते हैं और शिशुपाल वध काव्य में नारद आते तो ऋषियों के साथ हैं किन्तु पृथ्वी पर उतरने के पहले ही वे अनुगमन करने वाले देवताओं को लौटा देते हैं ।

महाकवि माघ शिशुपाल के वध की भूमिका बनाते हैं शिशुपाल जैसे ऐकवीर पुरुष का वध कोई साधारण व्यक्ति तो कर नहीं सकता, सृष्टि के व्यवस्थापक और शान्ति के संस्थापक महान् शक्तिशाली श्रीकृष्ण ही इस कार्य को कर सकते थे । श्रीकृष्ण को सीधे वध में इसलिए नियुक्त करना माघ को उपयुक्त नहीं लगा कि वह उच्छृङ्खल है । बड़े काम के लिए बड़ी अवतारणा जरूरी होती है । कवि ने इसीलिए नारद द्वारा नृसिंहावतार रामावतार के प्रसंग को प्रस्तुत किया जो शिशुपाल के वध का सूचक है, यह एक छोटा सा परिवर्तन है किन्तु इस परिवर्तन से सारे कथानक को एक नया मोड़ मिलता है; ऐसे मोड़ जिसमें श्रीकृष्ण

के चरित्र का एक वीरतापूर्वक दूसरा तेजोमय स्वरूप प्रस्तुत हो जाता है । माघ के श्रीकृष्ण अन्य कवियों के श्रीकृष्ण की भाँति न तो केवल देव ही है और न जादूगर ही हैं अपितु वह तो सांसारिक पुरुष की भूमिका में हैं । नरत्व की पूर्णता का आभार हमें माघ के श्रीकृष्ण में स्थान-स्थान पर मिलता है ।

नारद के आकाश मार्ग से आने का वर्णन महाभारत और श्रीमद्-भागवत् में एक तेजोन्मय रूप में दिखायी पड़ता है, फिर आकाश से नीचे उतरती उस तेजोमयी वस्तु के निकट आने पर हाथ पाँव आदि की धुंधली आकृति को देखकर यह पता लगाना कि वह व्यक्ति है फिर और पास आने पर स्पष्ट दिखायी पड़ने पर उस व्यक्ति को पुरुष के रूप में फिर नारद के रूप में अवगति होना और तब उनको प्रणाम करने के लिए उपस्थित जनसमूह का श्रद्धापूर्वक खड़े होना, यह सब महाकवि माघ की सद्भावना शक्तिका परिचय देता है ।

महाभारत तथा श्रीमद्भागवत् नारद के आसन ग्रहण करते ही कुशल क्षेमादि न पुछवाकर सीधे इस बात की चर्चा करते हैं कि युधिष्ठिर राजसूय यज्ञ कब करना चाहते हैं किन्तु माघ ने पहले कुशल-क्षेम आदि पुछवाकर तब श्रीकृष्ण द्वारा नारद के आगमन का कारण पुछवाते हैं । माघ काव्य में शिशुपालवध रूप काव्य का आधार "भागवत् पुराण" है माघ ने अपने काव्य के प्रथम श्लोक में श्रीकृष्ण भगवान् की स्तुति किया है । वे संसार का शासन करने के लिए ही वसुदेव के गृह में निवास कर रहे हैं क्यों कि श्रीकृष्ण ही शिशुपाल का दमन कर सकते हैं । अतः महाकवि काव्य के आरम्भ में नारद द्वारा श्रीकृष्ण के प्रति कहलवाते हैं कि असुरों के

उपद्रव रूपी भारों से भंगुर इस पृथ्वी के भार को हलका करने के लिए आप का अवतार हुआ है[1]। आप इनका नाश करने में स्वयं प्रवृत्त हों।

महाभारत में युधिष्ठिर नारद के चले जाने पर मन्त्रणा करते हैं। श्रीकृष्ण युधिष्ठिर का सन्देश पाते ही चल देते हैं। यहाँ एक ही कार्य है श्रीमद्भागवत् में भगवान् को कार्य द्वयाकुल दिखाया गया है, माघ काव्य में भी भगवान् को कार्य द्वयाकुल दिखाते हैं। युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ का संदेश प्राप्त होता है, इसके बाद नारद द्वारा शिशुपालवध रूप इन्द्र संदेश प्राप्त हुआ[2]। इसके पश्चात् श्रीकृष्ण बलराम एवं उद्धव सहित मन्त्रणा गृह में आते हैं। इसमें माघ कवि ने अपना राजनीतिक कौशल दिखाया है। राजनीति की चर्चा में युद्ध और क्षमा इन दोनों पक्षों पर सभी कालों में गम्भीरता से विचार हुआ है।

1- "लघूकरिष्यन्नतिभारभङ्गुरामम् किल त्वं त्रिदिवादवातरः।
उदूढलोकत्रितयेन साम्प्रतं गुरुर्धरित्री क्रियतेतरां त्वया ॥"

शिशुपालवध, 1/36,

2- "यियक्षमाणेनाहूतः पार्थेनाथ द्विषन्मुरम्।
अभिचैद्यं प्रतिष्ठासुरासीत्कार्यद्वयाकुलः ॥"

शिशुपालवध, 2/1,

इससे कवि की राजनीतिक रुचि का भी परिचय मिलता है। उनके व्यक्तिगत जीवन पर समसामयिक राजनीति का प्रभाव व्यक्त होता है। इससे माघ के पूर्ण पाण्डित्य का परिचय मिलता है। जिस मन्त्रणा गृह में कृष्ण उद्धव सहित मन्त्रणा करते हैं वह सभाभवन रत्नजटित खम्भों का है जिसमें श्रीकृष्ण बलराम उद्धव प्रतिबिम्बित होते हैं[1]। संख्या में तीन होनेपर भी अनेक दिखते हैं। श्रीमद्भागवत में और माघ काव्य दोनों में श्रीकृष्ण उद्धव के मत का अनुमोदन करते हैं और इन्द्रप्रस्थ प्रस्थान करते हैं। इन्द्रप्रस्थ तक पहुँचने का वर्णन महाकवि माघ ने 20 सर्गों के 766 श्लोकों में प्रस्तुत किया है[2]। इस प्रकार का महाभारत में डेढ़ श्लोक में वर्णन है[3]। भागवतकार ने उसी का 90 श्लोको में वर्णन किया है[4]।

दूसरे सर्ग के पश्चात् अर्घ्यदान तक कोई परिवर्तन नहीं दिखायी देता। सुकवि कीर्ति के इच्छुक महाकवि माघ अगले सर्गों में काव्य सम्बन्धी बातों को लिखकर दूसरे कवियों को परास्त करना चाहते हैं। महाकाव्य का

1- "रत्नस्तम्भेषु संक्रान्तप्रतिमास्ते चकाशिरे।
एकाकिनोऽपि परितः पौरुषेयवृता इव ।।"

शिशुपालवध, 2/4

2- शिशुपालवध, 3/12,

3- महाभारत सभापर्व, 13/42-43

4- श्रीमद्भागवत, 10/71-12-22

लक्षण इन्हीं सर्गों में मिलता है । भागवतकार ने पर्वतों का वर्णन किया है किन्तु किसी पर्वत का नाम नहीं दिया है । माघ ने रैवतक पर्वत के वर्णन से बड़ा परिवर्तन किया है। कुछ लोगों को यह अनावश्यक लगता है किन्तु सूक्ष्म दृष्टि से देखने पर पता चलता है कि सेना को इस भाँति शिविर के रूप में रैवतक पर्वत पर आनन्द विनोद के लिए रखना माघ का काव्य कौशल ही था जिससे घर गृहस्थी की चिन्ता से मुक्त हो जायें । तथा .शरीर व मन से स्वस्थ होकर इन्द्रप्रस्थ जायें जहाँ शिशुपाल का वध करना है । यह बात सामरिक महत्त्व को लिए हुए है । रैवतक पर्वत पर छहों ऋतुओं का तथा सब लोगों के क्रीड़ादि का वर्णन किया है ।

लेकिन कुछ लोग इसे परिवर्तन न मानकर परिवर्धन कहना उचित मानते हैं । यह परिवर्तन जहाँ महाकाव्य की इस आवश्यकता को पूरी करता है, वहाँ एक युग विशेष की सामाजिक चेतना को भी अभिव्यक्त करता है इस प्रकार तृतीय से द्वादश सर्ग तक कवि की मौलिक रचनाहै । इस वर्णन के द्वारा कवि का प्राकृतिक एवं सांस्कृतिक प्रेम भी परिलक्षित होता है । महाभारत में कृष्ण के इन्द्रप्रस्थ पहुँचने पर युधिष्ठिर आदि ने उनकी पूजा की। वे अपनी बुआ से मिलकर जाने लगे तब युधिष्ठिर ने राजसूय यज्ञ करने की इच्छा व्यक्त की ।

लेकिन श्रीमदभागवत और माघकाव्य दोनों में श्रीकृष्ण गमन के अवसर पर अनुजों और सहृदों सहित युधिष्ठिर उनके स्वागतार्थ जाते हैं । फिर आपस में सब लोग गले मिलते हैं । ब्राह्मणों और पुरवासियों द्वारा पूजित होने का विशद वर्णन है ।

श्रीमद्भागवत तथा माघकाव्य में कई श्लोकों में भावसाम्य स्पष्ट है। भागवत में कुन्ती की आज्ञा से द्रौपदी द्वारा रुक्मिणी, सत्यभामा आदि पत्नियों की विधिवत् पूजा की। दूसरी ओर माघ काव्य में गजकुम्भ सदृश उन्नत एवं कठोर पयोधरों के भार से हर्ष से रोमाञ्चित कपोल फलकों वाली यादवों एवं पाण्डवों की रमणियों के परस्पर श्लेष का वर्णन है[1]।

आगे यज्ञ का सजीव वर्णन आता है-अर्घ्य का अधिकारी कौन -इस प्रश्न को लेकर कवि ने एक परिवर्तन किया है-वह शिशुपाल वध का दूसरा बड़ा परिवर्तन है। इससे काव्य निखर सा उठा है। श्रीमद्भागवत् में भी महाभारत की तरह पहले भीम द्वारा जरासन्ध का वध दिखाया गया है। तदनन्तर युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ की तैयारी है। किन्तु शिशुपाल वध में दिग्विजय का कहीं वर्णन नहीं है राजसूय से ही प्रारम्भ करते हैं। श्रीकृष्ण कहते हैं। आपके यज्ञमें जो विघ्न उपस्थित करेगा। उसका सिर मेरे सुदर्शन चक्र द्वारा धड़ से अलग हो जायेगा[2]। इससे स्पष्ट है कि युधिष्ठिर दिग्विजय कर चुके हैं।

1- "इभकुम्भतुङ्गकठिनेतरेतरस्तनभारदूरविनिवारितोदराः।
परिफुल्लगण्डफलकाः परस्परं परिरेभिरे कुकुरकौरवस्त्रियः।।

शिशुपालवध, 13/16

2- यस्तवेह सवने न भूपतिः कर्म कर्मकरवत्करिष्यति।
तस्य नेष्यति वपुः कबन्धतां बन्धुरेव जगतां सुदर्शनः।।

शिशुपालवध, 14/16

राजसूय यज्ञ के प्रत्येक कार्य की सम्पन्नता में श्रीकृष्ण का हाथ था महाभारत में स्पष्ट लिखा है कि श्रीकृष्ण ने ब्राह्मणों के चरण प्रक्षालन का कार्य किया । भागवत में किसी कार्य विशेष में नियुक्त नहीं किया गया है । माघ काव्य में भी किसी कार्य में नियुक्त न करके राजसूय यज्ञ की सफलता में यशोभागी बनाया है । महाभारत और शिशुपाल वध में श्रीकृष्ण ने कहा है कि आप हमें इच्छानुसार किसी कार्य में नियुक्त करिये।आपके शुभ कार्यों के अनुष्ठान में हम सदैव तत्पर रहेगें । शिशुपालवध में राजसूय यज्ञ में सम्मिलित होने के लिए राजाओं के पास निमन्त्रण नहीं भेजा गया है । केवल एक स्थल पर संकेत मिलता है । जो पृथापुत्र युधिष्ठिर के श्रीकृष्ण के लिए है ।[1]

महाभारत में श्रीकृष्ण की आज्ञा पाकर युधिष्ठिर यज्ञ सामग्री जुटाने लगे । यज्ञ में आये लोगों के विभिन्न कार्यों में लगाने लगे । युधिष्ठिर की सभा में आये हुए राजाओं ने कम से कम एक सहस्त्र स्वर्ण मुद्रा भेंट स्वरूप दिया । उनका सभामण्डल राज मण्डल से व्याप्त था । देवता लोग भी यज्ञ को देख रहे थे । युधिष्ठिर की समृद्धि वरुण के समान थी । धनकुबेर के समान था । यज्ञ की छः अग्नियों में हवन किया गया । सब की इच्छायें पूर्ण की गईं । सब देवगण तथा ब्राह्मण दक्षिणा पाकर तृप्त हो गये ।

1- यियक्षमाणेनाहूत: पार्थेनाथ द्विषन्मुरम् ।
अभिचैद्यं प्रतिष्ठासुरासीत्कार्यद्वयाकुल: ।।

शिशुपालवध, 2/1

भागवतकार ने यज्ञ का अत्यन्त संक्षिप्त वर्णन किया है। महाकवि माघ ने शिशुपाल के चतुर्दश सर्ग के 35 श्लोकों (14/18-52) में राजसूय यज्ञ का वर्णन किया है श्रीकृष्ण की आज्ञा से युधिष्ठिर तैयार हुए गंगाजल से उन्होंने स्नान किया और यज्ञ के यजमान बने। ऋग्वेद यजुर्वेद के पाठ द्वारा यज्ञ सम्पन्न हुआ।[1] दिशाओं को धूमिल करता हुआ अग्नि धूम आकाश की ओर बढ़ने लगा। जिसका पान देवता लोग करने लगे। यज्ञ समाप्ति पर महाराज युधिष्ठिर ने सभी को यथेच्छ यज्ञ दक्षिणा देकर सन्तुष्ट किया। याचकों को इच्छानुसार देकर भी पश्चाताप् नहीं किया।[2]

1- सप्तभेदकर कल्पितस्वरं साम सामविद सङ्गमुज्जगौ।
तत्र सूनृतगिरश्च सूरयः पुण्यमृग्यजुषमध्यगीषत ।।

शिशुपालवध, 14/2।

2- नैक्षतार्थिनमवज्ञया मुहुर्याचितस्तु न च कालमक्षिपत्।
नादिताल्पमथ न व्यकत्थयद्दत्तमिष्टमपि नान्वशेत सः ।।

शिशुपालवध, 14/45

इस प्रकार माघ वर्णित राजसूय यज्ञ अतिविचित्रोपम है । इस यज्ञ के वर्णन से यह प्रतीत होता है कि माघ ने अपने जीवन काल में किसी बड़े यज्ञ को देखा होगा या पुराणों में वर्णित यज्ञ माघ के लिए सहायक हुए होंगे ।

महाभारत में अर्घ्यपूजा के अधिकारी 6 व्यक्तियों को बताया है । अन्त में भीष्म की अनुमति से प्रथम अर्घ्य का समाधान कर देते हैं । भागवतकार सहदेव से श्रीकृष्ण के प्रथमार्घ्याधिकारी होने का प्रस्ताव करवाकर शान्त हो जाते हैं किन्तु माघ के काव्य में केवल तीनों ग्रन्थों का यही साम्य मिलता है कि अर्घ्य पूजा के योग्य श्रीकृष्ण हैं । राजसूय यज्ञ के बाद युधिष्ठिर को प्रथमार्घ्य के लिए भीष्म बताते हैं कि स्नातक, गुरु, बन्धु, पुरोहित,जामाता एवं राजा ये 6 लोग प्रथमार्घ्य के योग्य हैं । अधिक गुणवान् एक ही व्यक्ति पूज्य होता है । यह भी शास्त्रानुमोदित विधि है ।[1]

साथ ही भीष्म यह भी कहते हैं कि भगवान् श्रीकृष्ण एकमात्र अग्रपूजा के अधिकारी हैं ।[2] इस प्रकार कवि को श्रीकृष्ण के विविध अवतारों के

1- स्नातकं गुरुमभीष्टमृत्विजं संयुजा च सह मेदिनीपतिम् ।
अर्घभाज इति कीर्तयन्ति षट् ते च ते युगपदागताः सदः ।

शिशुपालवध, 14/55

शोभयन्ति परितःप्रतापिनो मन्त्रशक्ति विनिवारितापदः ।
त्वन्मखं मुखभुवः स्वयम्भुवो भूभुजश्च परलोक जिष्णवः ।। 14/56

2- अत्र चैष सकलेऽपि भाति मां प्रत्यशेषगुणबन्धुरर्हति ।
भूमिदेवनरदेवसङ्गमे पूर्वदेवरिपुरर्हणां हरिः ।।

शिशुपालवध, 14/58

वर्णन करने का सुन्दर अवसर मिलता है । भीष्म के मुख से श्रीकृष्ण की स्तुति की रखा है । इसका अभिप्राय सिर्फ इतना है कि शिशुपाल क्रुद्ध होकर भगवान् को अपशब्द कहने लगें और तब उसका वध हो जाय ।

तीनों ग्रन्थों में शिशुपाल के क्रोध का अत्यन्त विस्तार से वर्णन है। महाभारत में श्रीकृष्ण की अग्रपूजा से क्रुद्ध होकर भीष्म और युधिष्ठिर को शिशुपाल अपशब्द कहता है ।[1] कृष्ण को भी अपशब्द कहता है । इसके अनन्तर भीष्म ने कहा कि कृष्ण ने सौ अपराध क्षमा करने का वचन दिया है । सौ अपराध पूरे होते ही उसे मार दिया जायेगा । श्रीकृष्ण के इस वरदान के कारण ही शिशुपाल उस समय तक गालियाँ देकर एवं अपशब्द कहते हुए गरजता रहा । लेकिन कृष्ण तब भी क्षुब्ध नहीं हुए तदनन्तर शिशुपाल क्रुद्ध होकर सभा से बाहर चला गया ।[2] युधिष्ठिर आदि ने उसे रोकने का व्यर्थ प्रयास किया शिविर पहुँचकर शिशुपाल की सेना चलने के लिए प्रस्थान करने लगी । तब अपशकुन होने लगे । शिशुपाल के द्वारा भेजा गया दूत प्रिय-अप्रिय वचन कहने लगा । दूत के शान्त होने पर सात्यकि ने श्रीकृष्ण के संकेत पर शिशुपाल की भर्त्सना और निन्दा की । सात्यकि ने कहा कि शिशुपाल सन्धि करना चाहता है तो उसने युद्ध की तैयारी क्यों की है । श्रीकृष्ण का किसी के भय से विनम्र होना सम्भव नहीं ।[3] यदि

1- अपराधशतं क्षाम्यं मया ह्यस्य पितृष्वसः ।
पुत्रस्य ते वधार्हस्य मा त्वं शोके मनः कृथा ।। सभापर्व, 43/25

2- कटुनापि चैद्यवचनेन विकृतिमगमन्न माधवः ।
सत्यनियतवचसं वचसा सुजनं जनाश्चलयितुं क ईशते ।। शिशुपालवध, 15/40-67

3- समन्द किमङ्गभूपतिर्यदि संधित्सुरसौ सहामुना ।
हरिराक्रमणेन संनतिं किल विभ्रीत भियेत्यसंभवः ।। शिशुपालवध, 16/34

शिशुपाल यह सोच रहा हो कि उसके सौ अपराध पूरे नहीं हुए तो यह उसकी भूल है। उसके सौ अपराध कब के पूरे हो चुके हैं[1]। तब दूत ने कहा शिशुपाल आप से युद्ध करने आ रहा है। अतः आप अपनी रक्षा हेतु युद्ध करने को तैयार हो जायें[2]। इसके बाद दोनों ओर की सेनायें घमासान युद्ध करने लगीं।

महाभारत में श्रीकृष्ण कहते हैं शिशुपाल के सौ अपराध पूरे हो चुके हैं। अतः उसका सिर काटता हूँ। सिर कटने पर शिशुपाल के शरीर से एक तेज पुन्ज निकलकर श्रीकृष्ण में विलीन हो गया। श्रीमद्भागवत में भी कृष्ण पक्षीय राजाओं ने शस्त्र उठाया तब कृष्ण ने शिशुपाल का सिर काट दिया। भागवत में शिशुपाल के जन्म जन्मान्तर का वर्णन भी दिया गया है। शिशुपालवध महाकाव्य में पहले शिशुपाल और श्रीकृष्ण का युद्ध वर्णन है। जब शिशुपाल ने समझा कि श्रीकृष्ण अजेय है तभी वाग्बाण द्वारा युद्ध आरम्भ किया। तब श्रीकृष्ण ने सुदर्शन चक्र से उसका सिर काट दिया।

प्रायः सभी ग्रन्थकारों ने इस बात का अनुकरण किया है कि अर्घ्य पश्चात् शिशुपाल से गालियाँ दिलवायीं। 100 अपराध पूरे होने पर उसका श्रीकृष्ण के हाथों वध हो जायेगा किन्तु महाकवि माघ ने यहाँ जिस मौलिक

1- "यदपूरि पुरा महीपतिर्न मुखेन स्वयमागसां शतम्।
अथ संप्रति पर्यपूपुरत्तदसौ दूतमुखेन शार्ङ्गिणः।। शिशुपालवध, 16/36

2- तदयं समुपैति भूपतिः पयसां पूर इवानिवारितः।
अविलम्बितमेधि वेतसस्तरुवन्माधव मा स्म भाज्यथाः।। शिशुपालवध, 16/53

परिवर्तन को प्रस्तुत किया है । वह उन्हें अन्य ग्रन्थकारों से ऊँचा उठा देता है । गाली देते हुए मार देना ऐक चमत्कार जैसा लगता क्यों कि शिशुपाल वीर और क्षत्रिय था इसलिए उसने युद्ध के लिए ललकारा । फिर युद्ध में पराक्रमी श्रीकृष्ण के पक्ष को यह कहकर न्याय युक्तता देना कि वह सज्जनों की रक्षा के लिए दुष्टों को अस्त्रों से पराजित नहीं कर सका तो गालियाँ देने लगा । 100 गालियों की समाप्ति पर श्रीकृष्ण अपने अपराधी शत्रु शिशुपाल का वध करते हैं । इस परिवर्तन से वध रूप कार्य का सुन्दर एवं औचित्य पूर्ण समाधान हो गया है ।

वध होने पर शिशुपाल के शरीर से निकला तेजपुन्ज श्रीकृष्ण के शरीर में प्रविष्ट हो गया । यह प्रसंग तीनों ग्रन्थों में है । पदमपुराण और विष्णु पुराण में भी है किन्तु ब्रह्मवैवर्त में सिर कट जाने का वर्णन नहीं है । ब्रह्मवैवर्त में मृत शिशुपाल की आत्मा श्रीकृष्ण से अपने अपराधों के लिए क्षमा माँगती है ।

इस प्रकार कथावस्तु के आरम्भ और पर्यवसान के बीच तीन दृश्यों का सविस्तार वर्णन माघ काव्य में प्राप्त होता है ।

1- रैवतक पर्वत का वर्णन

2- इन्द्रप्रस्थ में होने वाले राजसूय यज्ञ का वर्णन ।

3- श्रीकृष्ण और शिशुपाल के युद्ध का वर्णन ।

इसमें प्रस्तावना, उसका समाधान, तदनुकूल कार्य तथा उद्देश्य की प्राप्ति में ये पाँचों बातें आ जाती है । इससे महाकाव्य को सम्पूर्णता मिल गयी है। काव्योचित सौन्दर्य का कल्पना और अनुभूति इन दोनों के संगम का पर्याप्त मात्रा

में निर्वाह हुआ है । माघ की प्रस्तुत करने की शैली ने इस प्रसंग को और सुन्दर बना दिया । शिशुपाल और श्रीकृष्ण के युद्ध का तथा अन्त में शिशुपाल के वध को माघ ने रोचक ढंग से प्रस्तुत किया है । दाह-संस्कार नाटक में उचित नहीं मानते हैं । काव्य के अन्त में यह अशुभ दृश्य न रखकर माघ ने पुष्पवृष्टि तथा दुन्दुभियों के गम्भीर घोष के साथ तेज को तेज में विलीन होता दिखाकर काव्य को सुन्दर ढंग से समाप्त किया है ।

कथानक में किसी भांति यदि शिथिलता भी आयी है तो उसकी पूर्ति कवि ने अपने काव्य-कौशल से यथास्थान कर दिया है । काव्य में उत्सुकता को बढ़ाये रखने के लिए बीच-बीच में प्रस्तुत किये गये कथोपकथन चरित्र-चित्रण वर्णनशैली जिसमें भाषा,सुभाषोक्तियाँ और अलंकार आदि का उचित समावेश किया गया है। माघ की कथावस्तु के सम्बन्ध में संक्षेप में कहा जा सकता है कि कवि ने एक छोटी सी घटना को लेकर उसके आधार पर अपनी यह बृहद रचना की है । इस घटना को चुनने के दो प्रयोजन हैं - एक तो यह कि उसके सहारे उन सारी बातों को प्रस्तुत किया जा सकता है जो उस समय तक स्वीकृत लक्षणों के अनुसार इस रचना को महाकाव्य का रूप दे सकती थी और दूसरे यह कि श्रीकृष्ण के जीवन की एक विशिष्ट घटना का वर्णन जिसके द्वारा कवि अपनी कृष्ण भक्ति को भी प्रकाशित करना चाहता था । यह कहना अनुचित नहीं होगा कि माघ कवि के उक्त दोनों ही प्रयोजन इस छोटी सी कथावस्तु से अभीष्ट रूप में सिद्ध हुए हैं ।

1- महाकवि माघ उनका जीवन तथा कृतियाँ -डा0मनमोहन लाल जगन्नाथ शर्मा, पृ0सं0313-319

(तृतीय अध्याय)

वस्तु वर्णन

संस्कृत के महाकाव्य रस प्रधान हैं, किन्तु वस्तु-वर्णनों की भी उनमें बहुलता रहती है । संस्कृत कवियों का यह वैशिष्ट्य रहा है कि वे साधारण से साधारण वस्तु को अपनी कल्पना, सहृदयता, सूक्ष्मदर्शिता तथा वर्णन-चातुरी से इस प्रकार प्रस्तुत करते हैं कि पाठक या श्रोता के सम्मुख उस वस्तु का समग्र एवं चित्ताकर्षक रूप उपस्थित हो जाता है[1] । भामह ने महाकाव्य में मन्त्रणा, दूत सम्प्रेषण युद्ध तथा नायक के अभ्युदय का वर्णन आवश्यक माना है ।[2] दण्डी की सम्मति में कथा-वस्तु को अति संक्षिप्त नहीं होना चाहिये । उनके अनुसार कथा-वस्तु को विशद करने वाले अंग ये हैं - नगर, समुद्र, पर्वत, ऋतु, चन्द्रोदय और सूर्योदय के वर्णन विवाह, उद्यान-क्रीड़ा, पानगोष्ठी, सुरत-विलास विप्रलम्भ, वेदना तथा पुत्र-जन्म जैसी प्रासङ्गिक कथाओं का सन्निवेश, शत्रु पर विजय-प्राप्ति के लिए अमात्यों के साथ युद्ध-मन्त्रणा, दूत-सम्प्रेषण रण-प्रयाण युद्ध और अन्त में विजय के साथ कथावस्तु

1- बृहत्त्रयी एक तुलनात्मक अध्ययन - डॉ० सुषमा कुलश्रेष्ठ, पृ०276

2- मन्त्रदूतप्रयाणाजिनायकाभ्युदयैश्च यत् ।

पञ्चभिः सन्धिभिर्युक्तं नातिव्याख्येयमृद्धिमत् ।।

काव्यालंकार- भामह, 1/20

में व्याप्त नायक के अभ्युदय की कथा ।[1]

महाकाव्य-विस्तार के लिए दिये गए उक्त निर्देश पर डॉ० जयशंकर त्रिपाठी भी लिखते हैं कि उक्त समस्त निर्देश महाकाव्य की परिधि के विस्तार हैं जिसमें धर्म, राजनीति, समाज एवं जीवन के अनेकानेक विषय कथा के अंग बनकर कवि के काव्य को आकर्षक बनाते हैं ।[2] महाकाव्य संज्ञा से काव्य को जिस विराट गुम्फना की ओर संकेत मिलता है यदि उक्त निर्देशों को वही मान लिया जाय तो दण्डी के काव्यादर्श में निरूपित सिद्धान्तों अथवा प्रयोगों को महाकाव्य के रचयिता कवि के लिए सर्वथा अपर्याप्त ही समझना चाहिये । जीवन और जगत् राष्ट्र और धर्म समाज और व्यक्ति के लगभग समस्त व्यवहार किसी न किसी प्रकार महाकाव्य के इन निर्देशों में समाहित हो जाते हैं । कवि इनका गुम्फन महाकाव्य में किस प्रकार करे इसके सन्निवेश से महाकाव्य की प्राणवत्ता किस प्रकार विराट हो जाती है-आदि पर्यालोचन संस्कृत के किसी भी काव्यशास्त्रीय ग्रन्थ में प्राप्त नहीं होते । जिन काव्यशास्त्रीय ग्रन्थों में-जैसे भामह, रुद्रट के काव्यालङ्कार, हेमचन्द्र के काव्यानुशासन, विश्वनाथ के साहित्यदर्पण में महाकाव्य का यह परिचय मात्र दिया गया है उनमें यह परिचय विलक्षण तथा

1- नगरार्णवशैलर्तुचन्द्रार्कोदयवर्णनैः ।
उद्यानसलिलक्रीडामधुपानरतोत्सवैः ।।
विप्रलम्भैर्विवाहैश्च कुमारोदयवर्णनैः ।
मन्त्रदूतप्रयाणाजिनायकाभ्युदयैरपि ।।

काव्यादर्श- दण्डी, 1/16-17

2- बृहत्त्रयी एक तुलनात्मक अध्ययन- डॉ०सुषमा कुलश्रेष्ठ, पृ०296

बलात् जोड़ा गया सा प्रतीत होता है । ऐसा लगता है कि यहाँ इस लक्षण के व्याख्यान की कोई आवश्यकता या सङ्गति नहीं है । सत्य तो यह है कि संस्कृत के सम्पूर्ण काव्य-शास्त्र में उक्ति वैचित्र्य की ही अनेक व्याख्या हुई है, चाहे वह अलंकार हो, गुण हो, रीति हो, चाहे ध्वनि, वक्रोक्ति अथवा रस हो । विषय वैचित्र्य की व्याख्या की ओर किसी आचार्य का ध्यान नहीं गया और महाकाव्य के लिए वास्तविक रूप में उक्ति वैचित्र्य नहीं अपितु विषय-वैचित्र्य ही अपेक्षित है । आचार्यों ने केवल उसके विषयों की सूची गिना दी है । विषयों के निर्वाह उनकी विशिष्टता के आकर्षक सन्निवेश आदि पर जो पर्यवेक्षण होना चाहिये था नाटक के सम्बन्ध में तो मिलता है किन्तु महाकाव्य के सम्बन्ध में नहीं । महाकाव्य की प्राण-वत्ता विषय के इसी सूक्ष्म पर्यवेक्षण में थी।[1]

रुद्रट ने महाकाव्य के अपने लक्षण को राजनीति और युद्ध विधा में सीमित कर दिया है । उनके अनुसार शत्रु के विपरीत कार्यों को सुनकर क्रुद्ध नायक द्वारा मन्त्रणा-पूर्वक युद्ध के लिए अभियान के प्रसंग में ही नागरिकों के क्षोभ, जनपद, पर्वत, नदी, अटवी, कानन, सरसी, मरुस्थल, समुद्र, द्वीप, सूर्यास्त, गहन अन्धकार चन्द्रोदय पानगोष्ठी, संगीत, समाज, भुवन, आदि का वर्णन महाकाव्य में किया जाना चाहिये ।[2] डॉ० जयशंकर त्रिपाठी के मत में रुद्रट का यह निर्देश महाकाव्य

1- आचार्य दण्डी एवं संस्कृत काव्य शास्त्र का इतिहास- दर्शन, पृ० 190

2- काव्यालंकार - रुद्रट, 16/11-5

की विराट कथा को एक रूढ़ि में बाँधने का कृत्रिम विधान जैसा ही होने से अत्यन्त अनुपयुक्त है ।[1] रूद्रट ने महाकाव्य में विराट जीवन को केवल राजनीति के आश्रित कर दिया है । इस प्रकार उनकी यह परिभाषा केवल एक विशेष प्रकार के महाकाव्यों का स्वरूप-निदर्शन है ।[2] हमारी सम्मति में रुद्रट का यह निर्देश अनुपयुक्त नहीं लगता । एक तो जिस प्रकार भामह और दण्डी ने महाकाव्य में कुछ वस्तुओं के वर्णन को आवश्यक माना है, उसी प्रकार रूद्रट भी महाकाव्य में कुछ वस्तुओं के वर्णन के निर्देश के प्रसंग में वर्ण्य विषयों की सूची देते समय पूर्ववर्ती आचार्यों से कुछ आगे बढ़ते हुए लम्बी सूची गिना गये है । दूसरी बात यह है कि उन्होंने स्पष्ट निर्देश किया है कि प्रसंग से इन वर्णनों का निवेश करना चाहिये ।[3] रूद्रट का यह कथन इस बात का स्पष्ट सूचक है कि वे यह कदापि नहीं चाहते हैं कि उक्त सब वस्तुओं का वर्णन महाकाव्य में अवश्य किया ही जाय अपितु उन्हें तो उन्हीं वस्तुओं का वर्णन अभीप्सित है जिनका कथावस्तु में कहीं न कहीं कोई प्रसंग आता हो ।[4]

1- बृहत्त्रयी एक तुलनात्मक अध्ययन - डॉ0सुषमा कुलश्रेष्ठ,266

2- आचार्य दण्डी एवं संस्कृत काव्यशास्त्र का इतिहास - दर्शन,पृ0 211

3- इति वर्णयेत्सप्रसङ्‌गात्कथां च भूयोनिरन्तरीयात् ।।

काव्यालंकार,16/15

4- बृहत्त्रयी एक तुलनात्मक अध्ययन- डॉ0सुषमा कुलश्रेष्ठ,266

विश्वनाथ जी के अनुसार महाकाव्य में सूर्य, चन्द्रमा, निशा, [illegible], प्रदोष, अन्धकार, प्रातःकाल, मध्यान्ह, सन्ध्या, मृगया, पर्वत, ऋतु, वन समुद्र, सम्भोग, विप्रलम्भ, मुनि, स्वर्ग, नगर यज्ञ, संग्राम, यात्रा विवाह, मन्त्र, पुत्र और अभ्युदय आदि का यथासम्भव साङ्गोपाङ्ग वर्णन करना चाहिये।[1] इस प्रकार आचार्यों के निर्देश तथा महाकाव्यों में उपर्युक्त वर्णनों के सन्निवेश को देखकर हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि कथावस्तु के विकास के लिए आचार्य निर्दिष्ट वस्तुओं में से प्रसंग को देखते हुए जिन वस्तुओं का वर्णन आवश्यक हो उसके वर्णन का सन्निवेश महाकाव्य में करना चाहिये।

काव्य में आलम्बन की ही मुख्यता होती है। काव्य में वर्णित प्रत्येक वस्तु किसी न किसी पात्र के किसी न किसी भाव का आलम्बन अवश्य होती है। जो वस्तु पात्र के किसी भाव का आलम्बन अवश्य होती है। जो वस्तु पात्र के किसी भाव का आलम्बन नहीं होती वह कवि या श्रोता के भावका आलम्बन होती है। कवि उस वस्तु का किसी न किसी भाव के साथ ग्रहण करता है और उसी रूप में श्रोता या पाठक के सम्मुख रखने का प्रयास करता है जिससे श्रोता या पाठक भी उस वस्तु का उसी रूप में ग्रहण करे जिस रूप में कवि ने किया है। इस प्रकार

1- सन्ध्यासूर्येन्दुरजनीप्रदोषध्वान्तवासराः।
प्रातर्मध्याह्नमृगयाशैलर्तुवन सागराः।
सम्भोगविप्रलम्भौ चमुनिस्वर्णपुराध्वराः॥
रणप्रयोणोपयममन्त्रपुत्रोदयादयः।
वर्णनीयाः यथायोगं साङ्गोपाङ्गा अमी इह॥

साहित्यदर्पण-विश्वनाथ कविराज,
6/322-324

कुशल कवि की अनुभूति का सहृदय की अनुभूति से सम्वाद होता है।

किसी भी वस्तु का वर्णन करने के लिए कवि के पास अनेक साधन होते हैं। कभी वह अभिधावृत्ति के द्वारा वाच्य से किसी भाव को प्रकट करता है और कभी वह वस्तु के अभिप्रेत रूप को उपस्थित करने के लिए व्यंजनावृत्ति का सहारा लेता है। कभी वह उपमा, उत्प्रेक्षा, रूपक, समासोक्ति आदि अलंकारों के प्रयोग द्वारा प्रस्तुत से अप्रस्तुत वस्तुओं की योजना करता है। कवि की प्रस्तुत से अप्रस्तुत वस्तुओं की कल्पना का विचरण वहीं तक उचित है जहाँ तक जाकर वह वस्तु के अभिप्रेत रूप को श्रोता के सम्मुख उपस्थित करने में कवि की सहायता करे।

संस्कृत के सभी महाकाव्यों में वस्तु-वर्णन प्राप्त होता है। कालि-दास के परवर्ती कवियों में वैदुष्य प्रदर्शन की भावना इतनी प्रबल हो गई थी कि वे किसी वस्तु का सीधा-सरल वर्णन नहीं करते थे।[2] किसी भी वस्तु का वर्णन करते समय उन्हें अपने पाण्डित्य प्रदर्शन का अच्छा अवसर मिल जाता था। वे उन वर्णनों में अपने अधीन विषयों तथा विविध शास्त्रों के अपने ज्ञान को प्रदर्शित करने का भरसक प्रयत्न करते थे। भारवि से श्रीहर्ष तक का समय काव्य-रचना

1- नायकस्य कवेः श्रोतुः समानोऽनुभवस्ततः।

दृष्टव्य बृहत्त्रयी एक तुलनात्मक अध्ययन- डॉ०सुषमा कुलश्रेष्ठ, पृ०278

2- बृहत्त्रयी एक तुलनात्मक अध्ययन - डॉ०सुषमा कुलश्रेष्ठ, पृ०278

की दृष्टि से ऐसा समय था जब कवि के लिए विभिन्न शास्त्रों (राजनीति, कूटनीति, कामशास्त्र, संगीतशास्त्र, दर्शन आयुर्वेद आदि) का ज्ञान आवश्यक था । यही कारण है कि महाकवि माघ के काव्य में पाण्डित्य प्रदर्शन की भरमार दिखायी पड़ती है । माघ के काव्य अनेक नूतन कल्पनाओं भरपूर है । कवि माघ जब किसी वस्तु का वर्णन करते हैं तब अपनी कल्पनाशक्ति सहृदयता तथा वर्णन-चातुरी से उसे अत्यन्त सरस रूप प्रदान कर देते हैं ।

माघ काव्य के वैभिन्न्य में भी सौन्दर्य दिखायी पड़ता है । माघ एक कलावादी कवि है । जहाँ कालिदास को रस कवि कहा गया है वहीं माघ को अलंकार कवि बताया गया है । उन्होंने सुकवि की पहचान इस रूप में प्रस्तुत की है । वे शब्द और अर्थ दोनों के सौन्दर्य पर बल देते हैं । यद्यपि रसों और भावों के जानने वाले कवि के लिए भी उनके हृदय में सम्मान है ।[1] शास्त्रज्ञ कवि होने के कारण ही उन्होंने अपने पूर्ववर्ती कवियों का मार्ग अपनाया है । अपनी मौलिक कविताओं के प्रयोग से ही वे आज ऊँचे स्थान पर आसीन हैं । माघ के काव्य में कलात्मक सजावट शब्दों का भण्डार तथा कल्पनाओं की विचित्रता पूर्ण विपुलता ये सब उनके वैषम्य के औचित्य को अभिव्यक्त करते हैं । उनकी उक्तियों में अनूठापन है । अलंकारों को एक सूत्र में बाँधने की उनमें अपूर्व क्षमता है ।

1- "शब्दार्थौ सत्कविरिव द्वयं विद्वानपेक्षते" ।

शिशुपालवध, 2/86

उनकी शैली में अपूर्व संगीत की छटा है उनका भाव पक्ष भी अपने ढंग का है । उनका वर्णन वैचित्र्य भी अनूठा है । नारद और श्रीकृष्ण की शिष्टता भरी बातें इसका अच्छा प्रमाण है जिसमें भावों की मौलिकता स्पष्ट है । इनका प्रकृति वर्णन भी अनूठा है । छठें सर्ग के प्रकृति वर्णन में यमकों के होने पर भी सरलता के कारण सौन्दर्य का विघात नहीं हुआ है । उनका अप्रस्तुत विधान सुगठित सुनियोजित एवं सुसज्जित हैं ।

शिशुपालवध में वस्तु-वर्णन -

माघ के काव्य में वर्णनात्मक प्रसंगों की अधिकता है । शिशुपालवध में वस्तु-वर्णन के विस्तार से ही स्वल्पकथा को दीर्घ बना दिया गया है । अपनी वर्णन प्रतिभा के बल पर इन्होंने सामान्य बातों में भी नवीनता ला दी है । इनके वर्णन बड़े सजीव है । जैसे-ऋषि-वर्णन, मन्त्रणा-वर्णन, द्वारिका पुरी-वर्णन, समुद्र-वर्णन, ऋतु-वर्णन, युद्ध-वर्णन, आदि अनेक वर्णन प्रसंग प्राप्त है ।

ऋषि-वर्णन -

शिशुपालवध महाकाव्य में देवर्षि नारद का वर्णन प्राप्त होता है । श्रीकृष्ण नारद जी से कहते हैं कि आप का दर्शन त्रिकाल में शरीर धारियों की योग्यता को प्रकट करता है क्योंकि वर्तमान काल में पाप को नष्ट करता है । भविष्यत् काल में आने वाले शुभ का कारण है, भूतकाल में पहले किये गये पुण्यों

का परिणाम है ।[1]

मन्त्रणा-वर्णन -

माघकृत शिशुपालवध के द्वितीय सर्ग में माघ ने श्रीकृष्ण, बलराम तथा उद्धव के बीच चलने वाली मन्त्रणा का विस्तृत वर्णन किया है जो उनके राजनीति विषयक पाण्डित्य का सूचक है । सम्पूर्ण द्वितीय सर्ग में ही इस विषय का वर्णन है । इस मन्त्रणा दृश्य को कवि ने इस चातुर्य के साथ प्रस्तुत किया है कि मानों उन्होंने राज-मन्त्रणाओं में भाग लिया हो ।[2]

इन्द्रप्रस्थ-प्रस्थान-वर्णन -

युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ में सम्मिलित होने के लिए श्रीकृष्ण के द्वारिकापुरी से प्रस्थान करने से इन्द्रप्रस्थ पहुँचने तक का वर्णन दस सर्गों में किया गया है । तीसरे से बारहवें सर्ग तक कवि ने पर्वत-वर्णन, कामकेलि-वर्णन आदि प्रस्तुत किया है । तृतीय सर्ग में इन्द्रप्रस्थ के लिए कृष्ण की तैयारी का वर्णन है । वे विविध आभूषण पीताम्बर सुदर्शनचक्र, कौमोदकी गदा, नन्दक, खड्ग, शाड्ग धनुष एवं

1- हरत्यघं संप्रति हेतुरेष्यतः शुभस्य पूर्वाचरितैः कृतं शुभैः ।
शरीरभाजां भवदीयदर्शनं व्यनक्ति कालत्रितयेऽपि योग्यताम् ।।
-शिशुपालवध , 1/26

2- बृहत्त्रयी एक तुलनात्मक अध्ययन - डा० सुषमा कुलश्रेष्ठ, पृ० 296

पान्चजन्यशंख को धारण कर इन्द्रप्रस्थ के लिए अपनी अपरिमित चतुरंगिणी सेना सहित प्रस्थान करते हैं । नागरिक जन औत्सुक्य वश वीथियों में एकत्र होकर श्रीकृष्ण को देखते हैं । थोड़ी देर में समुद्र जल के पार हरे-हरे पत्तो वाली वनावली में पहुँचते हैं । इसी समुद्र तट पर उनकी सेना पड़ाव डालती है ।[1]

द्वारिकापुरी-वर्णन -

शिशुपालवध में द्वारिकापुरी का अतिसुन्दर वर्णन हुआ है । श्रीकृष्ण की आँखों ने उस पुरी के दृश्य को जैसा देखा वैसा ही वह वर्णित हुआ है । इस प्रकार श्रीकृष्ण ही पुरी के प्रति भावों के आश्रय है । वैसे श्रीकृष्ण की सेना के अन्य लोग, श्रोता या पाठक तथा स्वयं कवि भी आश्रय स्थानीय हैं । पुरी वर्णन में द्वारिकापुरी की बाडवाग्नि की ज्वाला के समान शोभित होने,[2] सहस्त्रों राजाओं की निवास-भूमि होने,[3] बाजारों में विविध रत्नों के बिकने,[4] वहाँ की अङ्गनाओं के देवाङ्गनाओं के समान होने,[5] चन्द्रकान्त-मणि-निर्मित फर्श,[6] प्रासादों

1- जगत्पवित्रैरपि तं न पादैः स्प्रष्टुं जगत्पूज्यमयुज्यतार्कः ।
यतो बृहत्पार्वणचन्द्रचारु तस्यातपत्रं बिभरांबभूवे ।।

शिशुपालवध, 3/2-2 ।

2- शिशुपालवध, 3/33,

3- शिशुपालवध, 3/34

4- शिशुपालवध, 3/38

5- शिशुपालवध, 3/42-43

6- शिशुपालवध, 3/44

की चिकनी दीवारों[1], स्वर्ण-निर्मित गृह-स्तम्भ[2], मरकत-मणि-निर्मित-देहलियों[3] छज्जों पर मयूरों के बैठने[4], कपोत-पालिकाओं पर पक्षी-समूह के चित्रित होने[5] तथा चूने से पुते भवनादि[6] का सुन्दर वर्णन हुआ है । वह द्वारिकापुरी ब्रह्मा के निरन्तर अभ्यास के द्वारा प्राप्त शिल्प-विज्ञान-सम्पत्ति के विस्तार की सीमा सदृश थी और दर्पण तल के समान निर्मल समुद्र-जल में स्वर्ग की छाया के समान दृष्टिगत होती थी[7]। उस नगरी की रत्न-सम्पन्नता को कवि ने सुन्दर उपमा द्वारा व्यक्त किया है। समुद्र, सुदर्शन-चक्रधारी श्रीकृष्ण के लिए दी गई द्वारिकापुरी के समीप में प्रेम से रत्न-पंक्तियों को उस प्रकार बाँध (बिखेर) देता था जिस प्रकार पिता जामाता के लिए दी गई गोद में रहने वाली कन्या के कण्ठ में प्रेम से रत्नावलि को बाँध (पहना) देता है[8]। वहाँ के भवनों की भीतरी भाग वैडूर्य-मणि-निर्मित था । जिस पर प्रतिबिम्बित चन्द्र-किरणें अन्धकार में प्रकाश कर

1- शिशुपालवध , 3/46
2- " 3/47
3- " 3/48
4- " 3/49
5- " 3/51
6- " 3/60
7- " 3/35
8- रथाङ्गभर्त्रेऽभिनवं वराय यस्याः पितेव प्रतिपादितायाः।
प्रेम्णोपकण्ठं मुहुरङ्कभाजो रत्नावलीरम्बुधिराबबन्ध ।।

शिशुपालवध, 3/36

देती थी - इस भाव को विभ्रमालंकार द्वारा प्रस्तुत किया गया है । जिस द्वारिकापुरी में घरों में कुलाङ्गनाएं रात-काल में लज्जा से दीप को बुझाकर खिड़कियों से आयी हुई, वैडूर्य-मणियों में प्रतिबिम्बित, बिलाव के नेत्रों के समान भयंकर चन्द्र-किरणों से भयभीत हो जाती थीं[1] उस पुरी के भवनों के भीतर विहार-वेदियों की खूँटियों के ऊपर स्थित कपोत-पालिकाओं में घोंसला बनाये हुए शुक-शारिका आदि पक्षी रतिकाल में अङ्गनाओं के सीत्कारादि को सुनकर मानो उनके शिष्य बन गये थे ।[2] वहाँ के लोग सदाचारी थे ।[3] ब्राह्मणादि चारों वर्ण मर्यादापूर्वक निवास करते थे ।[4] सब मिलाकर द्वारिकापुरी स्वर्ग से भी बढ़कर थी ।[5]

1- रतौ ह्रिया यत्र निशाम्य दीपाञ्जालागताभ्योऽधिगृहं गृहिण्यः ।
   बिभ्युर्बिडालेक्षणभीषणाभ्यो वैदूर्यकुड्येषु शशिद्युतिभ्यः ।।

   शिशुपालवध, 3/45

2- रतान्तरे यत्र गृहान्तरेषु वितर्दिनिर्यूहविटङ्कनीडः ।
   रुतानि शृण्वन् वयसां गणोऽन्तेवासित्वमाप स्फुटमङ्गनानाम् ।।

   शिशुपालवध, 3/55

3- शिशुपालवध , 3/57

4- " 3/63

5- " 3/59

समुद्र-वर्णन -

शिशुपालवध का समुद्र-वर्णन रूढ़ि का पालन मात्र प्रतीत होता है । श्रीकृष्ण भगवान् ने समुद्र को भूमि का आलिङ्गन किये हुए (पृथ्वी पर पड़े हुए), उच्च ध्वनि करते हुए (जोर से चिल्लाते हुए), चन्चल बाहु के समान विशाल तरङ्गों वाले, फेनयुक्त (मुख से फेन गिराते हुए), सरित्पति को अपस्मार निरगी का रोगी समझा ।[1] नदियों के समुद्र से ही बनने तथा उसी में प्रविष्ट होने पर कवि की उक्ति-मुनीश्वरों के द्वारा वेद से अभिप्राय को लेकर रची गई तथा वेदों में ही प्रविष्ट होती हुई स्मृतियों के समान, मेघों के द्वारा समुद्र से ही जल को लेकर (वृष्टि द्वारा) तैयार की गई तथा पुनः समुद्र में प्रवेश करती हुई नदियों को श्रीकृष्ण ने देखा ।[2] प्रलय-काल के बान्धव तथा उत्सङ्ग-रूपी शय्या पर सोने वाले, श्रीकृष्ण को आया हुआ देखकर समुद्र ने अतिशय हर्ष से तरङ्ग रूपी हाथों को फैलाकर मानो उनका प्रत्युद्गमन किया ।[3] समुद्र-वर्णन के प्रसंग में शीतल-मन्द सुगन्ध समीर का भी कवि ने सुन्दर वर्णन किया है । अपने साथ जल कणों को लिए हुए (शीतल) तथा इलायची की लता को कम्पित करने से गन्ध युक्त वायु तीर पर चलते हुए श्रीकृष्ण के स्वेद- लवों को प्रति-क्षण दूर करती थी ।[4] समुद्र

1- आश्लिष्टभूमिं रसितारमुच्चैर्लोलद्भुजाकारबृहत्तरङ्गम्।
फेनायमानं पतिमापगानामसावपस्मारिणमाशशङ्के ।। -शिशुपालवध, 3/62

2- उद्धृत्य मेघैस्तत एव तोयमर्थं मुनीन्द्रैरिव सम्प्रणीताः।
आलोकयामास हरिः पतन्तीर्नदीः स्मृतिर्वेदमिवाम्बुराशिम्।।
-शिशुपालवध, 3/75

3- तमागतं वीक्ष्य युगान्तबन्धुमुत्सङ्गशय्याशयमम्बुराशिः।
प्रत्युज्जगामेव गुरुप्रमोदप्रसारितोत्तुङ्गतरङ्गबाहुः।। -शिशुपालवध, 3/78

ने लवङ्ग-माला, नारियल तथा कच्ची सुपारी द्वारा श्रीकृष्ण के सैनिकों का आतिथ्य किया ।[1]

रैवतक पर्वत-वर्णन –

महाकवि माघ ने अपने महाकाव्य में रैवतक पर्वत का अतिसुन्दर वर्णन किया है । इसमें दारुक श्रीकृष्ण से पर्वत शोभा का वर्णन करता है । सहस्त्रों शिखरों से आकाश में तथा सहस्त्रों पादों से पृथ्वी में फैलकर स्थित तथा सूर्य और चन्द्र को दोनों नेत्रों के रूप में धारण करते हुए, अतएव सहस्त्रों मस्तकों से आकाश मेंतथा सहस्त्रों चरणों से पृथ्वी में व्याप्त होकर स्थित और सूर्य चन्द्र जिसके नेत्र हैं, ऐसे हिरण्यगर्भ के समान उस रैवतक पर्वत को श्रीकृष्ण ने देखा ।[2] रैवतक पर कमल-शोभा का वर्णन नवीन कल्पना के साथ करते हुए कवि की उक्ति-अपनी-अपनी स्त्री की प्रियोक्ति के अभिलाषुक तथा मद से कुछ चन्चल और आलसी पक्षियों के ऊपर वह पर्वत पिंजड़े बने हुए पत्तों वाले कमल रूपी छत्रों से छाया कर रहा था ।[3]

1- शिशुपालवध, 3/8।

2- सहस्त्रसंख्यैर्गगनं शिरोभिःपादैर्भुवं व्याप्य वितिष्ठमानम् ।
विलोचनस्थानगतोष्णरश्मिनिशाकरं साधु हिरण्यगर्भम् ।। शिशुपालवध, 4/4

3- छायां निजस्त्रीचटुलालसानां मदेन किंचिच्चटुलालसानाम् ।
कुर्वाणमुत्पिञ्जलजातपत्रैर्विहङ्गमानां जलजातपत्रैः ।।

शिशुपालवध, 4/6

इस पर्वत की ऊँचाई तथा सौन्दर्य रूपी गुण प्रगल्भ-वाक् कवियों को भी अनवधवक्ता नहीं बनाते ।[1] इसकी रत्नसम्पन्नता की अनेक बार चर्चा हुई है । यहाँ इन्द्रनील सूर्यकान्त तथा मरकतादि मणियाँ प्रचुर मात्रा में हैं । सुवर्णमयी भूमि को भी यहाँ देखा जा सकता है । यह कमलों का उत्पत्ति स्थान है ।[2] कवि ने जहाँ तक रैवतक की प्रशंसा में श्रीकृष्ण के मुख से उत्प्रेक्षा और यमकों से भरी कल्पना की उड़ानों की सृष्टि करायी है, वहाँ दारुक के हाथों चित्रकार के समान कुछ सुन्दर चित्र प्रस्तुत किये हैं । पर्वत को देखकर दारुक आश्चर्य-मुग्ध हो उठता है । वह सोचता है कि इतने विशाल पर्वत को देखकर भला ऐसा कौन व्यक्ति होगा, जिसे आश्चर्य न हो ।[3]

इनका प्रभात-वर्णन अपनी स्वभाविकता तथा सरलता के कारण संसार में अद्वितीय हैं । प्रातः काल के समय रैवतक पर्वत के वर्णन से उनकी अनुपम और मौलिक कल्पना का पता लगता है-

---

1- मुदे मुरारेरमरैः सुमेरोरानीय यस्योपचितस्य शृङ्गैः ।
भवन्ति नोद्दाममगिरां कवीनामुच्छ्रायसौन्दर्यगुणा मृषोद्याः ।।

शिशुपालवध, 4/10-11

2- अखिद्यतासन्नमुदग्रतापं रविं दधानेऽप्यरविन्दधाने ।
भृङ्गावलिर्यस्य तटे निपीतरसा नमत्तामरसा न मत्ता ।।

शिशुपालवध, 4/12, 16, 14,

3- शिशुपालवध में रैवतक वर्णन- डॉ॰प्रभुदयाल अग्निहोत्री, पृ॰852

प्रातःकाल एक ओर उदित होते हुए सूर्य तथा दूसरी ओर अस्त होते हुए चन्द्रमा की शोभा का जैसा सरस तथा हृदयस्पर्शी चित्र माघ ने प्रस्तुत किया है वैसा समग्र संस्कृत साहित्य में दुर्लभ है। जिसकी किरणरूपी रश्मियाँ ऊपर की ओर फैल रही है- इस प्रकार सूर्य के उदित होने तथा चन्द्रमा के अस्त होने के समय यह पर्वत दोनों ओर लटकते हुए दो घण्टाओं से युक्त हाथी की शोभा धारण कर रहा है।[1] माघ वर्णित इस शोभा का आनन्द आज भी किसी पर्वत पर खड़े होकर पूर्णिमा के दिन या पूर्णिमा के बाद की प्रतिपदा और द्वितीया के दिन लिया सकता है। इसी वर्णन पर कवि को "घण्टामाघ" की उपाधि भी मिली। इस पर्वत पर अनेक निर्झर हैं। एक ओर स्फटिक मणि के किनारे की प्रभा से श्वेत जल वाली तथा दूसरी ओर इन्द्र नील-मणि की प्रभा से मिश्रित होने से नीले जल वाली नदियाँ इस रैवतक पर्वत पर यमुना के जल से सुशोभित (मिश्रित) गङ्गा की शोभा को धारण करती है।[2] यहाँ अनेक महौषधियों तथा तमाल एवं ताल के वृक्षों के वनों में विकसित होने वाली लताएँ पायी भी जाती हैं।[3]

1- उदयति विततोर्ध्वरश्मिरज्जावहिमरुचौ हिमधाम्नि याति चास्तम्।
वहति गिरिरयं विलम्बिघण्टाद्वयपरिवारितवारणेन्द्रलीलाम्॥
शिशुपालवध, 4/20

2- एकत्र स्फटिकतटांशुभिन्ननीरा नीलाश्मद्युतिभिदुराम्भसोऽपरत्र।
कालिन्दीजलजनितश्रियः श्रयन्ते वैदग्धीमिह सरितः सुरापगायाः॥
शिशुपालवध, 4/26

3- आसादितस्य तमसा नियतेर्नियोगादाकाङ्क्षतः पुनरपक्रमणेन कालम्।
पत्युस्त्विषामिह महौषधयः कलत्रस्थानं परैरनभिभूतममूर्वहन्ति॥
शिशुपालवध, 4/34, 39

यहाँ चमरी गायें, हाथी, कम्बल-मृग, कस्तूरी-मृग, सर्प तथा अनेक पक्षी रहते हैं।[1] यहाँ अनेक बड़े-बड़े जलाशय हैं[2]। रैवतक पर्वत का वर्णन करते हुए कवि ने अपनी दार्शनिक बुद्धि का परिचय दिया है।[3] मरकत-मणि निर्मित भूमियों पर प्रतिबिम्बित सूर्य-रश्मियों का सुन्दर चित्र कवि ने प्रस्तुत किया है - रैवतक-पर्वत पर मरकत-मणि की भूमियों पर पेड़ों की डालियों के मध्य (छिद्र) से गिरने वाली तथा जिनमें महीन धूलि-कण चमक रहे हैं, ऐसी सूर्य-किरणें नीचे की ओर झुके हुए मयूर-कण्ठ की शोभा को धारण कर रही हैं।[4]

महाकवि माघ ने यमक अलंकार के सुन्दर प्रयोगों द्वारा रैवतक वर्णन में चार चाँद लगा दिया है- रैवतक पर्वत पर कलभों की क्रीड़ा तथा सिद्ध-गणों के अपनी अङ्गनाओं के समीप मधुर गायन का वर्णन करते हुए कवि कहते हैं कि यहाँ पर जलाशय में प्रविष्ट तीस वर्ष की अवस्था वाले हाथी के बच्चे खिले हुए कमलों से आनन्द पूर्वक रमण कर रहे हैं तथा मधुर एवं उद्दीपक स्वर वाले सिद्धगण अपनी स्त्रियों के समीप उच्च स्वर से गा रहे हैं।[5]

1- शिशुपालवध, 4/35, 60-61

2- शिशुपालवध, 4/59

3- शिशुपालवध, 4/55

4- शिशुपालवध, 4/56

5- शिशुपालवध, 4/33

इसी प्रकार का एक और उदाहरण द्रष्टव्य है- जिसमें कवि ने व्यक्त किया है कि इस रैवतक पर्वत पर श्रेष्ठतम, मन्दिराचल से आये हुए भ्रमरों के समान तथा रक्त-कमल के समान नेत्रों वाले भोगीजन स्त्रियों के साथ होकर अनुराग-युक्त नवीन सुरत का सेवन नहीं करते हैं, यह बात नहीं है।[1]

सेना-प्रयाण वर्णन -

रैवतक पर्वत के वर्णन के बाद कवि माघ ने सेना-प्रयाण का वर्णन किया है - शोभायमान पताका रूपी वनराजिवाला विशाल (ऊँचा) विस्तार से पृथ्वी के बहुत बड़े भाग को रोका हुआ अर्थात् प्रतिद्वन्द्वी दूसरे पर्वत के समान स्थित यह सेना समूह शोभायमान ध्वजा रूपी वनराजियों वाले गजराजों (गणराजों) से समानता ऊँचे-ऊँचे शिखरों की है। (रैवतक पर्वत से प्रस्थान किया।[2] पति के हाथ से नग्न की गयी, गुरूजनों को देखकर लज्जित हुई, कुलाङ्गनायें बड़े कपड़े से जिस प्रकार अपने को ढक लेती है, उसी प्रकार अङ्गनारूपिणी दिशाओं ने भी

1- सवधूकाः सुखिनोऽस्मिन्ननवरतममन्दरागतामरसदृशः।
नासेवन्ते रसवन्न नवरतममन्दरागतामरसदृशः।।

शिशुपालवध 4/5।

2- तं स द्विपेन्द्रतुलिताः तुलतुङ्गशृङ्गमभ्युल्लसत्कदलिकावनराजिमुच्चैः।
विस्तारस्द्धवसुधोऽन्वचलं चचाल लक्ष्मीं दधत्प्रतिगिरेरलघुर्बलौघः।।

शिशुपालवध, 5/2

सूर्य किरणों से आकाश प्रदेश के प्रकाशित होने पर श्रीकृष्ण भगवान के देखने से मानो लज्जित होती हुई आकाश में व्याप्त पिङ्गलवर्ण वाली सेनोत्थापित धूलि से अपने को ढक लिया ।[1] तात्पर्य यह है कि पहले सूर्य किरणों से आकाश प्रकाशित था किन्तु सेना के चलने से उससे उड़ी धूल दिशाओं में फैल गयी ।

आवर्त (पानी के घुमाव) वाले, राज्यादि श्रेष्ठ फल देने वाले शक्तियों से युक्त देवमणि (गर्दन में स्थित बालों के घुमाव) वाले, भरे हुए पार्श्व भाग वाले, अत्यन्त शोभते हुए तीव्र वेग से आते हुए घोड़ों ने समुद्रों के समान पृथ्वी को शीघ्र आच्छादित कर लिया ।[2] हथिनी से डरा हुआ गधा तब तक उछलता रहा जब तक सरके हुए आसन (पीठ पर कसे गये जीन या कम्बल आदि) से वस्त्रहीन नितम्बों वाली अन्तःपुर की दासी वहीं गिर पड़ी ।[3]

1- भास्वत्करव्यतिकरोल्लसिताम्बरान्ताः सापत्रपा इव महाजनदर्शनेन ।
संविव्युरम्बरविकाशि चमूसमुत्थं पृथ्वीरजः करभकण्ठकडारमाशाः ।।
-शिशुपालवध, 5/3

2- आवर्तिनः शुभफलप्रदशुक्तियुक्ताः सम्पन्नदेवमणयो भृतरन्ध्रभागाः ।
अश्वाः प्रयुर्वसुमतीमतिरोचमानास्तूर्णं पयोधय इवोर्मिभिरापतन्तः ।।
शिशुपालवध, 5/4

3- त्रस्तः समस्तजनहासकरः करेणोस्तावत्खरः प्रखरमुल्ललयाञ्चकार ।
यावच्चलासनविलोलनितम्बबिम्बविस्रस्तवस्त्रमवरोधवधूः पपात ।।
शिशुपालवध, 5/7

भूमि पर समतल बिछायी गयी बड़ी-बड़ी पत्थर की ईटों वाले, घोड़ों के खुरों के आघात से निकलती हुई चिनगारियों वाले, रैवतक पर्वत के समीपवर्ती मार्गों में श्रेष्ठ जातीय घोड़े मानों दुग्गी बजाते हुए चलने लगे।[1] इस प्रकार महाकवि माघ ने गज, अश्व, बैल, ऊँट आदि का भी वर्णन बड़े विस्तार और अच्छे ढंग से किया है।

पिङ्गल वर्ण वाले गरूड़ के पंख के अवचूड़ों को धारण करते हुए, चोंच के अगले भाग से काटे गये, सर्परूपी पताकावाले तथा गरूड़ाधिष्ठित अर्थात् गरूड़ जिसके ऊपर स्थित हैं। ऐसी पताका के दण्ड से अर्थात् दण्ड के पहचान से अनुमित श्रीकृष्ण भगवान् के निवास स्थान के समीपवर्ती अपने-अपने शिविरों को गये।[2]

ऋतु वर्णन या प्रकृति-वर्णन -

प्रकृति ईश्वरीय विभूति है। उसकी सुषमा नवनवोन्मेषशालिनी है। मानवीय कल्पना प्रकृति के बीच विकसित होती है। साथ ही मानवीय अनुभूतियों के लिए प्रकृति एक प्रेरक शक्ति के रूप में काम करती हैं। महाकवि माघ ने बाह्य प्रकृति तथा अन्तः प्रकृति का बड़ा ही मार्मिक चित्रण किया है। शिशुपालवध के षष्ठ सर्ग में छः ऋतुओं का वर्णन पहले विस्तार से तथा अन्त में संक्षेप में किया है।

1- शिशुपालवध, 5/9

2- बिभ्राणया वहलतार्क्ष्यपक्ष्मपिङ्गपिच्छावचूडमनुमाधवधाम जग्मुः।
चञ्च्वग्रदष्टचटुलाहिपताकया न्ये स्वावासभागमुरगारिकेतुयष्ट्या ।।

शिशुपालवध, 5/13

यह वर्णन उद्दीपन रूप में हुआ है । विभिन्न ऋतुओं में भिन्न पुष्पों के विकसित होने आदि के वर्णन के साथ विभिन्न नायक नायिकाओं की तरह-तरह की क्रीड़ाओं का भी वर्णन हुआ है । किरातार्जुनीय में शरद ऋतु से और शिशुपालवध में वसन्त ऋतु से इस वर्णन का आरम्भ किया गया है । किरात में भी सब ऋतुएं एक साथ प्रादुर्भूत हुईं । शिशुपालवध में सब ऋतुएं श्रीकृष्ण की सेवा के लिए अपने चिह्न प्रकट कर रही थीं ।[1] सभी ऋतुओं के एक साथ प्रादुर्भूत होने का बड़ा सुन्दर वर्णन भारवि ने किया है ।[2] कवि की अन्तरात्मा बाह्य-प्रकृति के चित्रण में मानों रम-सी गयी है जिसे कवि ने व्यक्त किया है । जैसे कोई बालक खेल रहा है, स्नेहशील माँ उसे पुकार रही है और वह हंसते हुए अपने कोमल हाथ फैलाकर उसकी गोद में जा गिरता है उसी भाँति यह बाल सूर्य उदयाचल के शिखर-रूपी आँगन में थिरकता हुआ खिले कमल मुखों से हंसती हुई पद्मिनियों को देखते-देखते अपने कोमल करों किरणों को फैलाकर पक्षियों के कलरव सदृश आवाज से पुकारती हुई अपनी आकाश रूपी माता की गोद में लीलापूर्वक उचक रहा है ।[3]

1- अथ रिरंसुममुं युगपद्गिरौ कृतयथास्वतरुप्रसवश्रिया ।
ऋतुगणेन निषेवितुमादधे भुवि पदं विपदन्तकृतं सताम् ।।
-शिशुपालवध, 6/1

2- बृहत्त्रयी एक तुलनात्मक अध्ययन- डॉ0सुषमाकुलश्रेष्ठ, पृ0302

3- उदयशिखरिशृङ्गप्राङ्गणेष्वेष रिङ्गन्
सकमलमुखहासं वीक्षितः पद्मिनीभिः ।
विततमृदुकराग्रः शब्दयन्त्या वयोभिः
परिपतति दिवोऽङ्के हेलया बालसूर्यः ।।
शिशुपालवध, 11/47

आकाश में फैले काले-काले मेघों के नीचे कर्पूर पाण्डुर महर्षि नारद का यह रूप चित्रण है - नवीन विस्तृत काले-काले बादलों के नीचे वे नारद जी कर्पूर के चूर्ण के ढेर की भाँति अत्यन्त गौरवर्ण के दिखायी पड़ रहे थे। उस समय क्षणभर के लिए उनकी शोभा ताण्डव नृत्य के समय हाथी का काला चमड़ा पीठ पर ओढ़े हुए एवं शरीर पर श्वेत भस्म लपेटे हुए शंकर के समान दिखायी पड़ रही थी।[1]

तृतीय सर्ग में श्लोक संख्या 4 से 11 तक श्रीकृष्ण का रूप चित्र वर्णित है जिसमें वह मुकुटधारी है। उनकी श्याम काया पर मोतियों की माला है तथा पैरों पर लटकती लंबी माला है। वह यज्ञोपवीत तथा पीताम्बर धारण किये हुए है कानों में कुण्डल तथा मस्तक पर मयूर पंख तथा भुजाओं पर केयूर धारण किये हुए हैं।[2] संवेदनात्मक रूप में भी महाकवि ने मानव सापेक्ष प्रकृति का चित्रण किया है। रैवतक से प्रवाहित होने वाली नदियों के वर्णन में एक प्रेमी हृदय की अभिव्यक्ति दर्शनीय है। पर्वतीय नदियाँ कल-कल शब्द करती हुई प्रवाहित हो रही है, ये निर्भय होकर उसी की गोद में लोट-पोट होती रहती हैं। अतः वे रैवतक की पुत्रियाँ हैं। आज वे अपने पति समुद्र से मिलने जा रही हैं।

1- नवानधोऽधो बृहतः पयोधरान् समूढकर्पूरपरागपाण्डुरम् ।
क्षणं क्षणोत्क्षिप्तगजेन्द्रकृत्तिना स्फुटोपमं भूतिसितेन शम्भुना ।।

शिशुपालवध, 1/4

2- चित्राभिरस्योपरि मौलिभाजां भाभिर्मणीनामनणीयसीभिः ।
अनेक धातु च्छुरिताश्मराशेर्गोवर्धनस्याकृतिरन्वकारि ।।

शिशुपालवध, 3/4

इस कारण रैवतक चिड़ियों के करुण स्वर से रोता हुआ मानो अपने वात्सल्य को प्रकट कर रहा है । कन्या के पतिगृह आने के समय पिता का हृदय आर्द्र हो ही जाता है । चाहे वह कितना भी कठोर क्यों न हो । "पीड्यन्ते गृहिणः नु तनया विश्लेष दुःखैर्नवैः" । रैवतक भी पक्षियों के करुण स्वर से कन्याओं के गमन के अवसर पर रुदन कर रहा है ।[1] चतुर्थ सर्ग में प्रकृति की नैसर्गिक छटा के चित्र एक स्थान पर नहीं अनेक स्थानों पर हैं । कहीं पर चित्रात्मक प्रणाली का आश्रय लेकर कवि प्रकृति के बाह्य रूप का विस्तृत वर्णन करता है कहीं संवेदनात्मक प्रणाली से पाठक को भावों में विभोर कर देता है । अलंकारात्मक प्रणाली का आश्रय कवि ने सभी सर्गों में लिया है । कल्पना और अलंकारों के मध्य वह प्रकृति के सहज सौन्दर्य को कभी खण्डित नहीं होने देते ।

ऋतु-वर्णन भी प्रकृति-वर्णन का एक रूप है । चतुर्थ सर्ग के रैवतक वर्णन में छठे सर्ग में छहों ऋतुओं का सविस्तार वर्णन हुआ है । मनुष्य सौन्दर्योपासक प्राणी है । कला-सौन्दर्य की अनुभूति ही नहीं करती अपितु नवीन सौन्दर्य की सृष्टि भी करती है । कविता सौन्दर्य का मूर्तिमान रूप है एक अर्थ में कविता विश्वव्यापिनी सौन्दर्योपासना है । महाकवि माघ के अनुसार पर्वतों पर वर्षा का आगमन कुछ पहले ही हो जाता है इस बात को कितने सुन्दर ढंग से प्रस्तुत किया है - कोई चंचल नयना एवं उन्नतस्तना नायिका प्रियतम की प्रतीक्षा करने में

1- अपशङ्कमङ्कपरिवर्तनोचिताश्चलिताः पुरः पतिमुपैतुमात्मजाः ।
अनुरोदितीव करुणेन पत्त्रिणां विरुतेन वत्सलतयैष निम्नगाः ।।

-शिशुपालवध, 4/47

समर्थ न होकर निर्दिष्ट समय से पूर्व ही अभिसरण करती है । उसी भाँति चमकती हुई बिजली और उमड़े हुए विशालकाय मेघों से युक्त वर्षा ऋतु भी अपने प्रियतम रैवतक पर्वत के समीप समय के कुछ ही पूर्व आ पहुँची है ।[1]

इस प्रकार महाकवि माघ का अपने महाकाव्य में समस्त प्रकृति वर्णन सुन्दर एवं अत्यन्त सजीव दृष्टिगत होता है ।

बसन्त ऋतु -

महाकवि माघ सर्वप्रथम बसन्त ऋतु का वर्णन करते हैं । श्रीकृष्ण भगवान् ने पहले पल्लवयुक्त पलाशवन वाले विकसित तथा मकरन्द से परिपूर्ण कमलों वाले, कोमल-(गर्मी) से कुछ म्लान पुष्पों वाले तथा पुष्प समूहों से सुरभित बसन्त ऋतु को देखा ।[2]

1- स्फुरदधीरतडिन्नयना मुहुः प्रियमिवागलितोरुपयोधरा ।
जलधरावलिरप्रतिपालितस्वसमया समयाज्जगतीधरम् ।।

शिशुपालवध, 6/25

2- नवपलाशपलाशवनं पुरः स्फुटपरागपरागतपङ्कजम् ।
मृदुलतान्तलतान्तमलोकयत्स सुरभिं सुरभिं सुमनोभरैः ।।

शिशुपालवध, 6/2

इस पद्य में बसन्त ऋतु में विकसित होने वाले चम्पा तथा अशोक के पुष्प को क्रमशः मदनाग्नि तथा विदीर्ण विरहि-हृदय को मांस माना गया है। इस प्रकार अग्नि रूप चम्पक पुष्प के मध्यगत मांस रूप अशोक पुष्प का कपिश वर्ण होना उचित ही है।[1] बसन्त ऋतु में मृग-नयनियों के ललाट में उत्पन्न श्रम-कणों को सुखाते हुए उनके केश-कलाप को हिलाने वाला, कमलों से युक्त जलाशयों की तरंग श्रेणी को चपल करता हुआ मलय-पवन बहने लगा।[2] आम्रवन के पराग मानो कामाग्नि के मुर्मुर-चूर्ण बन गये और सब ओर से ऊपर गिरे हुए वे पथिकों को संतप्त करने लगे।[3] पूरे ऋतु वर्णन में भ्रमर पंक्ति का अनेक बार उल्लेख हुआ है।[4] मधुर-भाषिणी कोकिला के कूजित को सुनकर मनस्विनियों ने अपना कोप छोड़ दिया।[5]

1- स्फुटमिवोज्ज्वलकाञ्चनकान्तिभिर्युतमशोकमशोभत चम्पकैः ।
विरहिणां हृदयस्य भिदाभृतः कपिशितं पिशितं मदनाग्निना ।।

शिशुपालवध, 6/5

2- विलुलितालकसंहतिरामृशन्मृगदृशां श्रमवारि ललाटजम् ।
तनुतरङ्गततिं सरसां दलत्कुवलयं वलयन्मरुदाववौ ।।

शिशुपालवध, 6/3

3- शिशुपालवध, 6/6

4- शिशुपालवध, 6/7,9,20,

5- शिशुपालवध, 6/8

ग्रीष्म ऋतु -

जिस ऋतु में शिरीष पुष्प के पराग की कान्ति सूर्य के घोड़ों के हरित वर्ण वाले रोमों की समानता करती है । नवमाल्लिका के सुगन्ध को स्थायी करता हुआ वह ग्रीष्म ऋतु आ गया ।[1] कोमल-पाटल कलिकाओं को विकसित करने वाली तथा अपनी अङ्गनाओं के निःश्वास के सदृश वायु के बहते रहने पर विलासी लोग मद चन्चल हो उठे ।[2] उत्तम जघन वाली अङ्गनाओं ने प्रियतम के वक्षःस्थल पर तत्काल स्नान करने से पानी की शीतलता से युक्त अर्थात् ठण्डे-ठण्डे अपने स्तनों को रख दिया और हाथ से प्रतिक्षण पीछे से चन्दन के लेप को भी लगाया ।[3]

वर्षा ऋतु -

श्रावणमास में आकाश में गज-समूह के समान नीलवर्ण तथा उन्नत नये मेघों को देखकर किस स्त्री ने एक रस वाले अर्थात् दूसरे रसों का त्यागकर केवल श्रृंगार रस वाले किस प्रियतम {सम्भोगार्थ} नहीं चाहा ? तथा किस वल्लभ

1- रवितुरङ्गतनूरुहतुल्यतां दधति यत्र शिरीषरजोरुचः ।
उपययौ विदधन्नवमल्लिकाःशुचिरसौ चिरसौरभसम्पदः ।।

शिशुपालवध, 6/22

2- दलितकोमलपाटलकुड्मले निजवधूश्वसितानुविधायिनी ।
मरुति वाति विलासिभिरुन्मदभ्रमदलौ मदलौल्यमुपाददे ।।

शिशुपालवध, 6/23

3- निदधिरे दयितोरसि तत्क्षणस्नपनवारितुषारभृतः स्तनाः ।
सरसचन्दनरेणुरनुक्षणं विचकरे च करेण वरोरुभिः ।।

शिशुपालवध, 6/24

के प्रति अभिसार नहीं किया ? अर्थात् सभी अङ्गनाओं ने प्रियतम को चाहा तथा उनके प्रति अभिसार भी किया ।[1] नये कदम्ब के पुष्प के पराग से आकाश को अरुण किये हुए कदली पुष्पों की सुगन्धि से युक्त वन पवन ने रोगियों के मन में स्त्री-विषयक नूतन राग उत्पन्न किया ।[2] मेघों ने थोड़ा ही जल बरसाकर रैवतक को यादव-नृपतियों तथा उनकी रमणियों के आनन्दपूर्वक विहार के योग्य बना दिया ।[3] वर्षा ऋतु में मयूर नृत्य करने लगे ।[4] इस ऋतु में केतकी, कुटज तथा मालती-पुष्प के विकसित होने का सुन्दर वर्णन किया गया है ।[5]

1- गजकदम्बकमेचकमुच्चकैर्नभसि वीक्ष्य नवाम्बुदमम्बरे ।
अभिससार न वल्लभमङ्गना न चकमे न कमेकरसं रहः ।।

शिशुपालवध, 6/26

2- नवकदम्बरजोरुणिताम्बरैरधिपुरन्ध्रि शिलीन्ध्रसुगन्धिभिः ।
मनसि रागवतामनुरागिता नवनवा वनवायुभिरादधे ।।

शिशुपालवध, 6/32

3- शमिततापमपोढमहीरजः प्रथमबिन्दुभिरम्बुमुचोऽम्भसाम् ।
प्रविरलैरचलाङ्गनमङ्गना जनसुखं न सुगन्धि न चक्रिरे ।।

शिशुपालवध, 6/33

4- शिशुपालवध, 6/31

5- शिशुपालवध, 6/34,36

शरद ऋतु -

शरद ऋतु में हंसों के शब्द ने मधुरता को तथा मयूरों के शब्द कर्कशता को प्राप्त हुये । यह परिवर्तन समय के कारण ही हुआ । हंस ध्वनि से पराजित ध्वनि वाले, मयूरों के पंख मानों ईर्ष्या या क्रोध से झड़ गये । सर्वत्र बाण, जपा, तथा सप्तवर्ण पुष्प विकसित होने लगे ।[1] "कटे हुए सुवर्ण के समान पीले फूलों की पंखुड़ियों वाले परागसहित केसरों से मनोहर और पति से तिरस्कृत {अतएव} मानवती स्त्रियों के क्रोध को दूर करने वाले विजयसार के फूलों को प्राप्त किया । {अर्थात् अपने नाम के अनुसार अर्थ होने से चरितार्थता को प्राप्त किया"।[2]

आश्विनमास में गोप-वधुएं धान की रखवाली कर रही थीं और मृग उनके संगीत-श्रवण में व्याप्त थे - इस भाव पर कवि सरल कल्पना- "गोप-वधुओं ने, उच्च स्वर से गाए गये {उनके} मधुर-गान को सुनते हुए {अतएव} धान खाने की इच्छा नहीं करने वाले मृगों को नहीं भगाया ।"[3] मृगों की संगीत-प्रियता

1- समय एव करोति बलाबलं प्रणिगदन्त इतीव शरीरिणाम् ।
शरदि हंसरवाः परुषीकृतस्वरमयूरमयूरमणीयताम् ।।
शिशुपालवध, 6/44

2- कनकभङ्गपिशङ्गदलैर्दधे सरजसारुणकेशरचारुभिः ।
प्रियविमानितमानवतीरुषां निरसनैरसनैरवृथार्थता ।।
शिशुपालवध, 6/47

3- विगतसस्यजिघत्समघट्टयत्कलमगोपवधूर्नमृगव्रजम् ।
श्रुततदीरितकोमलगीतकध्वनिमिषेऽनिमिषेक्षणमग्रतः ।।
शिशुपालवध, 6/49

लोकप्रसिद्ध है । संस्कृत कवियों ने छः ऋतुओं का वर्णन किया है । फिर भी वर्षा, शरद, बसन्त ऋतु के वर्णन में कवि वाणी अधिक निमग्न हुई है । शिशिर, हेमन्त निदाघ के वर्णन यदि क्रमानुसार आ भी गये हैं तो उन्हें यों ही वर्णित किया है । शिशिर एवं हेमन्त ऋतुएं ठहरीं जगत् को जड़ीभूत कर देने वाली हैं फिर भी वे कल्पनाओं को जड़ नहीं बना सकीं ।

महाकवि माघ ने हेमन्त, शिशिर, निदाघ, इन ऋतुओं का संक्षेप में वर्णन किया है ।

हेमन्त ऋतु -

हस्ति-परिमाण वाली नदियों को भी हिममयी करती हुई हेमन्त की वायु ने पथिकों की स्त्रियों के नेत्रों के अतिशय-संताप-कारक जल प्रवाह को बढ़ा दिया ।[1] कामजन्य स्वाभाविक अनुराग को उत्पन्न करने वाले [अतएव] सहज उपकारी हेमन्त ऋतु में भी अत्यन्त स्वेद युक्त युवतियां विलासियों के साथ रमण करती थीं ।[2]

1- गजपतिद्वयसीरपि हैमनस्तुहिनयन् सरितः पृषतां पतिः ।
सलिलसन्ततिमध्वगयोषितामतनुतातनुतापकृतं दृशाम् ।।
शिशुपालवध, 6/55

2- हिमकृतावपि ताः स्म भृशास्विदो युवतयः सुतरामुपकारिणि ।
प्रकटयत्यनुरागमकृत्रिमं स्मरमयं रमयन्ति विलासिनः ।।
शिशुपालवध, 6/61

शिशिर ऋतु -

वनप्रान्त में प्रियङ्गुलताओं को विकसित करता हुआ, मद-कारक भ्रमरियों की ध्वनि रूप हुंकार से युक्त शिशिर ऋतु का पवन विरहिणी युवतियों को काम पीड़ित करने लगा ।[1] लवङ्गों के पुष्प-दलों पर बैठने वाले ये भ्रमर पराग से अधिक मलिन हो गये मानो इस प्रकार सामने विकसित होते हुए अपने पुष्पों से कुन्दलता ने भ्रमरों का उपहास किया ।[2] इस प्रकार महाकवि माघ ने छः ऋतुओं का वर्णन किया है ।

प्रभातवर्णन -

सुबह के चार बज चुके हैं । अतः अपने पहरे के घण्टों को बिताकर शयन करने के इच्छुक किसी पहरे दार ने जब अपने जोड़ीदार को उठो, ऐसा उच्च स्वर से बार-बार कहकर जगाया किन्तु नींद से अस्पष्ट अक्षरों को एवं अर्थरहित वचन को कहता हुआ भी वह मनुष्य (दूसरा पहरेदार) भीतर से (अच्छी तरह) नहीं जगा ।[3]

1- कुसुमयन् फलिनीरलिनीरवैर्मदविकासिभिराहितहुंकृतिः ।
उपवनं निरभर्त्सयतप्रियावियुवतीर्युवतीः शिशिरानिलः ।।
शिशुपालवध, 6/62

2- अधिलवङ्गममी रजसाधिकं मलिनिताः सुमनोदलतालिनः ।
स्फुटमिति प्रसवेन पुरोऽहसत्सपदि कुन्दलता दलतालिनः ।।
शिशुपालवध, 6/66

3- प्रहरकपमनीय स्वं निदिद्रासतोच्चैः प्रतिपदमुपहूतः केनचिज्जागृहीति ।
मुहुरविशदवर्णा निद्रयाशून्य शून्यां दददपि गिरमन्तर्बुध्यते नो मनुष्यः ।।
शिशुपालवध, 11/4

स्वाभाविकता एवं सरसता के कारण इन प्रातःकालीन रंगीन दृश्यों में अपूर्व सौन्दर्य है - रात थोड़ी रह गयी है। प्रातः काल होने में कुछ क्षण शेष हैं। सप्तर्षि आकाश में पड़े हैं, उनका पिछला सिरा नीचे की ओर झुका है और अगला ऊपर की ओर। अधोभाग की ओर छोटा सा ध्रुव तारा कुछ-कुछ चमक रहा है। सप्त-र्षियों का आकार गाड़ी के सदृश है - ऐसी गाड़ी के सदृश जिसका जुआ ऊपर उठ गया हो। इसी से उनके (सप्तर्षि) और ध्रुवतारे के दृश्य को देखकर श्रीकृष्ण की एक घटना स्मृति पटल पर चित्रित हो जाती है। बाल्यावस्थामें श्रीकृष्ण को मारने के लिए एक बार गाड़ी का रूप बनाकर शकटासुर नाम का एक दानव उनके निकट आया था। श्रीकृष्ण ने पालने में पड़े हुए खेलते-खेलते उसको लात मार दी। चरण कमल के आघात से उसका अग्रभाग ऊपर को उठ गया और पिछला भाग नीचे की ओर झुक गया। श्रीकृष्ण उसके तले आ गये। यही स्थिति इस समय सप्तर्षियों की है।[1]

प्रातःकाल होने पर मन्दिरों तथा राजप्रासादों में वाद्य-विशेष मधुर-मधुर ध्वनि से बज रहे थे। उनकी सुरीली ध्वनि इस बात का संकेत करती थी कि प्रातःकाल का समय हो गया है, भगवान् उठ गये हैं, नगरवासियों को भी

1- स्फुटतरमुपरिष्टादल्पमूर्तेर्ध्रुवस्य,

स्फुरति सुरमुनीनां मण्डलं व्यस्तमेतत्।

शकटमिव-महीयः शैशवे शार्ङ्गपाणे-

श्चपलचरणकाब्जप्रेरणोत्तुङ्गताग्रम्॥

शिशुपालवध, 11/3

ब्राह्म मुहूर्त में उठ जाना चाहिये । संगीत के माध्यम से यह वर्णन मधुर है ।[1] श्रीकृष्ण भगवान् को जगाने के लिए मधुर कण्ठ वाले बन्दीजन उच्चस्वर से निशा के अवसान तथा ऊषा के आगमन का वर्णन करते हुए गाने लगे - "रतिश्रान्त कामीजन अभी अच्छी तरह से सो भी नहीं पाये थे कि रात्रि के अवसान का सूचक मृदङ्ग उच्च स्वर से बजने लगा"।[2] यह रजनीदिवस की समाप्ति पर चन्द्रमा रूपी अंगराग से व्याप्त अपने वस्त्र को सँभालती हुई आकाश की ओर शीघ्रता के साथ चली जा रही है । शिशुपालवध के 11 वें सर्ग के 15 वें श्लोक में प्रातःकाल का अपूर्व दृश्य प्रस्तुत है - कमल के शोभित होने पर कुमुद शोभित नहीं होते तथा कुमुद के शोभित होने पर कमल शोभित नहीं होते । इस प्रकार दोनों में समानता नहीं रहती, किन्तु प्रातःकाल के समय दोनों में तुल्यता देखी जाती है । कुमुद बन्द होने को हैं उधर कमल खिलने को हैं पर खिले नहीं हैं, भ्रमर दोनों पर मंडरा रहे हैं, और

1- श्रुतिसमधिकमुच्चैः पञ्चमं पीडयन्तः सततमृषभहीनं भिन्नकीकृत्य षड्जम् ।
प्रणिजगदुरकाकुश्रावकस्निग्धकण्ठाः परिणतिमिति रात्रेर्मागधा माधवाय ।।

शिशुपालवध, 11/1

2- रतिरभसविलासाभ्याससतान्तं न याव-
न्नयनयुगममीलत्तावदेवाहतोऽसौ ।
रजनिविरतिशंसी कामिनीनां भविष्य-
द्विरहविहितनिद्राभङ्गमुच्चैर्मृदङ्गः ।।

शिशुपालवध, 11/2

गुंजित ध्वनि के बहाने दोनों ही की प्रशंसा के गीत से गा रहे हैं । कमल कुमुद दोनों समता को प्राप्त हो रहे हैं ।[1] जो अभिसारिका रात्रि के समय अपने प्रियतम के साथ अभिसरण करती है वह प्रातःकाल होने से पूर्व ही अपने अंगराग से व्याप्त सुगन्धित वस्त्रों को संभालती हुयी शीघ्र ही अपने घर की ओर जा रही है ।[2] कवि ने उषा को रजनी की सद्यः प्रसूता सुन्दरी कन्या के रूप में चित्रित किया है - "लाल कमलों की पंक्तियां मानो उस सुन्दरी की हथेलियां तथा उंगलियां हैं । भ्रमर पंक्ति उसके नेत्रों का काजल है, नीलकमल इसकी आंखे हैं और पक्षियों का कलरव मानो उसकी वाणी है । इस प्रकार उषा रात्रि की सद्योजात कन्या के समान उसका अनुगमन कर रही है"।[3]

1- दधदसकलमेकखण्डितामानमद्भिः श्रियमपरमपूर्णामुच्छ्वसद्भिः पलाशैः ।
कलरवमुपगीते षट्पदौघेन धत्तः कुमुदकमलषण्डे तुल्यरूपामवस्थाम् ।।

शिशुपालवध, 11/15

2- शिशिरकिरणकान्तं वासरान्तेऽभिसार्य श्वसनसुरभिगन्धि साम्प्रतं सत्वरेव ।
व्रजति रजनिरेषा तन्मयूखाङ्गरागैः परिमलितमनिन्द्यैरम्बरान्तं वहन्ती ।।

शिशुपालवध, 11/21

3- अरुणजलजराजीमुग्धहस्ताग्रपादा बहुलमधुपमालाकज्जलेन्दीवराक्षी ।
अनुपतति विरावैः पत्त्रिणां व्याहरन्ती रजनिमचिरजाता पूर्वसन्ध्या सुतेव ।।

शिशुपालवध, 11/40

प्रातःकाल की सर्वाधिक सुन्दर कवि माघ की उक्ति-"कुमुदवन श्रीहीन हो रहा है, कमलवन श्री सम्पन्न हो रहा है, उलूक का मन खिन्न है और चक्रवाक मिथुन आनन्द विभोर है । सूर्य उदय को प्राप्त हो रहा है और चन्द्रमा अस्त को । दुष्ट दैव की चेष्टाओं का परिणाम विचित्र होता है, यह आश्चर्य है ।"[1] प्रातः काल के वर्णन प्रसंग में किसी खण्डिता नायिका का अपने अपराधी पति को उपालम्भित करने का दृश्य-" तुम मेरी प्रिया हो" यह जो तुमने कहा था, वह बिल्कुल सत्य था, क्यों प्रियजन (मेरी सपत्नी) के द्वारा धारण किये गये वस्त्र को पहनकर तुम मेरे भवन में आये हो, यह ठीक ही है, क्यों कि कामियों के मण्डन की शोभा प्रिया के दर्शन-मात्र से सफल हो जाती है ।[2] "सूर्य द्वारा कमलो के विकसित किये जाने पर कवि की नूतन व सरस कल्पना- "दिन के आरम्भ (प्रातःकाल) में रागवान् (अरुणवर्ण वाला) यह सूर्य चन्द्रमा को कराग्र (किरणो के अग्रभाग, पक्षा० हथेली) से निर्दयतापूर्वक शीघ्र ही निचोड़कर मेघ से गिरे हुए नवीन (ताजे) जल के समान श्वेत सौन्दर्य रस को श्वेत-कमलों के भीतर मानों अच्छी तरह छोड़ सा

1- कुमुदवनमपश्रि श्रीमदम्भोजखण्डं

त्यजति मुदमुलूकः प्रीतिमांश्चक्रवाकः ।

उदयमहिमरश्मिर्याति शीतांशुरस्तं

हतविधिलसितानां ही विचित्रो विपाकः ।।

शिशुपालवध, 11/64

2- तदवितथमवादीर्यन्मम त्वं प्रियेति प्रियजनपरिभुक्तं यद्दुकूलं दधानः ।

मदधिवसतिमागाः कामिनां मण्डनश्रीर्व्रजति हि सफलत्वं वल्लभालोकनेन।।

शिशुपालवध, 11/33

रहा है ।[1] चारों ओर फैली मोटी रस्सियों के समान, किरणों के द्वारा खींचा जाता हुआ, बड़े भारी कलश के तुल्य यह सूर्य दिशा रूपी नारियों के द्वारा समुद्र के जल से बाहर निकाला जा रहा है । जिस भाँति कलश रस्सियों की सहायता से निकाला जाता है । उसी भाँति पूर्व समुद्र में डूबे हुए सूर्य को दिशायें किरण रूपी रस्सियों से खींचकर निकाल रही है । जिस प्रकार घड़े को जल से निकालते समय कल-कल ध्वनि होती है उसी भाँति प्रातःकाल होते ही चिड़ियां चहचहाने लगती हैं ।[2] सूर्य बिम्ब मानों एक घड़ा है, दिग्वधुएं ओर लगाकर समुद्र के भीतर से उसे खींच रही हैं । सूर्य की किरणों मानों लम्बी-लम्बी मोटी रस्सियां है । खींचते समय पक्षियों के कलरव के बहाने, वे यह कहकर शोर मचा रही हैं कि खींच लिया है । "आकाश में सूर्य के दिखायी देते ही नदियों ने विलक्षण रूप धारण कर लिया है । दोनों तटों के मध्य से प्रवाहित होते हुए जल पर सूर्य की लाल-लाल प्रातःकालीन धूप पड़ने से जल मदिरा के रंग सदृश हो गया, अतएव ऐसा प्रतीत होने लगा जैसे सूर्य ने अपने किरण बाणों से अन्धकार रूपी हाथियों की घटा को सर्वत्र मार गिराया हो उन्हीं के घावों से निकला हुआ रुधिर बह-बहकर नदियों में आ गया हो और उसी से जल लाल हो गया हो ।"[3] यहाँ कवि ने एक ओर

1- अदयमिव कराग्रैरेष निष्पीड्यसन्ध्याधरमहरादौ रागवान्नुष्णरश्मिः ।
अवकिरति नितान्तं कान्तिनिर्यासमच्छं स्फुटनवजलपाण्डुपुण्डरीकोदरेषु ।।
शिशुपालवध, 11/62

2- विततपृथुवरत्रातुल्यरूपैर्मयूखैः कलश इव गरीयान्दिग्भिराकृष्यमाणः ।
कृतचपलविहंगालापकोलाहलाभिर्जलनिधिजलमध्यादेष उत्तार्यतेऽर्कः ।।
शिशुपालवध, 11/44

3- परिणतमदिराभं भास्करेणांशुबाणैस्तिमिरकरिघटायाः सर्वदिक्षु क्षतायाः
रुधिरमिव वहन्त्यो भान्ति बालातपेनच्छुरितमुभयरोधोवारितं वारि नद्यः ।
शिशुपालवध, 11/49

तो मदिरा का यथार्थ चित्रण कर दिया, दूसरी ओर रणभूमि का भी एक दृश्य उपस्थित कर दिया ।

शिशुपालवध के छठे सर्ग से रघुवंश के नवम सर्ग की तुलना -

शिशुपालवध के छठें सर्ग में तथा कालिदास के नवें सर्ग में बसन्त ऋतु का वर्णन बहुत ही सुन्दर एवं रोचक शब्दों में मिलता है । इन दोनों महाकाव्यों में बसन्त का वर्णन प्रचुर मात्रा में मिलता है उदाहरण के रूप में दोनों ही महाकाव्यों के श्लोक प्रस्तुत हैं । शिशुपालवध में भगवान श्रीकृष्ण की सेवा में रैवतक पर्वत पर अपने-अपने वृक्षों के अनुसार पल्लव तथा पुष्प आदि की शोभा को उत्पन्न किये हुए बसन्तादि ऋतुएं एक साथ उपस्थित हुई अर्थात् अपने-अपने चिह्नों को प्रकट किया-

अथ रिरंसुममुं युगपद्गिरौ कृतयथास्वतरुप्रसवश्रिया ।
ऋतुगणेन निषेवितुमादधे भुवि पदं विपदन्तकृतं सताम् ।।[1]

इसी प्रकार रघुवंश में भी राजा दशरथ के सम्मान में ऋतुराज बसन्त नये-नये फूलों का उपहार लेकर उनकी सेवा में उपस्थित हुआ, अर्थात् बसन्त आने पर नये-नये फूल खिलने लगे -

अथ समाववृते कुसुमैर्नवैस्तमिव सेवितुमेकनराधिपम् ।
यमकुबेर जलेश्वरवज्रिणां समधुरं मधुरञ्चितविक्रमम् ।।[2]

1- शिशुपालवध, 6/1

2- रघुवंश, 9/24

इस बसन्त ऋतु का वर्णन माघ के काव्य में 20 श्लोकों में किया गया है जब कि रघुवंश में 10 श्लोकों में किया गया है । बसन्त का आगमन शिशुपालवध में अधोलिखित प्रकार से किया गया है –

"नवपलाशपलाशवनं पुरः स्फुटपरागपरागतपङ्कजम् ।
मृदुलतान्तलतान्तमलोकयत्स सुरभिं सुरभिं सुमनोभरैः ।।"[1]

उपर्युक्त श्लोक में यह बताया गया है कि बसन्त का आगमन नवपल्लवयुक्त पलाशवाले तथा विकसित मकरन्द परिपूर्ण कमलों वाले पुष्पसमूहों से हुआ परन्तु रघुवंश में पहले फूलों की उत्पत्ति होती है, फिर नये-नये पल्लव, इसके बाद भ्रमरों का गुन्जार, फिर कोयलों का कुहुकना आरम्भ होता है इस प्रकार बसन्त का आगमन होता है-द्रष्टव्य है –

"कुसुमजन्म ततो नवपल्लवास्तदनु षट्पदकोकिलकूजितम् ।
इति यथाक्रममाविरभून्मधुर्द्रुमवतीमवतीर्य वनस्थलीम् "।।[2]

बसन्त ऋतु में विकसित होने वाला अशोक तथा चम्पा का पुष्प पुष्पित एवं पल्लवित होने के उपरान्त विरहियों के विदीर्ण हुए हृदय के कामाग्नि से कपिश वर्ण किये गये मांस के समान शोभता था –

"स्फुटमिवोज्ज्वलकाञ्चनकान्तिभिर्युतमशोकमशोभत चम्पकैः ।
विरहिणां हृदयस्य भिदाभृतः कपिशितं पिशितं मदनाग्निना" ।।[3]

1- शिशुपालवध, 6/2

2- रघुवंश, 9/26

3- शिशुपालवध, 6/5

रघुवंश में यहाँ अशोक का पुष्प बसन्त ऋतु में विकसित तो होता ही है, वरन् श्रृंगारी एवं विलासी पुरुषों को उन्माद प्रदान करने वाला भी होता है और प्रियाओं का कर्णभूषण बना हुआ नवपल्लव भी कामोद्दीपक होता है-

"कुसुममेव न केवलमार्तवं नवमशोकतरोः स्मरदीपनम् ।
किसलय प्रसवोऽपि विलासिनां मदयिता दयिताश्रवणार्पितः ।।[1]

इसके अनन्तर दोनों ही महाकाव्यों में कमल पुष्पों को नायिका रूप में चित्रित किया गया है । शिशुपालवध में युवक पुरुष कमल को देखने के उपरान्त अपनी-अपनी प्रिया के मुख को कमलवत समझकर देखने के लिये उत्कण्ठित हो गये-

"मुखसरोजरुचं मदपाटलामनुचकार चकोरदृशां यतः ।
धृतनवातपमुत्सुकतामतो न कमलं कमलम्भयदम्भसि"।।[2]

इसी प्रकार रघुवंश में खिले हुए कमलों वाली मद से अस्पष्ट यहाँ चहचहाती हुई कमलवत नायिकायें अपनी-अपनी मुस्कान से और भी सुन्दर दृष्टिगत होने लगी, तथा अपने प्रिय के आने से साहचर्य के लिए उत्कण्ठित हो गईं ।

"शुशुभिरे स्मितचारुतराननाः स्त्रिय इव श्लथशिञ्जितमेखलाः ।
विकचतामरसा गृहदीर्घिका मदकलोदकलोलविहङ्गमाः"।।[3]

1- रघुवंश, 9/28

2- शिशुपालवध, 6/48

3- रघुवंश, 9/37,38

दोनों महाकाव्यों में मलयाचल की वायु का भी वर्णन प्राप्त होता है। शिशुपालवध में मलयाचल का पवन मृगनयनियों के पसीने को सुखाने वाला केशकलाप को हिलाने वाला तथा नीलकमलों के विकासपूर्वक जलाशयों के तरंग को धीरे-धीरे चपल करता हुआ चलने लगा -

"विलुलितालकसंहतिरामृशन्मृगदृशां श्रमवारि ललाटजम् ।
तनुतरङ्गततिं सरसां दलत्कुवलयं वलयन्मरुदाववौ "।।[1]

रघुवंश में नर्तकी के समान स्थित मलयाचल की वायु से कम्पित आम्र लता ने ऋषि मुनियों को उन्मत्त कर दिया । शिशुपालवध में मञ्जरीयुक्त आम के वन के पराग पथिकों को सन्तप्त करने लगे ।

"अभिनयान्परिचेतुमिवोद्यता मलयमारुतकम्पितपल्लवा ।
अमदयत्सहकारलता मनः सकलिका कलिकामजितामपि "।।[2]

दोनों ही महाकाव्यों में भ्रमर एवं भ्रमरियों का भी वर्णन मिलता है। प्रियतमों पर क्रुद्ध अङ्गनाओं को मनाने वाली, कामदेव द्वारा भेजी गयी बकुलपुष्प के मकरन्द रूपी मधुर ध्वनि वाली भ्रमरपंक्ति पेड़ों से निकली -

"रतिपतिप्रहितेव कृतक्रुधः प्रियतमेषु वधूरनुनायिकाः ।
बकुलपुष्परसासवपेशलध्वनिरगान्निरगान्मधुपावलिः"।।[3]

1- शिशुपालवध, 6/3

2- रघुवंश, 9/33

3- शिशुपालवध, 6/7

रघुवंश में भ्रमर कटसरैया के अंगों के लाल कुसुमों के रस को पीकर वैसे गुन्जार करने लगे, जैसे दाता से दानप्राप्तकर याचक उसका गुणगान करते हैं इस सम्बन्ध में श्लोक द्रष्टव्य है -

"विरचितामधुनोपवनश्रियामभिनवा इव पत्रविशेषका: ।
मधुलिहां मधुदानविशारदा: कुरबका रवकारणतां ययु:"।।[1]

भौंरों के समूह धनुर्धारी कामदेव की पताका के वस्त्ररूप, बसन्त ऋतु की श्री को शोभित करने वाले मुख में लगने योग्य चूर्ण रूप वायु कम्पित उपवन में उड़े हुए पुष्पराग के पीछे चले -

"ध्वजपटं मदनस्य धनुर्भृतश्छविकरं मुखचूर्णमृतुश्रिय: ।
कुसुमकेसररेणुमलिव्रजा: सपवनोपवनोत्थितमन्वयु: "।।[2]

शिशुपालवध में भ्रमरियों के गुन्जार का वर्णन है। बसन्त में विकसित माधवी लता के पराग का पानकर भ्रमरी गुन्जार करने लगी -

"मधुरया मधुबोधितमाधवी मधुसमृद्धिसमेधितमेधया ।
मधुकराङ्गनया मुहुरुन्मदध्वनिभृता निभृताक्षरमुज्जगे"।।[3]

दोनों ही महाकाव्यों में कोयल को मृदुभाषिणी मुग्ध वधुओं के रूप में चित्रित किया गया है तथा इसके उपरान्त ही नववधुओं का रति विषयक वर्णन किया गया है -

"प्रियसखीसदृशं प्रतिबोधिता: किमपि काम्यगिरा परपुष्टया ।
प्रियतमाय वपुर्गुरुमत्सराच्छिदुरयाऽदुरयाचितमङ्गना:"।।[4]

1- रघुवंश, 9/29
2- रघुवंश, 9/45
3- शिशुपालवध, 6/20
4- शिशुपालवध, 6/8

इसी प्रकार रघुवंश में भी नववधुओं का रात्रिकाल में लज्जा से थोड़ा-थोड़ा बोलना कोयलों के कुहुकने के समान बताया गया है -

"प्रथममन्यभृताभिरुदीरिताः प्रविरला इव मुग्धवधूकथाः ।
सुरभिगन्धिषु शुश्रुविरे गिरः कुसुमितासु मिता वनराजिषु ।।"[1]

इस प्रकार दोनों ही महाकाव्यों में वर्णित प्रभात वर्णन में कुछ स्थल पर साम्यता दृष्टिगत होती है और कुछ स्थल पर विभिन्नता । दोनों में ही यमक अलंकारों का प्रयोग कई स्थलों पर सुन्दर रूप में प्रस्तुत किया गया है । महाकवि माघ इन यमक अलंकारों के प्रयोग में कुछ फंस से गये हैं । इसी प्रकार महाकवि माघ ने प्रकृति को नायिका रूप में चित्रित करते समय कुछ ज्यादा ही अतिशयोक्ति पूर्ण वर्णन कर दिया है जिससे उनके इस प्रभात वर्णन में भी कुछ अश्लीलता परिलक्षित होने लगी है परन्तु कालिदास कृत रघुवंश में यह अश्लीलता नहीं दृष्टिगत होती है, इनका तो यह वर्णन बहुत ही शालीन रूप में प्रस्तुत किया गया है ।

1- रघुवंश, 9/34

वन-विहार वर्णन -

महाकवि माघ ने यादव-जनों तथा यादव रमणियों के वन-विहार का अतिविस्तृत वर्णन किया है । यादव-जनों ने अनेकविध पुष्पों से युक्त वनों में स्त्रियों के साथ जाने की इच्छा की अन्यथा वे कामदेव के महान अस्त्रभूत केवल पाँच बाणों को भी सहन करने में समर्थ नहीं थे, तब भला वन में असंख्य रूप पुष्प-बाणों के विद्यमान रहने से वे किस प्रकार सहन करने में समर्थ हो सकते थे ?[1] किसी खण्डिता नायिका को उसकी सखी बड़ी चतुरता से मनाती हुई कहती है - सखि ! यदि मैं तुमको पति के पास नहीं पहुँचा सकी तो मैं तुमसे बोलना भी छोड़ दूँगी ऐसा मेरा निश्चय है । इस अवस्था में हम दोनों का विरोध होने पर तुम्हारे शत्रुओं {सपत्नियों} का मनोरथ सफल हो जायेगा "अर्थात् तुम्हारी सपत्नियां चाहती ही थीं कि इन दोनों सखियों में विरोध होकर परस्पर सम्भाषण न हो" और वह बात भी हो जायेगी अर्थात् यदि तुम मेरा कहना नहीं मानोगी तो उनका यह मनोरथ पूरा हो जायेगा ।[2]

1- "दधति सुमनसो वनानि बह्वीर्युवतियुता यदवः प्रयातुमीषुः ।
मनसिशयमहास्त्रमन्यथामी न कुसुमपञ्चकमप्यलं विसोढुम् ।।
शिशुपालवध, 7/2

2- सततमनभिभाषणं मया ते परिपणितं भवतीमनानयन्त्या ।
त्वयि तदिति विरोधनिश्चितायां भवति भवत्वसुहृज्जनः सकामः ।।
शिशुपालवध, 7/9

रमणियों के विविध प्रकार के गमन का भी कवि ने विस्तृत वर्णन किया है- "प्रिय के (मांसल होने से) आसन के समान दोनों कन्धों पर अपने दोनों हाथों को रखकर लीलापूर्वक पैर रखते हुए कठोर कुचाग्र से पति को प्रेरित करती हुई दूसरी स्त्री पति के पीछे-पीछे जाने लगी ।[1] (नायिका के) पीछे से कांख में अपना हाथ डालकर (उस नायिका के दोनों) स्तनों को पकड़े हुए तथा (उस नायिका के) कपोल पर अपना ओष्ठ रखे (कपोल का चुम्बन करते) हुए कोई दूसरा नायक अस्तव्यस्त पैर रखते उस नायिका को मानो बलपूर्वक ले जा रहा था ।[2] यादवाङ्गनाओं ने नदियों के पास लोगों के मनोरूप लक्ष्य को बेधने में समर्थ काम-धनुष की टंकार का सन्देह उत्पन्न करते हुए सारस पक्षियों की कर्ण-प्रिय ध्वनि को सुना ।[3] रमणियों की पुष्पावचय-क्रीड़ा का भी कवि ने सुन्दर वर्णन किया है - "पुष्प तोड़ने के लिए हाथ को ऊपर उठाने पर (उदर की बड़ी-बड़ी त्रिवलियों से स्पष्ट दिखलायी पड़ती हुई गौरवर्ण वाली रेखाओं से अत्यन्त शोभने वाली (अतएव) उसी विलीन हुई

1- लघुललितपदं तदंसपीठद्वयनिहितोभयपाणिपल्लवान्या ।
स्फटिनकुचचूचुकप्रणोदं प्रियमबला सविलासमन्वियाय ।।

शिशुपालवध, 7/19

2- अनुवपुरपरेण बाहुमूलप्रहितभुजाकलितस्तनेन निन्ये ।
निहितदशनवाससा कपोले विषमवितीर्णपदं बलादिवान्या ।।

शिशुपालवध, 7/21

3- श्रुतिपथमधुराणि सारसानामनुनदि शुश्रुविरे रुतानि ताभिः ।
विदधति जनतामनः शरव्यव्यधपटुमन्मथचापनादशङ्काम् ।।

शिशुपालवध, 7/24

रोम-पङ्क्तियों वाली ऐसी और स्वभावतः पतली कटि (कमर) को पुनः पतली करती हुई एवं (पुष्प तोड़ने के लिए शरीर ऊपर तन जाने से) बड़े-बड़े तथा उन्मुख (ऊपर की ओर देखते हुए नेत्रों वाली रमणी।[1] तोड़े गये नवपल्लव के म्लान होने तथा तरुण विट के तिरस्कृत होकर खिन्न होने का माघ ने सरस वर्णन किया है - निरन्तर बहते हुए रसवाला (अविच्छिन्न श्रृंगार वाला), राग (लालिमा, अनुराग) से युक्त, नखक्षत से परिचित अर्थात् नाखून से तोड़ा गया (रतिकाल में किये गये नखक्षत वाला), वधू के द्वारा निर्दयतापूर्वक तोड़ा गया (तिरस्कृत किया गया), नवपल्लव (तरुण विट) तत्काल मलिन हो गया (खिन्न हो गया).[2]

अन्त में रमणियों के वन-विहार जन्य श्रम का वर्णन किया गया है -"वन में भ्रमरादि जन अधिक परिश्रम के कारण शिथिल केश-समूह के गिरने के भार से मानो अत्यन्त नम्र कन्धों वाली तथा सघन तथा बड़े-बड़े पलकों के भार से बन्द नेत्र वाले मुख कमलों वाली रमणियों वन-विहार से थक गयी थीं ऐसा लग रहा था"।[3] (वन विहार रूप परिश्रम करने के पहले ही) बड़े-बड़े स्तनों के भार से नम्र तथा (अब वन विहार रूप) परिश्रम से अधिक नम्र सुकुमार शरीरवाली और (चलने के) अभ्यास से रहित अर्थात् अभ्यास के बिना पैदल चलने से उत्पन्न कृशतासे

1- विततवलिविभाव्यपाण्डुलेखाकृत पर भागविलीनरोमराजिः।
कृशमपि कृशतां पुनर्नयन्तीविपुलतरोन्मुखलोचनावलग्नम् ।।
शिशुपालवध, 7/33

2- अनवरतरसेन रागभाजा करजपरिक्षतिलब्धसंस्तवेन ।
सपदि तरुणपल्लवेन वध्वा विगतदयं खलु खण्डितेन मम्ले।।
शिशुपालवध, 7/31

3- श्लथशिरसिजपाशपातभारादिव नितरां नतिमद्भिरंसभागैः।
मुकुलितनयनैर्मुखारविन्दैर्घनमहतामिव पक्ष्मणां भरेण ।।
शिशुपालवध, 7/62

असमर्थता को धारण करने वाले, चलने में असमर्थ हाथी के सूंड के समान मोटे जघनों वाली रमणियां ।[1]

जल-क्रीड़ा वर्णन -

शिशुपालवध और भारविकृत किरातार्जुनीय दोनों महाकाव्यों के अष्टम सर्ग में जल-केलि वर्णन मिलता है । शिशुपालवध में यादवाङ्गनाओं और यादवों की जलक्रीड़ा का वर्णन अति विस्तार से हुआ है । इस केलि वर्णन के आश्रय वैसे तो स्वयं यादव तथा उनकी अङ्गनाएं है, किन्तु इस प्रकार के दृश्य श्रोता या पाठक के भावों के भी आलम्बन होते हैं ।

वन-विहार जन्य श्रम से क्लान्त अतएव जलक्रीड़ा के इच्छुक रमणियों के समूह जल की ओर बड़े कष्ट के साथ भूतल पर पैर रखकर चलने लगे । "हंसस्त्रियां (हंसियां) रमणियों की सविलास गति को देखकर आश्चर्य चकित होती हुई वहीं रुक गयीं"।[2] नदियों की आशु-गति पर कवि की उत्प्रेक्षा दर्शनीय है -"शोभायुक्त सघन तथा बड़े-बड़े नितम्बमण्डलों वाली, श्रीकृष्ण भगवान् की रमणियों के जघनों से पराजित तट-प्रदेशों वाली नदियां मानो पराजय जन्य लज्जा के कारण पत्थरों

1- अतनुकुचभरानतेन भूयः श्रमजनितानतिना शरीरकेण ।
अनुचितगतिसादनिःसहत्वं कलभकरोरुभिरूरुभिर्दधानैः ।।

शिशुपालवध, 7/66

2- आयासादलघुतरस्तनैः स्वनद्भिः श्रान्तानामविकचलोचनारविन्दैः ।
अभ्यम्भः कथमपि योषितां समूहैस्तैरुर्वीनिहितचलत्पदं प्रचेले ।।

शिशुपालवध, 8/1

पर स्खलित होती हुई चन्द्रलता (शीघ्रता) के साथ आ (भाग) रही थी।[1] नदियों द्वारा रमणियों के आतिथ्य किये जाने का दृश्य- ऊपर उठे हुए तथा विकसित कमल रूपी अर्घ्य द्रव्य के साथ, पक्षियों के शब्दों से मानों स्नेहपूर्वक आलाप (कुशल प्रश्न) करती हुई सी, फेन रूपी हास वाली पुष्करिणी ने यादव-रमणियों के लिए तरङ्गरूपी हाथों से मानों बड़े प्रेम से उनका आतिथ्य सत्कार किया।[2] जल प्रदेश में स्त्रियों का भय स्वाभाविक था। उन्होंने जल की थाह जानकर तब उसमें धीरे से प्रवेश किया। "पति के साथ तड़ाग (सरोवर) में प्रवेश करने की इच्छा नहीं करती हुई, सखियों के द्वारा किनारे से पानी में ढकेली गयी, नव-विवाहिता रमणी ने भय से चकित नेत्र होकर पति का आलिङ्गन कर लिया क्योंकि विपत्ति में मर्यादा का उल्लङ्घन करना निन्दित नहीं होता है"।[3] किसी रमणी की मुग्धता का कवि ने सरस वर्णन किया है-"कन्धे तक जल में स्थित पति को देखकर अपने भी कन्धे तक जल को समझती हुई किसी सुन्दरी ने अज्ञान के कारण निर्भय होकर पति के पास जाना चाहा किन्तु उस

1- श्रीमद्भिर्जितपुलिनानि माधवीनामारोहैर्नितम्बबृहन्नितम्बबिम्बैः।
पाषाणस्खलनविलोलमाशु नूनं वैलक्ष्याद्ययुरवरोधनानि सिन्धोः।।

शिशुपालवध, 8/8

2- उत्क्षिप्तस्फुटितसरोरुहार्घ्यमुच्चैः सस्नेहं विहगरुतैरिवालपन्ती।
नारीणामथ सरसी सफेनहासा प्रीत्येव व्यतनुत पाद्यमूर्मिहस्तैः।।

शिशुपालवध, 8/14

3- नेच्छन्ती सममुना सरोऽवगाढुं रोधस्तः प्रतिजलमीरिता सखीभिः।
आश्लिक्षद्भयचकितेक्षणा नवोढा वोढारं विपदि न दूषणं त्रपायाः।।

शिशुपालवध, 8/20

पति ने "यह डूब रही है" यह जानकर झट उसका आलिङ्गन कर लिया ।[1] जलकेलि-वर्णन-प्रसंग में पक्षियों के भी क्रीड़ा-विलास का वर्णन किया गया है । चक्रवाकी के विषय में कवि की उक्ति-"प्रियतम (चक्रवाक) के द्वारा निश्शङ्क चुम्बित तथा सीत्कारादि कार्यों में मूढ़ चक्रवाकी का, प्राणप्रियों के सामने हाथ को हिलाती हुई यादव-तरुणियों ने सीत्कार रूप समुचित उत्तर दिया ।"[2] सरिता में विकसित कमलों की शोभा का वर्णन-कमल तथा युवती-मुख में अत्यधिक साम्य था, जिससे युवक के मन में सन्देह उत्पन्न हो गया किन्तु कमल में अविद्यमान विब्बोकों (स्त्रियों के विलास-विशेष) से उसे निर्णय करने में बड़ी सुविधा हुई ।[3] जल-क्रीड़ा के साधनों का भी वर्णन कवि ने किया है-"पिघलाये गये सुवर्ण से निर्मल अर्थात् सुवर्ण की कलई किये हुए शृङ्ग (पिचकारियाँ, गन्ध (चन्दन, कुङ्कुमादि सुगन्धयुक्त पदार्थ) स्तन-कलश का आवरण-भूत कुसुम्भ-रञ्जित वस्त्र, द्राक्षा की बनी हुई मदिरा और प्रियतम का सामीप्य-ये सब सुन्दरियों के जल-क्रीड़ा के साधन थे"।[4] "अत्यन्त निर्मल जलाशय में पानी के द्वारा वस्त्र के हटाये जाने पर

1- तिष्ठन्तं पयसि पुमांसमंसमात्रे तद्दघ्नं तदवयती किलात्मनोऽपि ।
अभ्येतुं सुतनुरभीरियेष मौग्ध्यादाश्लेषि द्रुतममुना निमज्जतीति ।।
शिशुपालवध, 8/2।

2- मुग्धायाः स्मरललितेषु चक्रवाक्या निःशङ्कं दयितमेन चुम्बितायाः ।
प्राणेशानभि विधुतोर्ध्वहस्ताः सीत्कारं समुचितमुत्तरं तरुण्यः ।।
शिशुपालवध, 8/13

3- किं तावत्सरसि सरोजमेतदारादाहोस्विन्मुखमवभासते युवत्याः ।
संशय्य क्षणमिति निश्चिकाय कश्चिद्बिब्बोकैर्बकसहवासिनां परोक्षैः ।।
शिशुपालवध, 8/29

4- शृङ्गाणि द्रुतकनकोज्ज्वलानि गन्धाः कौसुम्भं पृथुकुचकुम्भसङ्गवासः ।
मार्द्वीकं प्रियतमसन्निधानमासन्नारीणामिति जलकेलिसाधनानि ।।
शिशुपालवध, 8/30

और पति के चन्चल-नेत्र होने पर लज्जित रमणी के वस्त्रहीन अङ्ग को अतिशीघ्र तरङ्गरूपी हाथ से रखे गये कमल पत्र रूपी वस्त्र से ढककर कमलिनी ने सखीत्व निभाया ।[1]

यादवों की जल-केलि का भी वर्णन किया गया है । जल ने यादवों के वक्षःस्थल से सघन अङ्गलेप का तथा मस्तक से मुकुट का अपहरण कर लिया, किन्तु उनके नेत्रों की मद-जनित-कान्ति पूर्ववत् बनी रही । उन यदुवंशियों के बाहरी अङ्गराग को तो जल ने धो दिया, किन्तु उनके चित्त में जो राग था, वह तो वैसा ही बना रहा ।[2] जल-केलि के अनन्तर रमणी-समूह के जल से बाहर आने का भी सुन्दर वर्णन है - रमणियों के वस्त्र बदलने पर भी कवि की सुन्दर कल्पना । "उन रमणियों ने (जल-क्रीड़ा के बाद बाहर निकलकर सूखे) जिन वस्त्रों को पहना, स्वच्छ मेघ के समान कान्ति वाले वे वस्त्र आनन्द से मानो हँसने लगे । और स्नान करने से पानी चुवाते हुए जिन (भीगे) वस्त्रों को छोड़ दिया बड़े-बड़े अश्रु-बिन्दुओं को गिराते हुए वे वस्त्र मानो विरह जन्य पीड़ा से रो पड़े"।[3]

1- पर्यच्छे सरसिहृतेंऽशुके पयोभिर्लोलाक्षे सुरतगुरावपत्रपिष्णोः ।
सुश्रोण्या दलवसनेन वीचिहस्तन्यस्तेन द्रुतमकृतालिनी सखीत्वम् ।।

शिशुपालवध, 8/46

2- वक्षोभ्यो घनमनुलेपनं यदूनामुत्तंसानहरत वारि मूर्धजेभ्यः ।
नेत्राणां मदरुचिरक्षतैव तस्थौ चक्षुष्यः खलु महतां परैरलङ्घ्यः ।।

शिशुपालवध, 8/57-58

3- वासांसि न्यवसत यानि योषितस्ताः शुभ्राभ्रद्युतिभिरहासि तैर्मुदेव ।
अत्याक्षुः स्नपनगलज्जलानि यानि स्थूलाश्रुस्रुतिभिररोदि तैः शुचेव ।।

शिशुपालवध, 8/66

सन्ध्या वर्णन -

महाकवि माघ ने सन्ध्यादि का विस्तार से वर्णन किया है। इसमें सूर्यास्त अन्धकार, चन्द्रोदय, रात्रि तथा तारागण का वर्णन उद्दीपन रूप में हुआ है - सूर्यास्त वर्णन "जलाशय में डूबने में मानिनियों के मान को दूर किये हुए एवं विमल-शरीर-कान्ति वाले यादवों को देखकर सूर्य भगवान ने पश्चिम समुद्र की जल-तरङ्गों में मज्जन करना चाहा। अर्थात् सूर्यास्त होने लगा"[1]। "रति के लिए अत्यन्त उत्कण्ठित कोई रमणी गवाक्ष की ओर देखती हुई अस्ताचल के तथा सूर्य के मध्यभाग को मानो नाप रही थी" (अर्थात् अब सूर्य और अस्ताचल के बीच में एक हाथ शेष है, अब आधा हाथ शेष है, इत्यादि अनुमान कर रही थी)[2]। सन्ध्याकालीन अरुणिमा का सुन्दर वर्णन किया गया है- "सूर्य नये कुङ्कुम के समान लाल मेघों वाली (नये कुङ्कुम से रङ्गे गये अरुण-पयोधर वाली), अपनी किरणों से सम्बद्ध मनोहर आकाश वाली (अपने हाथ से ग्रहण किये गये सुन्दर वस्त्र वाली) पश्चिम दिशा के अत्यन्त निकट होकर (वरुण-रूप पुरुषान्तर की पत्नी में आसक्त होकर) अत्यन्त लाल (अनुरागयुक्त हो गया)"[3]।

1- इति धौतपुरन्ध्रिमत्सरान्सरसि मज्जनेन श्रियमाप्तवतोऽतिशायिनीम् अमलाङ्गभासः।
अवलोक्य तदैव यादवानपराशिरराशेः शिशिरेतररोचिषाप्यांसि तितिक्षुमङ्क्षुमीषे ।।
शिशुपालवध, 9/1।

2- गतया पुरः प्रतिगवाक्षमुखं दधती रतेन भृशमुत्सुकताम् ।
मुहुरन्तरालभुवमस्तगिरेः सवितुश्च योषिदमिमीत दृशा ।।
शिशुपालवध, 9/2

3- नवकुङ्कुमारुणपयोधरया स्वकरावसक्तरुचिराम्बरया ।
अतिसक्तिमेत्य वरुणस्य दिशा भृशमन्वरज्यदतुषारकरः ।।

"सूर्य के अस्त हो जाने पर अग्नि प्रभायुक्त हो गयी। सन्ध्या प्रादुर्भाव के अनन्तर सन्ध्याकाल की सघन किरणों से लाल किया गया चक्रवाक और चक्रवाकी का मिथुन विरह पीड़ा से फटते हुर हृदय से बहे हुर रक्त से अनुलिप्त समान पृथक्-पृथक् होकर उड़ गया"।[1] "सन्ध्या भी शीघ्र नष्ट हो गई और अन्धकार ने अपना प्रभुत्व जमाया। दिन के बीत जाने पर अत्यधिक बढ़े हुर तथा गाढे पड्•क के समान काली कान्ति वाला यह अन्धकार का समूह पर्वत की गुफाओं से बाहर निकलकर फैला है क्या ? अथवा क्या बाहर से आकर गुफाओं का सेवन कर रहा था ? अथवा क्या आकाश में बढ़ता हुआ अन्धकार नीचे पृथ्वी की ओर लटकता था अथवा क्या पृथ्वी-तल से आकाश की ओर बढ़ रहा था ? अथवा क्या दिशाओं से तिर्छे फैल रहा था। इस प्रकार यह निर्णय न हो सका कि वह अन्धकार कहाँ से बढ़ता चला आ रहा है।[2]

यह अन्धकार होने पर रमणियों के अभिसारार्थ निकलने पर कवि की कल्पना -"आकाश तथा भूतल को आच्छादित करने वाले अन्धकार के• लोगों की दृष्टि को अन्धा करते रहने पर सुलोचनाओं ने अपूर्व अन्जन को धारण किया और इससे वे प्रियों के भवन के मार्ग को देखने लगीं अर्थात् प्रिय के भवनों का रास्ता

1- अथ सान्द्रसान्ध्यकिरणारुणितं हरिहेतिहूति मिथुनं पततो:।
पृथगुत्पपात विरहार्तिदलद्धृदयस्रुतासृगनुलिप्तमिव ।।

शिशुपालवध, 9/15

2- व्यसरन्नुभूधरगुहान्तरत: पटलं बहिर्बहलपड्•कमिव ।
दिवसावसानपटुनस्तमसो बहिरेत्य चाधिकमभक्त: गुहा:।।

शिशुपालवध, 9/19-20

ग्रहणकर अभिसार करने लगीं"।[1] कवि माघ ने चन्द्रोदय का भी अति सुन्दर वर्णन किया है - "अनन्तर सर्पराज (पृथ्वी को धारण करने वाले शेषनाग) की सहस्त्र फणाओं के रत्नों की कान्ति के समूह के समान, चन्द्रमा के स्फुरित होते हुए किरण समूह ने पूर्वदिशा को भूषित कर दिया अर्थात् पूर्व-दिशा में उदित होते हुए चन्द्रमा का किरण -समूह हुये ऐसा दिखलायी पड़ने लगा कि मानो पृथ्वी तल से निकले शेषनाग के सहस्त्र फणाओं में स्थित नागमणियों की कान्ति का समूह हो"।[2] "पूर्व दिशा के अग्रभाग में पहले चन्द्रमा कलामात्र (सोलहवां भाग) था बाद में आधा हो गया और सम्पूर्ण उदित होने पर महान हो गया क्योंकि यह सच है कि तेजस्वी लोग भी क्रमशः (धीरे-धीरे) ही वृद्धि को प्राप्त करते हैं, सहसा (एकाएक) वृद्धि को नहीं प्राप्त करते"।[3] "ओषधिपति चन्द्रमा अमृत से सरस किरणों से

1- स्थगिताम्बरक्षितितलेपरितस्तिमिरे जनस्यदृशमन्धयति ।
दधिरे रसाञ्जनमपूर्वमतः प्रियवेश्मवर्त्म सुदृशो ददृशुः ।।

शिशुपालवध, 9/22

2- वसुधान्तनिःसृतमिवाहिपतेः पटलं फणामणिसहस्त्ररुचाम् ।
स्फुरदंशुजालमथ शीतरुचः ककुभं समस्कुरुत माघवनीम् ।।

शिशुपालवध, 9/25

3- प्रथमं कलाभवदथार्धमथो हिमदीधितिर्महदभूदुदितः ।
दधति ध्रुवं क्रमश एव न द्युतिशालिनोऽपि सहसोपचयम् ।।

शिशुपालवध, 9/29

कमलनयनी यादव स्त्रियों के शरीर का परिमार्जन करता हुआ सर्वत्र फैले हुए तथा अतिशय सन्ताप कारक मान-रूप विष को उतार रहा था"।[1] चन्द्रोदय देखकर मानिनियों के मान-त्याग करने पर कवि की रस युक्ति-"दिशाओं को अधिक प्रकाशित करने वाली चन्द्रमा की कान्तियों (किरणों) का समूह (दर्पण के समान) रमणियों के स्वच्छतम कपोलमण्डलों पर बार-बार प्रतिबिम्बित होकर चाँदनी अत्यधिक सघन होकर फैल गयी"।[2]

पानगोष्ठी वर्णन -

शिशुपालवध में पानगोष्ठी का अति सरस वर्णन हुआ है । "मानरूप विघ्न को तत्काल शान्त करने वाली चन्द्रमा की किरणें रमणियों को कामियों के साथ संयुक्त करने के लिए सम्यक् प्रकार से समर्थ हुई तथा काम-श्री के विलास को विकसित करने वाली और लज्जा-रूपी विघ्न को दूर करने में निपुण मदिरा ने इनकी रति में आचार्यत्व का कार्य किया"।[3] यहाँ चन्द्ररूपी को दूती तथा मदिरा को नर्म सखी होने की कल्पना की गयी है । सुन्दर प्रियतमाओं के मुख

1- अमृतद्रवैर्विदधदब्जदृशामपमार्गमोषधिपतिः स्म करैः।
परितो विसर्पि परितापि भृशं वपुषोऽवतारयति मानविषम् ।।
शिशुपालवध, 9/36

2- अमलात्मसु प्रतिफलन्नभितस्तरुणीकपोलफलकेषु मुहुः।
विससार सान्द्रतरमिन्दुरुचामधिकावभासितदिशां निकरः।।
शिशुपालवध, 9/37

3- इत्थं नारीर्घटयितुमलं कामिभिः काममासन्प्रालेयांशोः सपदि रुचयः शान्तमानान्तरायाः
आचार्यत्वं रतिषु विलसन्मन्मथश्रीविलासा ह्रीप्रत्यूहप्रशमकुशलाः शीधवश्चक्रुरासाम्।।
शिशुपालवध, 9/87

ही कहीं पर कामिनियों के मदिरा-पात्र बन गये । "प्रियतम के मुख के प्रतिबिम्ब से युक्त तोड़े गये नूतन एवं सौरभ-युक्त आम्रपल्लव से सुगन्धयुक्त, स्वादिष्ट (सुस्वादु), भ्रमरों के गुन्जार से युक्त तथा शीतल मदिरा में उन यादवों तथा उनकी रमणियों की इन्द्रियों का समूह अत्यन्त तृप्त हो गया"।[1] "मतवाला (अतएव) भ्रमण करता (उड़ते हुए इधर-उधर चक्कर लगाता) हुआ भ्रमर, मद्य से सुगन्ध-युक्त, विकसित नेत्रों वाले रमणी के मुख पर तथा (सुवासित करने वाले) कमल से मनोहर प्याले पर बैठने में संशयालु (सन्देहयुक्त) हो गया । अर्थात "उक्त रूप की रमणी के मुख पर बैठूं या प्याले पर बैठूं" यह निर्णय नहीं कर सका"।[2]

"युवकों ने मुखों से मद्य-रस तथा नासिका से कमल-गन्ध पान किया । कामपूर्वक प्रियतमा के मुख का पान करने में आसक्त किसी युवक के लिए एक बार आस्वादित मद्य ने ही विदंश का स्थान लिया"।[3] "तीन बार अर्थात् तीन प्याला

1- क्रान्तकान्तवदनप्रतिबिम्बे भग्नबालसहकारसुगन्धौ ।
स्वादुनि प्रणदितालिनि शीते निर्ववार मधुनीन्द्रियवर्गः ।।
शिशुपालवध, 10/3

2- कपिशायनसुगन्धि विघूर्णन्नुन्मदोऽधिशयितुं समशेत ।
फुल्लदृष्टि वदनं प्रमदानामब्जचारु चषकं च षडङ्घ्रिः ।।
शिशुपालवध, 10/4

3- शिशुपालवध, 10/8

मद्य का पान करने से उत्पन्न प्रचण्ड मद से उन्मत्त सुन्दर भौंहों वाली रमणियाँ, अत्यन्त लज्जा-रहित होकर, उपहास-क्रीड़ा में निरत हो, [illegible] वक्र-वाक्य-रचना (अट-पट बात कहने) से रमणी अपने गुप्त-काम चेष्टादि रहस्य को प्रकाशित करने लगीं ।[1] मद से रमणियों के विलास के प्रकट होने पर कवि की पाण्डित्यपूर्ण उक्ति-मदिरा-पान से मत्त स्त्रियाँ अपने अङ्गों में चिरकाल से विद्यमान किन्तु प्रयुक्त नहीं होने से अप्रकाशित विलास को उस प्रकार प्रकट कर दिया, जिस प्रकार (भू आदि) धातु में विद्यमान किन्तु प्रयोग नहीं करने से अप्रकाशित अर्थ को (प्र, परा आदि) उपसर्ग प्रकट कर देता है ।[2] कामासक्त प्रियतम के द्वारा दिया गया (अतएव) अत्यधिक रस से व्याप्त अर्थात् बहुत सुस्वादु वह मुखमधु प्रमदाओं (अधिक मद वाली रमणियों) को रुचिकर हुआ और रूढ़ (अवयवार्थ शून्य भी) "प्रमदा" इस (नाम को व्युत्पत्तियुक्त (उन रमणियों को मद्यपान करने के बाद प्रकृष्ट मद से युक्त बनाकर अवयवार्थ युक्त) कर दिया ।[3]

1- प्रातिभं त्रिसरकेण गतानां वक्रवाक्यरचनारमणीयः ।
गूढसूचितरहस्यसहासः सुभ्रुवां प्रववृते परिहासः ।।

शिशुपालवध, 10/12

2- सन्तमेव चिरमप्रकृतत्वादप्रकाशितमदिद्युतदङ्गे ।
विभ्रमं मधुमदः प्रमदानां धातुलीनमुपसर्ग इवार्थम् ।।

शिशुपालवध, 10/15

3- दत्तमात्तमदनं दयितेन व्याप्तमातिशयिकेन रसेन ।
सस्वदे मुखसुरं प्रमदाभ्यो नाम रूढमपि च व्युदपादि ।।

शिशुपालवध, 10/23

यमुना-वर्णन -

शिशुपालवध में यमुना नदी का अतिसंक्षिप्त वर्णन है। यमुना उष्ण-रश्मि सूर्य की पुत्री होकर भी शीतल, यमराज की बहन होकर भी सबकी प्राणभूत तथा कृष्ण-वर्ण वाली होती हुई भी शुद्धि को अधिक करने वाले जलों से पापों को नष्ट करने में अतिशय समर्थ है।[1] "यदि शास्त्र से हेतु अर्थात् अनुमान प्रबल है तो उस (यमुना) ने ही समुद्र को पूरा किया है, गङ्गा ने नहीं, यही स्पष्ट (ठीक है, अन्यथा (यदि गंगाने समुद्र को पूरा किया होता तो) समुद्र का पानी गंगा के प्रवाहों से भस्मरहित किये गये शंकर जी के कण्ठ के समान (कृष्ण वर्ण) कैसे होता ? अर्थात् कदापि नहीं होता।"[2]

तमाल के समान कृष्ण वर्ण वाली और बहुत लम्बी वह यमुना नदी, वेग से पृथ्वी का अतिक्रमण करने के लिए तत्पर सेनारूपी समुद्र के आगे थोड़े समय तक (उसकी) सीमा के समान शोभित हुई।[3]

1- या घर्मभानोस्तनयापि शीतलैः स्वसा यमस्यापि जनस्यजीवनैः।
कृष्णापि शुद्धेरधिकं विधातृभिर्विहन्तुमंहांसि जलैः पटीयसी ।।

शिशुपालवध, 12/67

2- व्यक्तं बलीयान् यदि हेतुरागमादपूरयत्सा जलधिं न जाह्नवी ।
गाङ्गौघानिर्भस्मितशम्भुकन्धरासवर्णमर्णः कथमन्यथास्य तत् ।।

शिशुपालवध, 12/69

3- अभ्युद्यतस्य क्रमितुं जवेन गां तमालनीला नितरां धृतायतिः।
सीमेव सा तस्य पुरः क्षणं बभौ बलाम्बुराशेर्महतो महापगा ।।

शिशुपालवध, 12/70

सभा वर्णन -

शिशुपालवध में युधिष्ठिर की सभा का वर्णन प्राप्त होता है। प्राचीन काल में भी सभा और समिति का नाम बार-बार आता है -

"सभा च समितिश्चावतां प्रजापतेर्दुहितरौ संविदाने"[1]

ये दोनों ही स्थान जनता के एक स्थान पर एकत्र होने के लिए बनाये जाते थे जहाँ पर लोग एकत्र होकर बैठते हैं और अपनी सम्मति व्यक्त करते हैं। सभा एक सम्मति देने वाले व्यक्तियों का कुल है जिसमे राजपरिवार के मुख्य व्यक्ति विद्वान, ब्राह्मण, पुरोहित, और दूसरे प्रसिद्ध नागरिक हुआ करते थे किन्तु समिति में मात्र शासन सम्बन्धी व्यक्ति होते थे। सभा का अर्थ है - "सह भान्ति अभीष्ट निश्चयार्थमेकत्र यत्र गृहे सा एव सभा" जैसे- न सा सभा यत्र न सन्ति वृद्धाः"।[1] श्री नारायण चन्द्र बन्दोपाध्याय ने अपने ग्रन्थ में सभा एवं समिति के स्वरूप पर प्रकाश डालते हुए इसे पारिभाषित किया है।[2]

सभा -

इसे सम्मिलन के स्थान एवं समिति के रूप में पारिभाषित किया है - यह राजा की सलाहकार समिति थी-ऐसा हिलब्रान्ट महोदय कहते हैं-सभा के सदस्य मूल्यांकन कर्ता के रूप में कार्य करते थे और इसका नेतृत्व वाद की स्थिति में राजा के द्वारा खुद किया जाता था।

1- महाकवि माघ उनका जीवन तथा कृतियाँ -डॉ मनमोहन लाल जगन्नाथ शर्मा, पृ0 सं0 343

2- डवलपमेंट आफ पोलिटी एण्ड पोलिटिकल थ्यूरीज -
श्री नारायणचन्द्र बन्दोपाध्याय, पृ0 सं0 100

समिति –

समिति यह जन समुदाय के सम्मिलन का स्थान था । इसे वैदिक रूप से राजा के लिए महत्वपूर्ण समझा जाता था । सम्पूर्ण समुदाय के नागरिकों के सम्मिलन का भी स्थान समझा जाता था । इसका राजदरबारी लोगों से बहुत ही महत्वपूर्ण सम्बन्ध रहता था । राष्ट्रीय एकता एवं शान्ति के बनाये रखने में इसका महत्वपूर्ण योगदान था । इसका मुख्य उद्देश्य चुनाव करना था और राजा के द्वारा कृत कार्यों की स्वीकृति करनी थी । इन सब से निष्कर्ष यह निकला कि सभा चुने हुए कुछ ही व्यक्तियों की परामर्श समिति होती थी जो किसी समस्या पर गुप्त रूप से विचार करती थी ।

शिशुपालवध में सभा के लिए कहा है – "सभा भवन रत्नों से जटित था, और स्तम्भों में प्रतिबिम्ब दिखायी पड़ रहे थे । उस सभा भवन में तीनों व्यक्ति (श्रीकृष्ण, उद्धव, और बलराम) स्वर्ण आसनों पर विराजमान थे । वे तीनों जिन ऊँचे-ऊँचे स्वर्णमय आसनों पर बैठे थे, उनसे तीन सिंहों से आक्रान्त अर्थात् जिनपर तीन सिंह बैठे हों ऐसे त्रिकूट पर्वत के तीनों शिखरों की तरह मालूम पड़ते थे"।[1]

1– रत्नस्तम्भेषु संक्रान्तप्रतिमास्ते चकाशिरे ।
एकाकिनोऽपि परितः पौरुषेयवृता इव ।।
अध्यासामासुरुत्तुङ्गहेमपीठानि यान्यमी ।
तैरूहे केसरिक्रान्तत्रिकूटशिखरोपमा ।।

शिशुपालवध, 2/4-5

"मय" नामक असुर ने वृषपर्वा के सुन्दर मणिमय काष्ठ को (हिमाचल के) "बिन्दुसरोवर" से लाकर जिस (सभा) को रचा था, इन्द्रपुरी की शोभा को तिरस्कृत करने वाली (युधिष्ठिर की) उस सभा को श्रीकृष्ण भगवान् ने शीघ्र प्राप्त किया अर्थात् वे सभा स्थल में पहुँचे[1]। जहाँ पर रात्रि में आकाश स्पर्शी तथा चन्द्रमा के उज्ज्वल चट्टानों से बने हुए महलों की सभा में प्रवेश करता हुआ चन्द्रमा पुनः क्षण-मात्र क्षीर-समुद्र के भीतर स्थित हुआ सा प्रतीत होता है।[2] वह सभा इन्द्रनील मणि (नीलम), पद्मराग, स्फटिक, मरकत, नाग तथा वैदूर्य- इन मणियों से बनायी गयी थी। सर्पराजों के मस्तक में उत्पन्न होने वाले रत्नों (नागमणियों) के सामीप्य होने से बार-बार ऊपर उठकर मेघों के गरजने से जिस सभा के आँगन की भूमि नये वैदूर्य मणि के उत्पन्न होने वाले अङ्कुरों से युक्त

1- उपनाय बिन्दुसरसो मयेन या मणिदारु चारु किल वार्षपर्वणम्।
विदधे अधूतसुरसद्मसम्पदं समुपासदत्सपदि संसदं स ताम्।।
शिशुपालवध, 13/50

2- अधिरात्रि यत्र निपतन्नभोलिहा कलधौतधौतशिलवेश्मनां रुचौ।
पुनरप्यवापदिव दुग्धवारिधिक्षणगर्भवासम निदाघदीधितिः।।
शिशुपालवध, 13/51

हो जाती है । अर्थात् उस सभा के आंगन की भूमि भाग मणियों से बनी हुई थी और उनकी किरणों के सामीप्य से मेघों के गरजने पर उस भूमि में वैदूर्य मणि के अंकुर होते थे ।[1] मरकत-मणि-निर्मित भवन में हरिणों की दूर्वा-भ्रान्ति का अतिसुन्दर चित्र कवि ने अंकित किया है - "उस सभा (युधिष्ठिर की) में मरकत-मणि-निर्मित भवनों से निकलने वाली किरणों को दूर्वा समझकर, उसको खाने की इच्छा से बार-बार मुख को नीचे किये हुए, अतएव जिह्वाग्र-भाग पर संलग्न अंकुर के समान किरणों वाले हरिणों को लोग दूर्वा के ग्रास को लिया हुआ सा देखते थे"।[2]

"कमलिनी के नीचे जल इस प्रकार छिपा हुआ था कि स्थल की भ्रान्ति हो जाती थी । यही नहीं उस सभा का निर्माण इस कौशल से किया गया था कि कहीं पर आगन्तुक, जल के भ्रम से दूर से ही अपना वस्त्र उठा लेते थे ।[3] इस प्रकार वहाँ कहीं जल में स्थल की कहीं स्थल में जल की भ्रान्ति होती थी ।'

1- उरगेन्द्रमूर्धरुहरत्नसन्निधेर्मुहुरुन्नतस्य रसितैः पयोमुचः ।
अभवन्यदङ्गणभुवः समुच्छ्वसन्नववालवायजमणिस्थलाङ्कुराः ।।

शिशुपालवध, 13/58

2- तृणवाञ्छया मुहुरवाञ्चिताननान्निचयेषु यत्र हरितारमवेश्मनाम् ।
रसनाग्रलग्नकिरणाङ्कुरान्जनो हरिणान्गृहीतकवलान्निवैक्षत ।।

शिशुपालवध, 13/56

3- हसितुं परेण पारितः परिस्फुरत्करवालकोमलरुचावुपेक्षितैः ।
उदकर्षि यत्र जलशङ्कया जनैर्मुहुरिन्द्रनीलभुविदूरमम्बरम् ॥

राजसूय-यज्ञ-वर्णन -

युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ का अति विस्तार से वर्णन कवि माघ ने किया है - यज्ञ करने की इच्छा वाला मैं (युधिष्ठिर) यज्ञ को आपके सान्निध्य से निर्विघ्नतापूर्वक सम्यक् प्रकार से पूर्ण करना चाहता हूँ। मैंने जिस धन की धर्मपूर्वक रक्षा की तथा उसे बढ़ाया, उस धन को मैं विधिपूर्वक मैं सत्पात्रों में दान करना चाहता हूँ। आप उसे स्वीकार (सेवन) करें तथा मैं अग्नि में हवन करूँगा।[1]

युधिष्ठिर के वचन का उत्तर श्रीकृष्ण भगवान् देते हैं- श्रीकृष्ण भगवान् ने कहा मैं आप की आज्ञा का पालन करूँगा। आप मुझे अपनी इच्छानुसार कर्तव्य कार्यों में नियुक्त कर दीजिये और यह आप का प्रयोजन (इष्टसाधन) ही है। मुझको आप अर्जुन से भिन्न मत समझिये अर्थात् अपने छोटे भाई अर्जुन के समान ही मुझे भी अभीष्ट साधन में तत्पर समझिये।[2] श्रीकृष्ण भगवान् युधिष्ठिर को अभयदान देते हुए कहते हैं - "आपके यज्ञ में जो राजा भृत्य के समान (बतलाया

1- स्वापतेयमधिगम्य धर्मतः पर्यपालयमवीवृधं च यत् ।
तीर्थगामि करवै विधानतस्तज्जुषस्व जुहवानि चानले ।।
शिशुपालवध, 14/8-9

2- शासनेऽपि गुरुणि व्यवस्थितं कृत्यवस्तुषु नियुङ्क्ष्व कामतः ।
त्वत्प्रयोजनधनं धनञ्जयादन्यमेव इति मां च मावगाः ।।
शिशुपालवध, 14/15

गया छोटा या बड़ा सब प्रकार का (काम नहीं करेगा, (उसके होने से) संसार का बन्धु यह सुदर्शन चक्र उस (राजा) के शरीर को कबन्ध बना देगा अर्थात् उसके सिर को काट देगा।[1] श्रीकृष्ण भगवान् के ऐसा कहने पर युधिष्ठिर यज्ञ करने के लिए तैयार हुए, माघ ने श्रीकृष्ण को राजसूय यज्ञ की सफलता का श्रेयोभागी बनाया है। सर्वप्रथम श्रीकृष्ण भगवान् की उपस्थिति ही यज्ञ की सफलता का मुख्य कारण है। महाकवि माघ ने शिशुपालवध के चतुर्दश सर्ग के 35 श्लोकों (14/18-52) तक राजसूय यज्ञ का वर्णन किया है।[2] श्रीकृष्ण से केवल इतना कहकर कि "आप मेरे हितकर्ता रूप में ही रहने पर मेरी सब सम्पत्ति स्थिर है। युधिष्ठिर प्रसन्न चित्त होकर यज्ञ करने के लिए समुद्यत हो गये"।[3]

1- यस्तवेह सवने न भूपतिः कर्मकर्मकरवत्करिष्यति।
तस्य नेष्यति वपुः कबन्धतां बन्धुरेव जगतां सुदर्शनः॥

शिशुपालवध, 14/16

2- इत्युदीरितगिरं नृपस्त्वयि श्रेयसि स्थितवति स्थिरा मम।
सर्वसम्पदिति शौरिमुक्तवानुद्वहन्मुदमुदास्थत क्रतौ॥

शिशुपालवध, 14/17

3- बृहत्त्रयी एक तुलनात्मक अध्ययन -

डॉ० सुषमा कुलश्रेष्ठ, पृ० 315

"मुख से चन्द्रमा की शोभा धारण करते हुए ज्ञान से काम तथा क्रोध को नष्ट किये हुए और नदी के निर्मल जल से स्नान किये वे युधिष्ठिर मुख अर्थात् मुख पर चन्द्र-कला को धारण करती हुई, देखने में कामदेव के शरीर को नष्ट करते हुए और (गंगाजी के) निर्मल जल (के प्रवाह) से आर्द्र आठ मूर्तियों को धारण करने वाले शिव जी "यजमान" नाम की आठवीं मूर्ति हुए अर्थात् यज्ञ में दीक्षित हो गये"।[1] "मीमांसा शास्त्र के ज्ञाता ऋत्विक् लोगों ने अनुवाक्या (देवता का आह्वान करने वाले मन्त्र-विशेष) से उच्च स्वर से प्रकाशित (इन्द्रादि) देवता के उद्देश्य से (घृत पायस आदि हवनीय) पदार्थों को याज्या (मन्त्रविशेष) से (अग्नि में" छोड़ा" अर्थात् वे देवताओं के आह्वान के मन्त्रों का उच्च स्वर से उच्चारण कर उन-उन देवताओं के उद्देश्य से हवन करने लगे ।[2]"

"सामवेद के ज्ञाता (उद्गाता) लोग हाथ के सन्चालन-विशेष से व्यक्त किये गये निषादादि सात स्वरों वाले सामवेद को स्खलनरहित अर्थात् कहीं पर स्खलित नहीं होते हुए उच्च स्वर से गाने लगे और सत्य तथा प्रिय बोलने वाले

1- आननेन शशिनः कलां दधद्दर्शनक्षयितकामविग्रहः ।
आप्लुतः स विमलैर्जलैरभूदष्टमूर्तिधरमूर्तिरष्टमी ॥

शिशुपालवध, 14/18

2- शब्दितामनपशब्दमुच्चकैर्वाक्यलक्षणविदोऽनुवाक्यया ।
याज्यया यजनकर्मिणोऽत्यजन्द्रव्यजातमपदिश्य देवताम् ॥

शिशुपालवध, 14/20

(होता आदि) विद्वान् लोग कल्याणकारक ऋग्वेद तथा यजुर्वेद को पढ़ने लगे"।[1]
कुशाओं की बनी हुयी मेखला को पहनी हुयी यजमान (युधिष्ठिर) की धर्म पत्नी
(द्रौपदी) के द्वारा देखे गये हविष्यों को प्रणयन आदि संस्कारों से युक्त अग्नि में
वे ऋत्विज् लोग हवन करने लगे। व्याकरणशास्त्र के ज्ञाता (ऋत्विज्) लोग सन्देह
उत्पन्न करने के लिए समान रूप वाले अर्थात् समान रूप होने से सन्देहोत्पादक,
(किन्तु) कार्य के प्रति भिन्न फल देने वाले दो समासों के विग्रह का स्वर के द्वारा
निर्णय करते थे।[2]

"दिशाओं को धूमिल करता हुआ अग्निधूम आकाश की ओर
बढ़ने लगा। समुद्रमन्थन से उत्पन्न अमृत का पान करने वाले देवता लोगों हेतु मन्त्र
पूर्वक अग्नि में हवन किया गया। वे हविष्य रूप अमृत का पान करने के लिए
उत्सुक हो गये। यज्ञ का धुआँ मानो देवताओं से प्रिय (सन्देश) कहता हुआ सा
स्वर्ग को पहुँच गया। देवों ने इस यज्ञ में हवनीय (घृत, पायस आदि हविष्य द्रव्य)
का जो शीघ्र भोजन किया, उससे वे दीर्घकाल के लिए अमर हो गये और बढ़े हुए
बल वाले देवताओं ने असुरों को भी जीत लिया"।[3]

1- सप्तभेदकरकल्पितस्वरं साम सामविदसङ्गमुज्जगौ।
तत्र सूनृतगिरश्च सूरयः पुण्यमृग्यजुषमध्यगीषत।।
शिशुपालवध, 14/21

2- संशयाय दधतोः सरूपतां दूरभिन्नफलयोः क्रियां प्रति।
शब्दशासनविदः समासयोर्विग्रहं व्यवससुः स्वरेण ते।।
शिशुपालवध, 14/22-24

3- उन्नमन्सपदि धूमयन्दिशः सान्द्रतां दधदधः कृताम्बुदः।
धामियाय दहनस्य केतनः कीर्तयन्निव दिवौकसां प्रियम्।।
शिशुपालवध, 14/28-31

यज्ञ समाप्ति पर महाराज युधिष्ठिर ने सभी को श्रेष्ठ यज्ञ दक्षिणा देकर संतुष्ट किया । युधिष्ठिर की सभा में जो व्यक्ति जिस इच्छा से आया उसकी वह इच्छा पूर्ण की गयी-याचक की इच्छानुसार देकर भी पश्चाताप नहीं किया ।[1] राजसूय यज्ञ की समाप्ति के अनन्तर धर्मशास्त्र का विचार करते हुए युधिष्ठिर जब अर्घ्यदान के विषय में भीष्म से पूछते हैं तब भीष्म सभा के अनुकूल उत्तर देते हुए श्रीकृष्ण कोही सर्वथा अर्घ्य के योग्य बताते हैं । श्रीकृष्ण भगवान् की युधिष्ठिर विधिवत् पूजा करते हैं । यह सब देखकर शिशुपाल क्रोधित होकर अपशब्द कहते हुए सभा से बाहर आ जाता है । इस प्रकार माघ द्वारा प्रस्तुत राजसूय यज्ञ का वर्णन अति-चित्रोपम है । इसमें महाकवि माघ ने अपने पाण्डित्य का तथा यज्ञ सम्बन्धी बातों के ज्ञान का परिचय दिया है ।

दूत-सम्प्रेषण-वर्णन -

इस (युद्धार्थ योद्धाओं के तैयार होने) के बाद शिशुपाल के द्वारा भेजा गया, समयानुसार उत्तर देने में समर्थ कोई दूत श्रीकृष्ण भगवान् के समीप जाकर सभा में स्पष्टतः (प्रिय तथा अप्रिय रूप) भिन्न अर्थयुक्त वचन कहने लगा ।[2]

1- नेक्षितार्थिनमवज्ञया मुहुर्याचितस्तु न च कालमाक्षिपत् ।
नादिताल्पमथ न व्यकत्थयद्दत्तमिष्टमपि नान्वशेत सः ।।
शिशुपालवध, 14/45

2- दमघोषसुतेन कश्चन प्रतिशिष्टः प्रतिभानवानथ ।
उपगम्य हरिं सदस्यदः स्फुटभिन्नार्थमुदाहरद्वचः ।।
शिशुपालवध, 16/1

शत्रु के हृदयगतभाव को जानने के लिए परम चतुर दूत लोग उनमें प्रिय तथा अप्रिय दोनों ही वचन कहते हैं । "अग्नि तथा सूर्य के तेज को प्राप्त किये हुए अभिभूत चित्तवाले तथा कर्म में समर्थ और सबको (वश में करने से) विनयशील बनाये हुए आपको कौन राजा लोग प्रणाम नहीं करते हैं ? अर्थात् सभी राजा लोग आपको प्रणाम करते हैं अप्रिय पक्ष -अग्नि में फतिंगे के समान तेज (पुरुषार्थ) वाले अर्थात् सर्वथा शक्तिहीन निश्चित रूप से अपना विनाश करने में समर्थ कार्य करने वाले और सब के वशवर्ती तुम्हारा प्रणाम किस गुण से राजा लोग करेंगे ? अर्थात् तुममें ऐसा कोई भी गुण नहीं है, जिससे राजा लोग आकर तुमको प्रणाम करेंगे"।[1] "गोपियों के साथ रति किये हुए, वृष के रूप धारण किये हुए अरिष्टासुर को मारने वाले और पाप को तिरस्कृत (दूर) किये हुए आपके इस समय भयंकर (लोकपीड़क) नरकासुर में पुरुषार्थ को जन-समूह सम्यक् प्रकार से वर्णन करते हैं अर्थात् श्रीकृष्ण भगवान् बहुत दुष्कर कार्य कर रहे हैं । इस प्रकार जनता आपकी स्तुति कर रही है । अप्रियपक्ष- गोपियों (परस्त्रियों) के साथ रति किये हुए बैल को मारते हुए (अतएव) पाप किये हुए तुम्हें भयंकर नरक की प्राप्ति होने वाली है, इस प्रकार जनता तुम्हारे विषय में सम्यक् प्रकार से कह रही है"।[2] युद्ध में शत्रुओं को मारने वाले शिशुपाल के

1- अधिवाह्नपतङ्गतेजसो नियतस्वान्तसमर्थकर्मणः ।
तव सर्वविधेयवर्तिनः प्रणतिं बिभ्रति केन भूभृतः ।।
शिशुपालवध, 16/5

2- कृतगोपवधूरतेर्घ्नतो वृषमुग्रे नरकेऽपि संप्रति ।
प्रतिपत्तिरधःकृतैनसो जनताभिस्तव साधु वर्ण्यते ।।
शिशुपालवध, 16/8

साथ इस समय मिलकर (सन्धि) आप चिरकाल तक सम्पूर्ण यादवों सहित (शिशुपाल का भय दूर हो जाने से) (विश्वस्त (डरने से निर्भय) रमणियों वाले हो जाइये । अप्रिय पक्ष-युद्ध में शत्रुओं को मारने वाले शिशुपाल के साथ इस समय भिड़कर तुम चिरकाल तक सम्पूर्ण यादवों के साथ विधवा रमणियों वाले हो जाओं अर्थात् यादवों के साथ युद्ध में मारे जाओं ।[1] शिशुपाल के दूत के शान्त होने पर श्रीकृष्ण के संकेत से सात्यकि ने उत्तरदिया, उसने भर्त्सना के साथ शिशुपाल की निन्दा की ।[2] सात्यकि ने उस दूत से पूछा कि यदि शिशुपाल श्रीकृष्ण के साथ सन्धि करना है तब उसने युद्ध की तैयारी क्यों की है ? (अतएव ऐसा प्रतीत होता है कि वह श्रीकृष्ण भगवान् से सन्धि नहीं अपितु युद्ध करना चाहता है (. श्रीकृष्ण भगवान् (सिंह) आक्रमण से उत्पन्न भय के द्वारा नम्र हो जायेंगे (सिंह दब जायेगा) यह असम्भव ही है । (अतएव श्रीकृष्ण भगवान् को डराने के लिए युद्ध की तैयारी की है, यह भी तुम नहीं कह सकते ।[3] यदि वह इस प्रकार श्रीकृष्ण को भयभीत करने या

1- समरेषु रिपून् निकृन्तता शिशुपालेन समेत्य संप्रति ।
 सुचिरं सह सर्वसात्वतैर्भव विश्वस्त विलासिनीजनः ।।

 शिशुपालवध,16/14

2- शिशुपालवध,16/16-37

3- समनह्द किमङ्ग भूपतिर्यदि संधित्सुरसौ सहामुना ।
 हरिराक्रमणेन संनतिं किल विभीतादभियेत्यसम्भवः ।।

 शिशुपालवध,16/34

धमकाने की सोच रहा है तो उसका प्रयास व्यर्थ है, क्योंकि श्रीकृष्ण का किसी के भय से विनम्र होना सम्भव नहीं। यदि वह सोच रहा है कि श्रीकृष्ण तो मेरे सौ अपराध क्षमा करने की प्रतिज्ञा कर चुके हैं और अभी सौ अपराध पूरे नहीं हुए हैं तो यह उसका भ्रममात्र है, क्योंकि उसके सौ अपराध तो कभी के पूरे हो चुके हैं अर्थात् शिशुपाल ने (दूत) तुम्हारे मुख से उन सौ अपराधों को पूरा कर दिया है।[1] सात्यकि के मर्मपूर्ण वचनों को सुनकर वह दूत भय को त्यागकर श्रीकृष्ण से बोला - आप सन्धि या विग्रह दोनों में से एक को चुन लें, किन्तु आप मेरी बात पर क्यों ध्यान देंगे, क्योंकि आप दुराग्रही हैं। इस सभा में आप की पूजा किये जाने पर भी हमारे स्वामी शिशुपाल महान् ही रहेंगे।[2] आपके द्वारा उनके सौ अपराध क्षमा किये जाने वाली बात व्यर्थ है क्योंकि उलटे शिशुपाल ही ने रुक्मिणी का अपहरण करने पर प्रतिकार में समर्थ होते हुए भी आप को क्षमा किया।[3]

1- यदपूरि पुरा महीपतेर्न मुखेन स्वयमागसां शतम्।
अथ सम्प्रति पर्यपूपुरत्तदसौ दूतमुखेन शाङ्‌गिणः।।

शिशुपालवध, 16/36

2- अबुधैः कृतमानसंविदस्तव पार्थैः कुत एव योग्यता।
महति प्लवगैरुपासितं न हि गुञ्जाफलमेति सोष्मताम्।।

शिशुपालवध, 16/47

3- अपराधशतक्षमं नृपः क्षमयाऽत्येति भवन्तमेकया।
हृतवत्यपि भीष्मकात्मजां त्वयि चक्षाम समर्थ एव यत्।।

शिशुपालवध, 16/48

"शिशुपाल ने यदुवंशियों को ललकारने के लिए ही मुझे यहाँ भेजा है, क्योंकि शूरवीर लोग चोरों के समान कपट पूर्वक (छुप-छिपकर) शत्रुओं पर आक्रमण नहीं करते हैं"।[1] अब दूत श्रीकृष्ण जी से अपने आने का प्रयोजन कहकर आत्मरक्षा करने का उपदेश देता हुआ कहता है । आप सन्धि या विग्रह दोनों में से एक चुन लीजिये । किन्तु आप मेरी बात क्यों मानेंगे । क्योंकि आप दुराग्राही हैं इस सभा में आप की पूजा होने पर भी मेरे स्वामी महान् हैं अतः जल के प्रवाह के समान नहीं रोका जाना वाला यह राजा, (शिशुपाल, तुम्हारे ऊपर आक्रमण करने के लिए), आ रहा है । (अतएव अब तुम) शीघ्र बेंत के (समान नम्र) हो जाओ, पेड़ के समान (अड़ा हुआ रहकर) नष्ट मत हो अतः शिशुपाल के सामने प्रणत होकर आत्म रक्षा कर लो ।[2]

दूत की बातों को सुनकर सभा के व्यक्ति क्षुब्ध हो उठते हैं । क्रोध उनके अंग प्रत्यंग पर छा जाता है । श्रीकृष्ण पक्षीय राजा भी शिशुपाल पक्षीय राजाओं की भाँति क्रोधित हो जाते हैं । किन्तु कृष्ण के मुख पर कोई विकार नहीं होता । इतना कह कर दूत खिसक जाता है । और दोनों सेनायें युद्ध करने लगती हैं । कवि वर्णित यह चित्रोपम युद्ध प्राचीन काल में क्षत्रियों के बीच होने वाले युद्ध की झाँकी प्रस्तुत करता है ।

1- प्रहितः प्रधनाय माधवानहमाकारयितुं महीभृता ।
न परेषु महौजसश्छलादपकुर्वन्ति मलिम्लुचा इव ।।

शिशुपालवध, 16/52

2- तदयं समुपैति भूपतिः पयसां पूर इवानिवारितः ।
अविलम्बितमेधि वेतसस्तरुवन्माधव मा स्म भज्यथा ।।

शिशुपालवध, 16/53

युद्ध - वर्णन -

शिशुपालवध का युद्ध वर्णन चरितकाव्यों की विशेषताओं से युक्त है। जैसे-युद्ध होने के पूर्व शत्रुपक्ष के यहाँ उनकी पराजय के सूचक चिह्नों-अपशकुनों का होना, सैनिकों के युद्ध के लिए प्रस्थान करते समय अपनी प्रेयसियों से मिलना, आक्रमण की तैयारी, युद्ध प्रयाण युद्धास्त्र, हाथी, घोड़ा, योद्धाओं तथा सैनिकों का यथास्थान निर्धारण, कबन्धनृत्य, तुमुलयुद्ध से धूलि का उड़ना देवताओं द्वारा युद्ध देखना, पुष्पवर्षा, अप्सराओं द्वारा वीरों को मृत्युपरान्त वरण करना, युद्धभूमि से घायलों को उठाना, सन्ध्या को युद्ध बन्द करना आदि उल्लेखों में से अधिकांश का वर्णन मिलता है।[1]

रणभेरी बज रही है। आगे हाथी आ रहे हैं, उनके पीछे घोड़े कुछ दूर पर शत्रु पक्षीय सेना की उड़ती हुयी रज दिखलायी पड़ रही है। क्षणभर में युद्धभूमि वीरों से घिर गयी। युद्ध मैदान में दोनों सेना समूह परस्पर युद्ध करने लगे। श्रीकृष्ण के सैनिक उनपर आक्रमण करते हैं-पैदल-पैदल से घोड़े-घोड़ों से हाथी-हाथी से रथी-रथी से भिड़ रहे हैं। दोनों सेनाओं में तुमुल युद्ध हो रहा है। पास में आये कोई दो वीर हाथियों को छोड़कर परस्पर मल्लयुद्ध कर रहे थे। शत्रु की तीक्ष्ण तलवार से श्यामल कवच के कट जाने पर उसमें पड़ी रक्तरेखा मेघ के बीच स्थित बिजली के समान चमक रही थी। कोई हाथी किसी वीर को

1- संस्कृत महाकाव्य की परम्परा-

डॉ०केशवराव मुसलगाँवकर, पृ०सं०-401

ज़मीन पर पटक कर उसको बीच से लकड़ी के समान चीर देता था । परस्पर सटे दो योद्धा एक ही बाण से बिद्ध होकर मरने पर भी नहीं गिरे थे । गड्ढों में एकत्र हुआ रक्त यमराज की रमणियों की साड़ी रंगने के लिए घोले हुए कुमकुम जल जैसा प्रतीत हो रहा था ।[1] जलती हुई जीभ वाली सियारिन ने युद्ध में मरे हुए तेजस्वियों के शरीर के साथ जो तेज को खाया, भीतर में गये हुए उस तेज को मानों ज्वाला के छल से वमन करती हुई वह सियारिन उच्च स्वर से चिल्लाने लगी । किसी योद्धा का शरीर बाणों से इतना बिंध गया था कि उसके मांस को खाना स्यारिनों के लिए कठिन कार्य था अतएव उन्होंने चिल्लाकर मुख से निकलती हुई ज्वाला से बाणों को जला दिया तथा उस ज्वाला से पककर मांस की अपूर्व स्वादयुक्त हो गया । ऐसे मांस को सियारिनों ने खाया ।[2] संग्राम में शिशुपाल की सेना को हारता देख बाणासुर का पुत्र वेणुदारी मत्त हाथी के समान यादव सेना पर टूट पड़ा । बलराम जी ने सिंह के समान गरज कर उसकी गर्दन काट दी।[3] वेणुदारी के मरने के बाद श्रीकृष्ण के वीर पुत्र प्रद्युम्न ने उत्तमौजा को परास्त किया। तब शिशुपाल ने अपनी चतुरंगिणी सेना सहित प्रद्युम्न पर आक्रमण किया । चारों

1- शिशुपालवध, 18/51-69

2- "ओजोभाजां यद्रणे संस्थितानामादत्तौघं सार्धमङ्गेन नूनम् ।
ज्वालाव्याजादुद्वमन्ती तदन्तस्तेजस्तारं दीप्तजीह्वावाशी ।।
शिशुपालवध, 18/75-76

3- आपतन्तममुं दूरादूरीकृतपराक्रमः ।
बलोऽवलोकयामास मातङ्गमिव केसरी ।।
शिशुपालवध, 19/2

ओर से आती सेना को उस वीर ने वैसा रोका, जैसे चारों ओर से आती नदियों को अकेला रोकता है।[1] उस समय शत्रु के बाणों से बिंधा प्रद्युम्न का शरीर मंजरीयुक्त विशाल वृक्ष के समान सुशोभित हो रहा था।

इस वीर बालक का एक भी बाण विफल नहीं होता था, शिशुपाल की सेना में क्षण भर में त्राहि-त्राहि मच गयी। देवता लोग बालक की वीरता पर प्रसन्न होकर पुष्पवृष्टि करने लगे।[2] इसके बाद शिशुपाल अपनी अक्षौहिणी सेना के साथ युद्ध के लिए आगे बढ़ा। शिशुपाल की वह विकट शस्त्र सज्जा काव्य रचना के समान, सर्वतोभद्र, चक्रबन्ध, गोमूत्रिकाबन्ध, मुरजबन्ध तथा अर्धभ्रमक बन्ध आदि से युक्त दुर्जेय दिखायी दे रही थी।[3]

1- समं समन्ततो राजा मापतन्तीरनीकिनीः ।
कार्ष्णिः प्रत्यग्रहीदेकः सरस्वानिव निम्नगाः ।।

शिशुपालवध, 19/10-12

2- सुगन्धयद्दिशः शुभ्रमम्लानि कुसुमं दिवः ।
भूरि तत्रापतत्तस्मादुत्पपात दिवं यशः ।।

शिशुपालवध, 19/20

3- शिशुपालवध, 19/27-29

उभय दलों में विकट संग्राम होने लगा । सेना के असंख्य हाथियों घोड़ों तथा वीरों का संहार करता हुआ शिशुपाल तेजी से आगे बढ़ रहा था । इस प्रकार शिशुपाल की विजय सुनकर भगवान का (पाञ्चजन्य) शंख बोल उठा । अत्यन्त देदीप्यमान् रथ पर आरूढ़ महाधनुष लिए हुए भगवान् संग्राम में आये ।[1] उनके आते ही शंख ध्वनि से गगन कम्पित हो उठा । क्षणमात्र में शिशुपाल की वह सप्त पंक्तिबद्ध सेना-व्यूह भगवान् के एक ही बाण में ध्वस्त हो गयी । उस समय क्रोध में भगवान् एक साथ इतने बाणों को छोड़ रहे थे कि उन बाणों से आकाश ढक गया था । सूर्य भी दिखायी नहीं दे रहे थे ।[2] संग्राम में भगवान् के पराक्रम को देखकर सिंहनाद करता हुआ प्रलयकाल की अग्नि के समान धधकता हुआ तीक्ष्ण

1- अथपक्षोमणिच्छायाच्छुरितापीतवाससा ।
स्फुरदिन्द्रधनुर्भिन्नतडितेव तडित्वता ।।

शिशुपालवध, 19/83-93

2- सत्वंमानविशिष्टमाजिरभसादालम्ब्यंभव्य: पुरो,
लब्धावक्षयशुद्धिरुद्धरतरश्रीवत्सभूमिर्मुदा ।
मुक्त्वा काममपास्तभी: परमृगव्याघा: स नादं हरे-
रेकाद्यै: समकालमभ्युदयी रोपैस्तदा तस्तरे ।।

शिशुपालवध, 19/120

बाण बरसाने लगा । उसके बाणों से आकाश के ढक जाने से कुछ और [illegible] दिखायी नहीं पड़ रहे थे । शिशुपाल के वध के समान धनुष्टंकार से पृथ्वी हिल रही थी ।[1] योद्धा के रूप में श्रीकृष्ण का यह स्वरूप– "श्रीकृष्ण भगवान् के द्वारा कान के समीप तक खींचकर लायी गयी प्रत्यन्चावाला धनुष, बरसात के बाद (शरद ऋतु में) मदोन्मत्त बहुत से क्रौन्च पक्षियों के ध्वनि (कलरव) के समान उच्च स्वर से ध्वनि (टंकार) करने लगा"।[2]
इसमें कृष्ण के वीरासन की शोभा का वर्णन है – "धनुष खिंचने के समय श्रीकृष्ण भगवान् विशाल वक्षःस्थल से कंधों को झुकाये हुए, मयूर के समान शोभायमान मस्तक वाले अर्थात् सिर को उठाये, भगवान् इस तेजी से बाण छोड रहे थे कि देखने वालों की निगाहें उन पर टिक नहीं रही थीं । अच्छी तरह आसन जमा कर स्थित होने से श्रीकृष्ण भगवान् क्षणमात्र चित्रलिखित जैसे शोभित हुए क्या'?[3]

1- अमनोरमतां यतौ जनस्य क्षणमालोकपथान्नभःसदां वा ।
रुधोपहिताहिमद्युतिर्द्वौ शिखरेन्तरिताच्युता धरित्री ।।

शिशुपालवध, 20/15

2- प्रतिकुञ्चितकर्णपूरिण तेन श्रवणोपान्तकनीयमानगत्यम् ।
ध्वनति स्म धनुर्घनान्तमत्तप्रचुरक्रौन्चरवानुकारमुच्चैः ।।

शिशुपालवध, 20/19

3- उरसा विततेन पातितांसः स मयूरान्चितमस्तकस्तदानीम् ।
क्षणमालिखितो नु सौष्ठवेन स्थिरपूर्वापरमुष्टिराबभौ वा ।।

शिशुपालवध, 20/20

श्रीकृष्ण से हारकर शिशुपाल ने भगवान् को मारा डाला जाने के लिए प्रस्वापन अस्त्र चलाया पर भगवान के कौस्तुभमणि के सामने होते ही वह विलीन हो गया। तदुपरान्त शिशुपाल ने नागास्त्र छोड़ा जिससे बड़ी-बड़ी फणाओं को धारण करते हुए एवं दाँतों से निरन्तर विष उगलते हुए असंख्य सर्प प्रकट होकर सेना पर आक्रमण करने लगे। किन्तु भगवान् के रथ की ध्वजा पर बैठे हुए गरुड़ जी भगवान् का संकेत पाते ही असंख्य रूप धारण कर स्थल में उड़ने लगे उनके भय से सभी सर्प पाताल में छिप गये। फिर शिशुपाल ने आग्नेयास्त्र छोड़ा परन्तु भगवान् के मेघास्त्र के सामने वह भी विफल हो गया। इस प्रकार सब तरफ से हार कर शिशुपाल भगवान् को कटु वचनों से उत्तेजित करने लगा। राजसूय यज्ञ में शिशुपाल की अभद्रवाणी सुनकर उसके वध का निश्चय कर चुके श्रीकृष्ण ने शिशुपाल के सिर को सुदर्शन चक्र से काट दिया।[1]

1- शिशुपालवध, 20/37-77

(चतुर्थ अध्याय)

अलंकार

अलंकार रसोत्कर्षक होते हैं किन्तु रस के साक्षात उपकारक नहीं, परम्परया उपकारक हैं । रस के अंगरूप जो शब्द और अर्थ हैं अलंकार उनमें उत्कर्ष की स्थापना करते हैं । काव्य की आत्मा शब्द और अर्थ की शोभा बढ़ाते हुए काव्य की आत्मा रस के भी उत्कर्षक हो जाते हैं - जैसे हार आदि आभूषण कण्ठ की शोभा बढ़ाते हुए कामिनी सौन्दर्य वर्धक होते हैं । अतः ये रस के धर्म नहीं हैं । रस धर्म रूप गुणों से पृथक हैं ।

अङ्गद्वारेणेत्यनेन रसधर्मत्वनिरस्तम् ।[1]

काव्य में अलंकारों की उपयोगिता काव्य के वाच्य-वाचक रूप अङ्गों की शोभावृद्धि के ही कारण है - जैसा कि लोचनकार ने कहा है कि अलंकार सम्प्रदाय के प्रवर्तक भामह, उद्भट, रुद्रट, दण्डी, वामन, आदि हैं, क्योंकि इन्हें भी काव्य में अलंकार की प्रधानता स्वीकृत थी ।[2] दण्डी ने अपने काव्यादर्श

1- मम्मटकृत काव्यप्रकाश- डॉ० श्रीनिवास शास्त्री, पृ०सं० 410

2- तमर्थमवलम्बन्ते येऽङ्गिनं ते गुणाः स्मृताः-वाच्यवाचक लक्षणान्यङ्गानि ये पुनस्तदाश्रितास्तेऽलङ्कारा: मन्तव्या कटकादिवत्- ध्वन्यालोक, 2/6

में गुणों एवं रीतियों को अलंकार के तुल्य प्रधानता दी है। अलंकार सम्प्रदाय के अनुसार अलंकार ही काव्य का प्रधान तत्व है। काव्य में अलंकार का महत्त्व प्रकट करने के हेतु मम्मट ने "अनलंकृति पुनः क्वापि" तथा "क्वचित्‌ स्फुटालंकार विरहेऽपि न काव्यत्वहानिः" कहते हुये यह अभिव्यक्त किया है कि स्फुट अलंकारों के बिना भी काव्य हो सकता है। इस प्रकार यह कहना उचित एवं तर्कसंगत नहीं है कि मम्मट ने अलंकार रहित ग्रन्थ को भी काव्य कहा है[1-2]।

जयदेव ने कहा है कि जो विद्वान्‌ काव्य को अलंकार हीन मानते हैं वे अग्नि को अनुष्ण क्यों नहीं मानते[3]। रुय्यक ने प्राचीन आलंकारिकों के मतानुसार काव्य में अलंकारों की सत्ता प्रधान रूप से स्वीकार की है[4]। वामन ने काव्य को अलंकारयुक्त होने से ग्राह्य बताया है किन्तु वामन ने यहाँ "अलंकार" शब्द का प्रयोग व्यापक अर्थ में किया है। उनका तात्पर्य काव्य के "सौन्दर्यमात्र" से है और काव्य सौन्दर्य से ही उपादेय होता है। इस सौन्दर्य के निमित्त साधनभूत उपमादि है। साधनदृष्टि से ही उन्हें अलंकार कहा है।

1- काव्यप्रकाश - डॉ० श्रीनिवास शास्त्री, पृ०सं०4।।

2- संस्कृत महाकाव्य की परम्परा-डॉ०केशवराव मुसलगांवकर, पृ०सं०40

3- "अंगीकरोति यः काव्यं शब्दार्थावनलंकृति।
असौ न मन्यते कस्मादनुष्णमनलंकृति"।। चन्द्रलोक, 1/8

4- "तदेवमलंकारा एव काव्ये प्रधानमिति प्राच्यानां मतम्‌"।
अलंकार सर्वस्व, पृ० 6

अलंकारों के आद्य प्रवर्तक आचार्य भामह ने वक्रोक्ति को ही सम्पूर्ण अलंकारों का आधार तत्व माना है । उनका कथन है कि वक्रोक्ति के द्वारा ही अर्थ चमत्कृत हो उठता है । अतः सफल कवि को वक्रोक्तिप्रदर्शन में प्रयास करना चाहिये क्योंकि इसके बिना कोई अलंकार सम्भव नहीं होता । जिन कथनों में वक्रोक्ति का अभाव रहता है उन्हें अलंकार नाम से अभिहित नहीं करना चाहिये।[1-3]

सर्वप्रथम भरत ने नाट्योपयोगी चार अलंकारों का प्रयोग नाट्य शास्त्र में किया है । वे हैं- उपमा, दीपक, रूपक और यमक इसमें तीन अर्थालंकार और एक एक शब्दालंकार (यमक) है[4] । इन्हीं चार अलंकारों का विकसित और परिवर्धित रूप 125 संख्या में कुवलयानन्द में देखने को मिलता है ।

1- रुद्रट का काव्यालंकार - डॉ0 सत्यदेव चौधरी, पृ0सं0 37

2- संस्कृत महाकाव्य की परम्परा, डॉ0 केशवराव मुसलगांवकर, पृ0सं040

3- "सैषा सर्वत्र वक्रोक्तिरनयार्थो विभाव्यते ।
यत्नोऽस्यां कविना कार्यः कोऽलंकारोऽनया विना ।।"

काव्यालंकार, 2/85

4- "उपमा दीपकं चैव रूपकं यमकं तथा तथा काव्यस्यैते ह्यलंकाराश्चत्वारः परिकीर्तिताः ।।"

नाट्यशास्त्र, 16/41

इसके अतिरिक्त वामन ने उपमा को, दण्डी ने अतिशयोक्ति को अलंकारों का मूल माना है[1]। इन विद्वानों ने अलंकार को प्रधान रूप से स्वीकार किया है। जिस प्रकार नायिका का मुख कान्त होने पर भी अनलंकृत होने पर शोभा नहीं देता उसी प्रकार कान्तिगुण विभूषित होने पर अलंकृत कविता में विभावन की सामर्थ्य उदित नहीं होती है। अतः भामह ने अलंकार को काव्य का अनिवार्य तत्व माना है[2]।

दण्डी के अनुसार काव्य का शरीर इष्टार्थव्यवच्छिन्ना पदावली है और वह शरीर अलंकार युक्त होता है। अलंकार शब्द का प्रयोग यहाँ अत्यन्त साधारण ढंग से किया गया है[3]।

ध्वनि में जिस प्रकार की रचना रस से आक्षिप्त रूप में बिना किसी प्रयत्न के हो सके, वही अलंकार मान्य है।

<u>शिशुपालवध में अलंकार -</u>

"माघे सन्ति त्रयो गुणाः" अर्थात् माघ काव्य में उपमा-प्रयोग, अर्थ गाम्भीर्य एवं पदलालित्य एकत्र समवाय होने से माघ काव्य में प्रति श्लोक

1- काव्यालंकार, चतुर्थ अधिकरण, द्वितीय अध्याय;
   काव्यादर्श, 2/20

2- "न कान्तमपि निर्भूषं विभाति वनिताननम्" काव्यालंकार, 1/15

3- "काव्यशोभाकरान् धर्मानलङ्कारान् प्रचक्षते।
   काश्चिन्मार्गविभागार्थमुक्ताः प्रागप्यलङ्क्रियाः।" काव्यादर्श, 2/3

में अलंकारों का अधिकाधिक प्रयोग करना ही माघ पण्डित का लक्ष्य था । उनके समस्त प्रयोगों पर विस्तार से निरूपण करना यहाँ सम्भव नहीं है क्योंकि इससे माघ के अलंकारों पर एक स्वतन्त्र प्रबन्ध प्रस्तुत किया जा सकता है । फिर भी माघ के कुछ विशिष्ट अलंकार प्रयोगों व प्रमुख अलंकारों के संगुम्फन में उनकी प्रौढ़ता का निरूपण करना हमारा लक्ष्य है ।

महाकवि माघ अलंकृत शैली के कवि थे।अलंकार प्रयोग कवि की अपनी कुशलता पर निर्भर करता है । प्रत्येक वर्णन प्रत्येक भाव साधारण शब्दों में न होकर अलंकारों से विभूषित भाषा में प्रकट किया गया है । इनके अलंकारों की नवीनता देखते ही बनती है । अर्थालंकारों में श्लेष का प्रयोग उत्तम-रीति से किया गया है । स्थान-स्थान पर उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा, स्वभावोक्ति, समासोक्ति, अतिशयोक्ति, काव्यलिङ्ग सहोक्ति, तुल्योगिता विरोध आदि का भी प्रयोग हुआ है ।[1] शब्दालंकारों और चित्रालंकारों में भी माघ प्रवीण थे । यमक, अनुप्रास, श्लेष, अनुलोम, प्रतिलोम, एकाक्षरबन्ध, सर्वतोद्र, मुरजबन्ध, खड्गबन्ध आदि शब्दालंकारों का प्रयोग भी स्पष्ट रूप से उनके काव्य में परिलक्षित होता है ।

अर्थालंकार -

शिशुपालवध के प्रथम श्लोक में जगन्निवास महान आधेय का वसुदेव-सदम लघु आधार में निवास करना कहा गया है । अतः अधिक नामक अर्थालंकार है ।

1- संस्कृत कविदर्शन- डॉ० भोलाशंकर व्यास, पृ० 186

2- शिशुपालवध महाकाव्य-महाकवि माघ, पृ० सं० 2

श्रियः पतिः श्रीमति शासितुं जगज्जगन्निवासो वसुदेव सद्मनि ।

वसन्ददर्शावतरन्तमम्बराद्धिरण्यगर्भाङ्गभुवं मुनिं हरिः ।।[1]

"आश्रयाश्रयिणोरेकस्याधिक्येऽधिकमुच्यते" (सा०द०) जो जगन्निवास है उनका वसुदेव सद्रूप जगत् के एक अतिस्वल्प भाग में निवास कथन किये जाने पर यहाँ विरोध नामक अर्थालंकार भी है ।[2]

यहाँ पूर्वोक्त अलंकार का अन्योऽन्य निरपेक्ष भाव से तिल-तण्डुल की भाँति एक समावेश हुआ है । अतः इस प्रकार के समावेश को अलंकार संसृष्टि कहाजायेगा[3] । ऐसा ही कुछ अलंकार सर्वस्व में दृष्टिगत होता है -तिल तण्डुल न्यायेन मिश्रत्वं संसृष्टिः ।

कवि वंश वर्णन के चौथे श्लोक में भी विरोध अलंकार है । इसके आश्रय अद्वितीय तथा सज्जनों में प्रधान जिस दत्तक ने आनन्द को प्राप्त किये हुए सब लोगों से कथित "सर्वाश्रय" इस दूसरे गौण अनिन्दनीय नाम को स्वयं प्राप्त किया । यहाँ दूसरे नाम वाले को अद्वितीय होना, स्वयं नाम प्राप्त करने वाले को दूसरे के दिये हुए नाम को प्राप्त करना, एवं मुख्य का गौण होना परस्पर विरुद्ध है । अतः विरोध अलंकार है । सम्बद्ध श्लोक द्रष्टव्य है -

सर्वेण सर्वाश्रय इत्यनिन्द्यमानन्दभाजा जनितं जनेन ।

यश्च द्वितीयं स्वयमद्वितीयो मुख्यः सतां गौणमवाप नाम ।।[4]

1- शिशुपालवध, 1/1

2- "विरोधः सोऽविरोधेऽपि विरुद्धत्वेन यद्वचः" - काव्यप्रकाश, पृ०सं० 537

3- "मिथोऽनपेक्षयैतेषां स्थितिः संसृष्टिरुच्यते" -साहित्यदर्पण 2/4

4- शिशुपालवध, कविवंशवर्णन, श्लोक 4था

उपमा अलंकार - साधर्म्यमुपमा भेदे -

उपमान तथा उपमेय का भेद होने पर दोनों की गुण क्रिया आदि धर्म की समानता का वर्णन उपमालङ्कार है[1]।

शिशुपालवध के प्रथम सर्ग के चौथे श्लोक में उपमा अलंकार है -

नवानधोऽधो बृहतः पयोधरान् समूढकर्पूरपरागपाण्डुरम् ।
क्षणं क्षणोत्क्षिप्तगजेन्द्रकृत्तिना स्फुटोपमं भूतिसितेन शम्भुना ।।[2]

श्रीकृष्ण ने नये बादलों के नीचे ढेर किये गये कर्पूर की धूलि के समान श्वेत वर्ण, ताण्डव नृत्यकाल में ऊपर हाथी के चर्म को ओढ़े हुए तथा भस्म से शुभ्र वर्ण शिव के समान नारद को देखा । यहाँ पर समूढकर्पूरपरागपाण्डुरम्" में वाचक लुप्तोपमा है तथा क्षणोत्क्षिप्त गजेन्द्रकृत्तिना शम्भुना में धर्मलुप्तोपमा है । यहाँ नारद की उपमा शिव जी से दी गयी है । कहीं कहीं उपमा अनुप्रास का वर्णन है । श्लोक द्रष्टव्य है -

पिशङ्गमौञ्जीयुजमर्जुनच्छविं वसानमेणाजिनमञ्जनद्युति ।
सुवर्णसूत्राकलिताधराम्बरां विडम्बयन्तं शितिवाससस्तनुम् ।।[3]

पीली मूंज की करधनी पहने हुए शुभ्रवर्ण और अन्जन के समान मृगचर्म को धारण किये हुए,तथा सोने की करधनी से बंधी नीली धोती वाले बलराम के शरीर का अनुकरण करते हुए नारद जी को कृष्ण ने देखा । यहाँ उपमेय नारद

1- काव्यप्रकाश-आचार्य मम्मट, कारिका संख्या 125

2- शिशुपालवध, 1/4

3- शिशुपालवध, 1/6

पुल्लिङ्ग तथा उपमेय बलदेव, तनु स्त्रीलिङ्ग है । इसे साहित्याचार्यों ने भग्नप्रक्रम नामक दोष माना है ।

11वें सर्ग के 18वें श्लोक में एक और सुन्दर उपमा का वर्णन है ।

अनिमिषमविरामा रागिणां सर्वरात्रं नवनिधुवनलीलाः कौतुकेनातिवीक्ष्य ।
इदमुदवसितानामस्फुटालोकसंपन्नयनमिव सनिद्रं घूर्णते दैपमर्चिः ।।[1]

सूर्योदय कालीन प्रकाश के कारण मन्द होती हुई प्रकाशश्री वाली दीपक की लौ निरन्तर निर्निमेष होकर सम्पूर्ण रात्रि में अनुरागी पुरुषों एवं अनुरागिणी रमणियों की नयी-नयी सुरत क्रीड़ाओं को कौतुक से देखकर मानों निद्रापरवश इन मकानों के नेत्रों के समान घूम रही है ।

एक और शास्त्रीय उपमा का उदाहरण जहाँ नीतिशास्त्र के प्रतिकूल एक पैर भी रखने का विधान नहीं है । ऐसी सुन्दर जीविका उचित पारितोषिक वाली राजनीति गुप्तचरों के बिना उसी प्रकार नहीं शोभती है जिस प्रकार सूत्र (पाणिनि प्रणीत सूत्रों) के अविरुद्ध पद (कृदन्ततद्धितान्त समस्त आदि पद) तथा न्यास है जिसमें ऐसी वृत्ति वाली श्रेष्ठ निबन्धन भी शब्द विद्या (व्याकरणशास्त्र) स्पर्श के बिना नहीं शोभती है ।

1- शिशुपालवध, 11/18

इस सन्दर्भ में सम्बद्ध श्लोक द्रष्टव्य है -

अनुत्सूत्रपदन्यासा सद्वृत्तिः सन्निबन्धना ।
शब्दविद्येव नो भाति राजनीतिरपस्पशा ॥[1]

अधोलिखित श्लोक में भी उपमालंकार है -

स्थायिनोऽर्थे प्रवर्तन्ते भावाः सञ्चारिणो यथा ।
रसस्यैकस्य भूयांसस्तथा नेतुर्महीभृतः ॥[2]

जिस प्रकार श्रृंगारादि रस के रति आदि स्थायीभाव के लिए अनेक सन्चारी, व्यभिचारी भाव प्रवृत्त होते हैं उसी प्रकार क्षमाशील, स्थिर क्षमापूर्वक समय की प्रतीक्षा करते हुए एक राजा के लिए कार्य को घटित करने वाले बहुत से राजा उसके सहायक होते हैं ।

कहीं पर उपमा और अतिशयोक्ति अलंकारों की संसृष्टि भी है-

न यावदेतावुदपश्यदुत्थितौ जनस्तुषाराञ्जनपर्वताविव ।
स्वहस्तदत्ते मुनिमासने मुनिश्चिरन्तनस्तावदभिन्यवीविशत् ॥[3]

नारद जी शुभ्र होने से हिमालय के समान तथा श्रीकृष्ण भगवान् श्याम होने से नीलगिरि पर्वत के समान थे । यहाँ उपर्युक्त श्लोक में जनशब्द जाते अर्थ में प्रयुक्त हुआ है । अतः एक वचन होते हुए भी यह बहुवचन का अर्थ द्योतित करता है । ऐसे स्थान पर बहुवचन का भी प्रयोग हो सकता है ।

1- शिशुपालवध, 2/112

2- शिशुपालवध, 2/87

3- शिशुपालवध, 1/15

अधोलिखित श्लोक में भी उपमालंकार है -

क्वचिज्जलापायविपाण्डुराणि धौतोत्तरीयप्रतिमच्छवीनि ।

अभ्राणि बिभ्राणमुमाङ्गसङ्गविभक्तभस्मानमिव स्मरारिम् ।।[1]

पानी बरसने से धुले हुए दुपट्टे के समान शुभ्रवर्ण मेघों से युक्त होने के कारण पार्वती जी के शरीर के स्पर्श होने से उस-उस स्थान का भस्म गिर जाने पर शिव जी के शरीर के समान स्थित रैवतक को श्रीकृष्ण भगवान् ने देखा । जहाँ जहाँ शुभ्र मेघ थे -वहाँ-वहाँ शिव जी के भस्मयुक्त शुभ्र शरीर के समान, तथा जहाँ जहाँ पार्वती के स्पर्श से भस्म छूट गया था वहाँ-वहाँ शिव जी के भस्म रहित शरीर के समान रैवतक को कृष्ण ने देखा ।

माघ का अधोलिखित उपमा वर्णन बड़ा रोचक है -

आयन्तीनामविरतरयं राजकानीकिनीना,

मित्थं सैन्यैः सममलघुभिः श्रीपतेरूर्मिमद्भिः ।

आसीदोघैर्मुहुरिव महद्वारिधेरापगानां,

दोलायुद्धं कृतगुरुतरध्वानमौद्धत्यभाजाम् ।।[2]

जिस प्रकार बड़े वेग से आगे की ओर बढ़ती हुयी नदियाँ समुद्र के बड़े-बड़े तरंगों में बहुत शब्द करती हुई मिलकर हिलोरा खाने लगती है उसी प्रकार बड़े वेग से तथा आगे बढ़ती हुई शिशुपालपक्षीय राजाओं की सेनायें श्रीकृष्ण भगवान् की सेना में बड़े कोलाहल के साथ दोला युद्ध करने लगी । यहाँ पर शिशुपालपक्षीय

1- शिशुपालवध, 4/5

2- शिशुपालवध, 18/80

राजसमूह की सेना को नदियों की तथा भगवान् की सेना को समुद्र की उपमा देकर कवि ने कृष्ण की सेना का श्रेष्ठ होना सूचित किया है ।

व्यतिरेक अलंकार -

"उपमानाद्यदन्यस्य व्यतिरेकः स एव सः[1] ।

ऐसा व्यतिरेक अलंकार के विषय में कहा गया है । इस प्रकार व्यतिरेक वह अलंकार है जहाँ उपमान की अपेक्षा अन्य अर्थात् उपमेय का व्यतिरेक वर्णित किया जाता है । अधोलिखित श्लोक में यह पूर्ण दृष्टव्य है -

गतं तिरश्चीनमनूरुसारथेः प्रसिद्धमूर्ध्वज्वलनं हविर्भुजः ।

पतत्यधो धाम विसारि सर्वतः किमेतदित्याकुलमीक्षितं जनैः ।।[2]

उपर्युक्त श्लोक का अर्थ यहाँ पर मुनिधाम उपमेय है । जो सूर्य और अग्नि इन दोनों उपमानों की अपेक्षा अधः प्रसरण रूप धर्म द्वारा अधिक कहा गया है । अतः इसे व्यतिरेक अलंकार कहा जायेगा ।

इसी प्रकार एक और स्थल पर व्यतिरेक अलंकार दृष्टव्य है -

तुरगशताकुलस्य परितः परमेकतुरङ्गजन्मनः,

प्रमथितभूभृतः प्रतिपथं मथितस्य भृशं महीभृता ।

परिचलतो बलानुजबलस्य पुरः सततं धृतश्रिय-

श्चिरविगतश्रियो जलनिधेश्च तदाभवदन्तरं महत् ।।[3]

1- काव्यप्रकाश- मम्मट, कारिका संख्या, 159

2- शिशुपालवध, 1/2

3- शिशुपालवध, 3/82

श्रीकृष्ण भगवान् सैकड़ों घोड़ों से व्याप्त श्री से युक्त प्रत्येक मार्ग में राजाओं को जीतने वाली सेना में केवल एक घोडा (उच्चैः श्रवा) को उत्पन्न करने वाले मन्दराचल द्वारा मथे गये बहुत समय तक लक्ष्मी रहित समुद्र में बड़ा अन्तर था । कृष्ण की उक्त सेना की तुलना समुद्र कदापि नहीं कर सकता । इसमें व्यतिरेक अलंकार है ।

अधोलिखित श्लोक में भी व्यतिरेक अलंकार है -

मुदितयुवमनस्कास्तुल्यमेव प्रदोषे,
स्त्वमदधुरुभय्यः कल्पिता भूषिताश्च ।
परिमलरुचिराभिर्न्यक्कृतास्तु प्रभाते
युवतिभिरुपभोगान्नीरुचः पुष्पमालाः ।।[1]

रात्रि में युवकों के मन को मुदित करने वाला उपभोग के लिए कल्पित वस्त्र तथा भूषण से अलंकृत, पुष्पमालाएं तथा रमणियां ये दोनों ही समान शोभा धारण करती थीं किन्तु प्रभात काल में उपभोग से कान्तिहीन पुष्पमालाओं को मर्दनादिजन्य सुगन्धि से रुचिर रमणियों ने तिरस्कृत कर दिया । इस श्लोक में व्यतिरेक अलंकार है ।

1- शिशुपालवध, 11/27

काव्यलिङ्ग अलंकार -

"काव्यलिङ्ग हेतोर्वाक्यपदार्थता" काव्यलिङ्ग वह अलंकार है जिसमें वाक्यार्थ या पदार्थ के रूप में किसी अनुपपन्न अर्थ का उपपादक हेतु व्यक्त किया जाता है[1]।

चयस्त्विषामित्यवधारितं पुरा ततः शरीरीति विभाविताकृतिम् ।
विभुर्विभक्तावयवं पुमानिति क्रमादमुं नारद इत्यबोधि सः ।।[2]

प्रथम सर्ग में श्रीकृष्ण भगवान् ने पहले नारद जी को ये तेजपुञ्ज है - ऐसा निर्णय किया; हाथ पैर आदि के दिखलायी देने पर यह देहधारी है- ऐसा निर्णय किया । इस क्रम से यह नारद जी हैं ऐसा जाना । यहाँ "विभाविताकृति विशेषण पदार्थ शरीरयुक्त होने तथा विभक्तावयव विशेषण पदार्थ "पुमान्" होने के ज्ञान का हेतु है । अतः इसमें पदार्थ हेतुक काव्यलिङ्ग अलंकार है ।[3]

प्रथम सर्ग के 14वें श्लोक में भी काव्यलिङ्ग अलंकार है-

तमर्घ्यमर्घ्यादिकमादिपूरुषः सपर्यया साधु स पर्यपूपुजत् ।
गृहानुपैतुं प्रणयादभीप्सवो भवन्ति नापुण्यकृतां मनीषिणः ।।[4]

आदि पुरुष उन श्रीकृष्ण भगवान् ने अर्घ्य आदि पूजा सामग्रियों से पूज्य नारद जी की विधिपूर्वक पूजा की क्यों कि महात्मा लोग अपुण्यात्माओं के घर पर प्रेम से आना नहीं चाहते हैं ।

1- काव्यप्रकाश- मम्मट, कारिका संख्या-174

2- शिशुपालवध, 1/3

3- हेतुवाक्य पदार्थत्वे काव्यलिंगमिमद्यते- साहित्यदर्पण, पृ0 802

4- शिशुपालवध, 1/14

भाव यह है कि सन्त बड़े भाग्य से प्राप्त होते हैं अतएव जिन पुण्यवान् जनों के वे बिना बुलाये ही प्रेम-पूर्वक दर्शन दें उन्हें उनका आदर सत्कार करना ही चाहिये। यहाँ उत्तरार्ध पूर्वार्द्ध का हेतु जान पड़ता है। अतः काव्यलिङ्ग अलंकार है।

अमृतं नाम यत्सन्तो मन्त्रजिह्वेषु जुह्वति।
शोभैव मन्दरक्षुब्धक्षुभिताम्भोधिवर्णना ॥[1]

"वाक्यपदार्थयोर्हेतुहेतुमद्भावाद्वाक्यार्थहेतुकं काव्यलिङ्गमलंकारः"[2]

विद्वान् लोग जो अग्नियों में हवन करते हैं वही अमृत है। मन्दराचल रूप मन्थनी से मथे गये समुद्र का वर्णन केवल शोभामात्र है। यहाँ भी काव्यलिङ्ग अलंकार है।

अधोलिखित श्लोक में भी काव्यलिंग अलंकार है-

क्षितिप्रतिष्ठोऽपि मुखारविन्दैर्वधूजनश्चन्द्रमधश्चकार।
अतीतनक्षत्रपथानि यत्र प्रसादशृङ्गाणि वृथाऽत्यरक्षत् ॥[3]

भूमिस्थित वधूजन का आकाशस्थ चन्द्रमा को नीचा करना असम्भव होने से विरोध आता है। उसका परिहार पक्षान्तरीय अर्थ से करना चाहिये। आशय यह है कि द्वारिकापुरी की स्त्रियों के मुख चन्द्रमा से सुन्दर थे तथा वहाँ के महल नक्षत्रों के

1- शिशुपालवध, 2/107

2- शिशुपालवध, 2/107

3- शिशुपालवध, 3/52

मार्ग से भी अधिक ऊँचे थे । यहाँ उत्तरार्द्ध पूर्वार्द्ध का हेतु ज्ञात पड़ता है । अतः काव्यलिंग अलंकार है ।

इसी प्रकार चौथे सर्ग के 17वें श्लोक में भी यह अलंकार दृष्टव्य है -

दृष्टोऽपि शैलः स मुहुर्मुरारेरपूर्ववद्विस्मयमाततान ।
क्षणे क्षणे यन्नवतामुपैति तदेव रूपं रमणीयतायाः ।।[1]

चौथे सर्ग में रैवतक का वर्णन श्रीकृष्ण के आश्चर्य को बढ़ा देता है, जो प्रतिक्षण नवीनता धारण करता है वही रमणीयता का स्वरूप है । यहाँ वाक्यार्थ में विस्मय का वर्णन है । अतः काव्यलिङ्ग अलंकार है ।

इसी प्रकार अन्य स्थलों पर भी इन्हीं अलंकारों का जिक्र मिलता है । श्लोक दृष्टव्य हैं -

बह्वपि प्रियमयं तव ब्रुवन्न व्रजत्यनृतवादितां जनः ।
सम्भवन्ति यददोषदूषिते सार्व सर्वगुणसम्पदस्त्वयि ।।[2]

हरत्यघं संप्रति हेतुरेष्यतः शुभस्य पूर्वाचरितैः कृतं शुभैः ।
शरीरभाजां भवदीयदर्शनं व्यनक्ति कालत्रितयेऽपि योग्यताम् ।।[3]

1- शिशुपालवध, 4/17

2- शिशुपालवध, 14/4

3- शिशुपालवध, 1/26

रूपक अलंकार –

"तद्रूपकमभेदो य उपमानोपमेययोः" जो उपमान तथा उपमेय का अभेदारोप आरोपित या कल्पित अभेद है, वह रूपक अलंकार कहलाता है ।[1]

अरुणजलजराजीमुग्धहस्ताग्रपादा बहुलमधुपमालाकज्जलेन्दीवराक्षी ।
अनुपतति विरावैः पत्त्रिणां व्याहरन्ती रजनिमचिरजाता पूर्वसन्ध्या सुतेव ।[2]

रात बीत गयी है । प्रातःकाल हो रहा है, जिस प्रकार कमल के समान सुन्दर हाथ पैर वाली आँखों में मनोहर अन्जन लगाकर कोई बालिका अपने बालसुलभ शब्दों को कहती हुइ अपनी माता के पीछे-पीछे दौड़ती है उसी भाँति पूर्व सन्ध्या जिसके लाल कमल की श्रेणी ही हाथ पाँव है भ्रमरमाला रूपी कज्जल से युक्त कमल ही जिसके नेत्र हैं, पक्षियों के शब्दों से बोलती हुई रात्रि के पीछे-पीछे दौड़ती चली आ रही है । इस श्लोक में अनुरूप रूपक है ।
अधोलिखित श्लोक में भी रूपक की छटा देखने लायक है –

बाणाहिपूर्णतूणीरकोटरैर्धीन्वशाखिभिः ।
गोधाश्लिष्टभुजाशाखैरभूद्भीमा रणाटवी ।।[3]

युद्ध रूपी जंगल, बाण रूपी सर्पों से पूर्ण, तरकस रूपी खोटरे वाले और धनुष की प्रत्यंचा के आघात को रोकने वाले, केहुनी के नीचे बाँधे गये चमड़े

1- काव्यप्रकाश-मम्मट, कारिका संख्या, 137

2- शिशुपालवध, 11/40

3- शिशुपालवध, 19/39

रूपी गोधाओं (गोह नामक एक प्रकार के जन्तु) से लिपटी हुयी, भुजा रूपी शाखा वाले धनुष्धारी रूपी वृक्षों से भयंकर हो गया । इसमें भी रूपक है ।

अधोलिखित श्लोक में भी रूपक अलंकार है -

> शिशिर किरणकान्तं वासरान्तेऽभिसार्य,
> श्वसनसुरभिगन्धि साम्प्रतं सत्वरेव ।
> व्रजति रजनिरेषा तन्मयूखाङ्गरागैः,
> परिमलितमनिन्द्यैरम्बरान्तं वहन्ती[1] ।।

यह रात्रिरूपिणी नायिका रात्रि में चन्द्ररूप प्रियतम का अभिसरण कर उनके पास जाकर इस समय प्रभातकाल की वायु से सौरभयुक्त तथा उस चन्द्र की किरण रूपी अङ्गरागों से व्याप्त वस्त्रान्चल को धारण करती हुयी मानो शीघ्रता से जा रही है ।

अधोलिखित श्लोक में श्लेष तथा अतिशयोक्ति से पूर्ण रूपक की छटा तो देखने ही लायक है -

> उदयशिखरिशृङ्गप्राङ्गणेष्वेष रिङ्गन्,
> सकमलमुखहासं वीक्षितः पद्मिनीभिः ।
> विततमृदुकराग्रः शब्दयन्त्या वयोभिः,
> परिपतति दिवोऽङ्के हेलया बालसूर्यः ।।[2]

1- शिशुपालवध, 11/21

2- शिशुपालवध, 11/47

जिस प्रकार आँगन में खेलता हुआ कोई बालक बुलाने वाली अपनी माता की गोद में हँसते हुए अपने कोमल हाथों को फैलाकर आ गिरता है उसी प्रकार बालसूर्य उदयाचल के शिखर रूपी आँगन में घूमता हुआ मुख के समान कमलों को विकसित करने वाली कमलिनियों से देखा गया तथा अपने कोमल करों को फैलाकर पक्षियों के द्वारा शब्द करने वाली आकाशरूपी माता की गोद में लीलापूर्वक गिर रहा है ।

यमक और रूपक अलंकारों का एक साथ प्रयोग निम्न श्लोक में किया गया है -

छायानिजस्त्रीचटुलालसानां मदेन किंचिच्चटुलालसानाम् ।
कुर्वाणमुत्पिञ्जल जातपत्रैर्विहङ्गमानां जलजातपत्रैः ।।[1]

अपनी स्त्री के प्रियोक्ति में कामुक तथा मद से चन्चल आलसी पक्षियों के ऊपर पिंजड़े बने हुए पत्तों वाले कमल रूपी छतरी से छाया करते हुए रैवतक पर्वत को श्रीकृष्ण ने देखा । इसमें एक पद की आवृत्ति बार-बार हुई है । किन्तु अर्थ अलग-अलग है । जैसे- "चटुलालसानाम्" और जलजापत्रैः पद दो-बार आयेहैं किन्तु अर्थ अलग है । अतः यह यमक रूपक का संकर है ।

उत्प्रेक्षा अलंकार -

"सम्भावनमथोत्प्रेक्षा प्रकृतस्य समेन यत्" जो प्रकृत वर्णनीय वस्तु की सम अर्थात् उपमान के साथ सम्भावना करता है, वहाँ उत्प्रेक्षा अलंकार है ।[2]

1- शिशुपालवध, 4/6
2- काव्य प्रकाश-मम्मट, कारिका संख्या, 91

रैवतक पर्वत के वर्णन में बड़ी सुन्दर उत्प्रेक्षा है -

अपशङ्कमङ्कपरिवर्तनोचिताश्चलिताः पुरः पतिमुपेतुमात्मजाः ।
अनुरोदितीव करुणेन पत्त्रिणां विरुतेन वत्सलतयैष निम्नगाः[1] ।।

पहाड़ी नदियां कल-कल शब्द करती बह रही हैं । ये निडर होकर उसकी गोदी में लोटती हैं । अतः ये रैवतक की बेटियां हैं । आज वे अपने पति समुद्र से मिलने जा रही है । इस कारण रैवतक चिड़ियों के करुण स्वर के द्वारा जान पड़ता है कि प्रेम के कारण रो रहा है।कन्या के पतिगृह जाते समय पिता का हृदय पिघल जाता है । वह कितना भी कठोर क्यों न हो द्रवीभूत अवश्य हो जाता है ।

"पीड्यन्ते गृहिणः कथं नु तनयाविश्लेषदुःखैर्नवैः" ऐसा साहित्यों में वर्णित है[2] । अतः रैवतक भी पक्षियों के करुण स्वर से कन्याओं के लिए रो रहा है ।

अधोलिखित श्लोक भी उत्प्रेक्षालंकार का उदाहरण है -

रथाङ्गपाणेः पटलेन रोचिषामृषित्विषः संवलिता विरेजिरे ।
चलत्पलाशान्तरगोचरास्तरोस्तुषारमूर्तेरिव नक्तमंशवः[3] ।।

भगवान् की कान्ति श्यामल तथा नारद की श्वेत थी, अतएव कवि ने भगवान् की श्यामल कान्ति से मिश्रित नारद की श्वेत कान्ति में रात्रिकाल में पत्तों की श्यामल छाया से संवलित चन्द्रमा के प्रभा की उत्प्रेक्षा की है ।

1- शिशुपालवध, 4/47

2- अभिज्ञान शाकुन्तलम् , 4/।

3- शिशुपालवध, 1/21

इसी प्रकार अन्य स्थलों पर भी उत्प्रेक्षा अलंकार का प्रयोग दर्शनीय है । यथा श्लोक द्रष्टव्य हैं -

प्रफुल्लतापिच्छनिभैरभीशुभिः शुभ्रैश्च सप्तच्छदपांशुपाण्डुभिः ।
परस्परेणच्छुरितामलच्छवी तदेकवर्णाविव तौ बभूवतुः ॥[1]

रोचिष्णुकाञ्चनचयांशुपिशङ्गिताशा वंशध्वजैर्जलदसंहतिमुल्लिखन्त्यः ।
भूभर्तुरायतनिरन्तरसन्निविष्टाः पादा इवाभिबभुरावलयो रथानाम् ॥[2]

समय एव करोति बलाबलं प्रणिगदन्त इतीव शरीरिणाम् ।
शरदि हंसरवाः परुषीकृतस्वरमयूरमयूरमणीयताम् ॥[3]

1- शिशुपालवध, 1/22

2- शिशुपालवध, 5/20

3- शिशुपालवध, 6/44

अतिशयोक्ति अलंकार-

"निगीर्याध्यवसानन्तु प्रकृतस्य परेण यत् प्रस्तुतस्य यदन्यत्वं यद्यर्थोक्तौ च कल्पनम् कार्य कारणयोर्यश्च पौर्वापर्यविपर्ययः । विज्ञेयाऽतिशयोक्तिः सा" जहाँ पर उपमान के द्वारा "प्रकृत" अर्थात् उपमेय का निगरण(पृथक् अनिर्देश) करके उसके साथ कल्पित अभेद का निश्चय (अध्यवसान), वर्णनीय का अन्य रूप से वर्णन, यदि अर्थ वाले शब्दों का कथन करके (असम्भव अर्थ की) कल्पना और कार्य तथा कारण के पूर्व- अपर-भाव का विपरीत होना वर्णित किया जाता है वहाँ अतिशयोक्ति अलंकार जानना चाहिये ।[1]

शिशुपालवध का सम्बद्ध श्लोक द्रष्टव्य है-

तपेन वर्षाः शरदा हिमागमो वसन्तलक्ष्म्या शिशिरः समेत्य च ।
प्रसूनक्लृप्तिं दधतः सदर्तवः पुरेऽस्य वास्तव्यकुटुम्बितां ययुः ।।[2]

माघ का यह श्लोक सदोष लगता है । ऋतुओं की रावण के पड़ोसी परिवारों के रूप में जो कल्पना प्रस्तुत है उसका आधार उनके पतिपत्नी रूप की कल्पना तथा उनके आने से उत्पन्न फूलों के सन्ततिरूप की कल्पना ही है । पत्नी पति की अनुगामिनी होती है । इस भाव को लेकर ग्रीष्म के बाद आने वाली वर्षा तथा शिशिर के बाद आने वाले वसन्त की स्त्री रूप में कल्पना की गयी है । इसमें वर्षा शब्द का स्त्रीत्व तथा वसन्त के साथ लक्ष्मी पद का योग सहायक हो गये हैं , पर इस क्रम का " शरदाहिमागमः " में निर्वाह न होने से परिवार की कल्पना सम्यक् नहीं की जा सकती है । इसके अतिरिक्त "तपेनवर्षा" की भाँति "शिशिरेण वसन्त लक्ष्मीः" न होने से भग्नक्रम दोष भी है ।

1- काव्य प्रकाश, कारिका संख्या - 153

2- शिशुपालवध, 1/66

यहाँ रावण के पुर में एक साथ सभी ऋतुओं का रहना कहा गया है । अतः असम्बन्ध में सम्बन्ध का कथन रूप अतिशयोक्ति अलंकार है ।

अधोलिखित श्लोक में अतिशयोक्ति अलंकार है -

उभौ यदि व्योम्नि पृथक्प्रवाहावाकाशगङ्गापयसः पतेताम् ।
तेनोपमीयेत तमालनीलमामुक्तमुक्तालतमस्य वक्षः ।।[1]

भगवान् श्रीकृष्ण जी का वक्षःस्थल स्वतः श्यामवर्ण का तथा उस पर श्वेत वर्ण की मुक्ता माला लटक रही थी । उसकी उपमा जगत में कोई नहीं थी । हाँ यदि आकाशगंगा की दो धारायें अलग-अलग आकाश में गिरें तो वह आकाश उसकी उपमा हो किन्तु वैसा सम्भव नहीं होने से उनका वक्षःस्थल अनुपम था । यहाँ भी अतिशयोक्ति है ।

निम्न श्लोक में भी अतिशयोक्ति अलंकार दर्शनीय है -

प्रसाधितस्यास्य मधुद्विषोऽभूदन्यैव लक्ष्मीरिति युक्तमेतत् ।
वपुष्यशेषेऽखिललोककान्ता सानन्यकान्ता ह्युरसीतरा तु ।।[2]

विविध आभूषणों से विभूषित इन कृष्ण भगवान् की लक्ष्मी दूसरी ही हुई यह उचित ही था क्योंकि यह शोभा सम्पूर्ण शरीर में थी और समस्त लोकों की कान्ता थी और दूसरे इनके हृदय में भी और किसी की कान्ता नहीं थी ।

1- शिशुपालवध, 3/8

2- शिशुपालवध, 3/12

अधोलिखित श्लोक में सम्बन्ध में असम्बन्ध रूप अतिशयोक्ति अलंकार है -

मुदे मुरारेरमरैः सुमेरोरानीय यस्योपचितस्य शृङ्गैः ।

भवन्ति नोद्दामगिरां कवीनामुच्छ्रायसौन्दर्यगुणा मृषोद्याः ।।[1]

सुमेरु पर्वत से शिखरों को लाकर रैवतक पर्वत को ऊँचा किया । अतएव छोटे भी रैवतक पर्वत का जो इतना उदात्त वर्णन कवि ने किया है वह प्रगल्भवक्ता कवियों को असत्य भाषी नहीं बना रहा है अर्थात् इस रैवतक के वास्तविक गुणों का वर्णन किया है ।

निम्न श्लोक में भी अतिशयोक्ति की छटा देखने लायक है -

प्रतिफलति करौघे सम्मुखावस्थितायां रजतकटकभित्तौ सान्द्रचन्द्रांशुगौर्याम् ।

बहिरभिहतभद्रैः संहतं कन्दरान्तर्गतमपि तिमिरौघं घर्मभानुर्भिनत्ति ।।[2]

सूर्य के सामने स्थित होने पर तथा सघन चाँदनी के समान शुभ्र चाँदी की दिवाल पर किरण समूह के प्रतिबिम्बित होने पर अंधकार बाहर नष्ट किया गया । अतएव सूर्य गुफा के भीतर घुसकर एकत्रित हुए अन्धकार समूह को भी नष्ट कर रहा है । यहाँ पर असम्बन्ध में सम्बन्ध का कथन रूप अतिशयोक्ति है ।

स्वभावोक्ति और प्रौढोक्ति अलंकार-

"स्वभावोक्तिस्तु डिम्भादेः स्वक्रियारूपवर्णनम्"

स्वभावोक्ति वह अलंकार है जहाँ बालक आदि {पदार्थों} की स्वआश्रित क्रिया तथा रूप आदि का वर्णन किया जाता है[3] ।

1- शिशुपालवध, 4/10

2- शिशुपालवध, 11/58

3- काव्य प्रकाश-मम्मट कारिका संख्या-111

साहित्य दर्पणकार कविराज विश्वनाथ ने स्वभावोक्ति का लक्षण इस प्रकार किया है -

"स्वभावोक्तिर्दुरूहार्थस्वक्रियारूपवर्णनम्"

अर्थात् स्वभावोक्ति वह अलंकार है जिसे दुरूह अर्थात् सूक्ष्म अथवा कल्पनाशील कवि-जन द्वारा संवेद्य, पदार्थों के स्वरूप किंवा उनकी क्रियाओं का वर्णन कहा करते हैं[1]।

स्वभावोक्ति और प्रौढ़ोक्तिमय अलंकारों के प्रयोग में माघ अत्यन्त कुशल हैं। स्वभावोक्ति की सफलता तब है जब पाठक के सामने हूबहू चित्र उपस्थित हो जाये। माघ के वर्णनों में यह कुशलता है परन्तु कालिदास के बाद माघ का स्वभावोक्ति वर्णन आता है।

अधोलिखित श्लोक में स्वाभावोक्ति अलंकार का प्रदर्शन बहुत सुन्दर तरीके से किया गया है -

गण्डूषमुज्झितवता पयसः सरोषं नागेन लब्धपरवारणमारुतेन।
अम्भोधिरोधसि पृथुप्रतिमानभागरुद्धोरुदन्तमुसलप्रसरं निपेते ।।[2]

दूसरे हाथी के मदजल की हवा (गन्ध) को पाया हुआ हाथी सूंड में लिये हुए मदजल को रोषपूर्वक छोड़ने वाला हाथी, जलाशय के किनारे पर स्थूल इन दोनों दाँतों के मध्यभाग से रोके हुए विशाल मूसलाकार दाँतों के प्रहार वाला होकर स्वयं गिर पड़ता है।

एकादश सर्ग के प्रातःकाल वर्णन में स्वभावोक्तिमय चित्र बहुत कम हैं पर इस चित्र में कितनी स्वभाविकता है। श्लोकों से द्रष्टव्य है -

---

1- साहित्यदर्पण- कविराज विश्वनाथ, पृ० सं० 865

2- शिशुपालवध, 5/36

प्रहरकपमनीय स्वं निदिद्रासतोच्चैः प्रतिपदुपमहूतः केनचिज्जागृहीति ।
मुहुरविशदवर्णा निद्रया शून्यशून्यां ददद्पि गिरमन्तर्बुध्यते नो मनुष्यः ।।[1]

एक पहरेदार ने अपना पहरा पूरा कर दिया है । वह अब सोना चाहता है । इसलिए दूसरे पहरेदार को जिसकी बारी आ रही है -बार-बार जगा रहा है । वह व्यक्ति नींद से शून्य स्पष्ट शब्दों में उत्तर तो दे रहा है पर जागता नहीं ।

निम्नलिखित श्लोक में भी स्वभावोक्ति अलंकार की छटा देखने की लायक है-

क्षितितटशयनान्तादुत्थितं दानपङ्कप्लुत बहुलशरीरं शाययत्येष भूयः ।
मृदुचलदपरान्तोदीरितान्दूनिनादं गजपतमधिरोहः पक्षकव्यत्ययन ।।[2]

महावत-भूतल-रूपिणा शय्या से उठे हुए मदजल के पंक से लथपथ शरीर वाले हाथी को करवट बदलकर पुनः सुला रहा है तथा ऐसा करने से उस हाथी के पिछले पैर के लोहे की साकल धीरे-धीरे हिलने से बज रही है ।

इसी प्रकार अन्य स्थलों पर भी स्वभावोक्ति अलंकार का सुन्दर प्रयोग हुआ है ।

दुर्दान्तमुत्क्रुत्य निरस्तसादिनं सहासहाकारमलोकयज्जनः ।
पर्याणतः स्त्रस्तमुरोविलम्बिनस्तुरङ्गमं प्रद्रुतमेकया दिशा ।।[3]

किसी छिछड़ैल घोड़े का लम्बा लटकता हुआ पल्ययन (काठी) ढीला हो गया है । उसने तेजी से उछलकर अपनी पीठ पर बैठे सवार को जमीन पर फेंक दिया है और वह एक ओर भाग गया है । लोग घोड़े की इस स्थिति को देखकर हा-हा करते हुए हँस रहे हैं ।

1- शिशुपालवध, 11/4

2- शिशुपालवध, 11/7

3- शिशुपालवध, 12/22

निदर्शना -

"अभवन् वस्तुसम्बन्ध उपमापरिकल्पक:" - जहाँ पदार्थों तथा वाक्यार्थों का (वस्तु) अनुपमधमानसम्बन्ध उपमा की कल्पना आक्षेप कर लेता है। वह निदर्शना अलंकार है।[1] निम्नलिखित श्लोक इस सन्दर्भ में द्रष्टव्य है -

उदयति विततोर्ध्वरश्मिरज्जावहिमरुचौ हिमधाम्नि याति चास्तम्।

वहति गिरिरयं विलम्बिघण्टाद्वयपरिवारितवारणेन्द्रलीलाम्।।[2]

दारुक (कृष्ण सारथि) कृष्ण जी से रैवतक वर्णन कर रहा है। जब प्रात:काल के समय किरणों को फैलाता हुआ सूर्य इस पर्वत के एक ओर उदित होता है तथा चन्द्रमा अपनी किरणों को समेटता सा पर्वत के दूसरी ओर अस्त होता है तब उस समय यह पर्वत उस हाथी की शोभा को धारण करता है जिसके दोनों ओर रस्सी से बंधे दो बड़े घण्टे लटक रहे हों। इस निदर्शना में एक अनूठी प्रौढोक्ति भी है। इस प्रयोग के कारण पण्डितों ने माघ को "घण्टामाघ" की उपाधि दे डाली।

अर्थान्तरन्यास अलंकार -

सामान्यं वा विशेषो वा तदन्येन समर्थ्यते।

यत्तु सोऽर्थान्तरन्यास: साधर्म्येणेतरेण वा।।[3]

1- काव्य-प्रकाश -मम्मट, कारिका संख्या 97

2- शिशुपालवध, 4/20

3- काव्यप्रकाश-मम्मट, कारिका सं0-109

जिसे साधर्म्य अथवा वैधर्म्य के विचार से सामान्य या विशेष वस्तु का उससे भिन्न वस्तु का समर्थन किया जाता है -अर्थान्तरन्यास अलंकार कहा जाता है ।
अधोलिखित श्लोक में अर्थान्तरन्यास अलंकार है -

बृहत्सहायः कार्यान्तं क्षोदीयानपि गच्छति ।
सम्भूयाम्भोधिमभ्येति महानद्या नगापगा ॥[1]

बड़े की सहायता से छोटा भी कार्य सिद्ध कर लेता है जैसे बड़ी नदी के साथ मिली छोटी पहाड़ी की नदी भी समुद्र तक पहुँच जाती है । यह शिशुपाल पक्ष में कहा गया है । यहाँ पूर्वार्द्ध प्रतिपाद्य सामान्य रूप अर्थ द्वितीयार्ध वर्णित "विशेष" रूप अर्थ से समर्थित हो रहा है जिसमें साधर्म्य का सम्बन्ध स्पष्ट है ।

जहाँ साधर्म्य या वैधर्म्य के विचार से सामान्य या विशेष वस्तु का उससे भिन्न विशेषतया सामान्य के द्वारा समर्थनकियाजाय उसे अर्थान्तर न्यास अलंकार कहते हैं - ऐसा भामह के शब्दों में स्वरूप है[2] ।

1- शिशुपालवध, 2/100

2- "उपन्यसनमन्यस्य यदर्थस्योदितादृते ज्ञेयस्सोऽर्थान्तरन्यासः पूर्वार्थानुगतो यथा"।
काव्यालंकार-भामह, 2/7।

निम्नलिखित श्लोक में भी अर्थान्तर न्यास अलंकार है-

कुमुदवनमपश्रि श्रीमदम्भोजखण्डं त्यजति मुदमुलूकः प्रीतिमांश्चक्रवाकः।

उदयमहिमरश्मिर्याति शीतांशुरस्तं हतविधिलसितानां ही विचित्रो विपाकः।।[1]

प्रातःकाल कुमुदवन की शोभा नष्ट हो रही है कमलों के वन की शोभा बढ़ रही है। उल्लू को शोक हो रहा है और चक्रवाक आनन्दित होता है। सूर्य का उदय हो रहा है और चन्द्रमा डूब रहा है। अजीब दशा है। बुरे भाग्य-वालों का परिणाम बड़ा विचित्र होता है। यह आश्चर्य है।
अधोलिखित श्लोक के अर्थान्तर न्यास अलंकार का प्रयोग सुन्दर रूप में हुआ है -

अमानवं जातमजं कुले मनोः प्रभाविनं भाविनमन्तमात्मनः।

मुमोच जानन्नपि जानकीं न यः सदाभिमानैकधना हि मानिनः।।[2]

नारद जी कहते हैं-मनुष्य भिन्न तथा अज होते हुए भी राम रूप से मनुकुल में उत्पन्न अर्थात् मानव बने हुए प्रभावयुक्त और भविष्य में अपना नाश आप को जानते हुए भी जिस रावण ने जानकी जी को नहीं लौटाया क्यों कि मानियों का सर्वदा एकमात्र अभिमान ही धन होता है। यहाँ अजमनोः कुले जातम् में विरोधाभास है। तथा अन्त में 'अभिमानैकधना हि मानिनः" इस कारण से "जानकी न मुमोच" आदि कार्य का समर्थन किया गया है। अतः इसमें अर्थान्तर न्यास अलंकार होना पुष्ट होता है।

1- शिशुपालवध, 11/64

2- शिशुपालवध, 1/67

अधोलिखित श्लोक में अर्थान्तरन्यास अलंकार है -

आयतमैक्षत जनश्चटुलाग्रपादं गच्छन्तमुच्चलितचामरचारुमश्वम् ।
नागं पुनर्मृदु सलीलनिमीलिताक्षं सर्वः प्रियः खलु भवत्यनुरूपचेष्टः ।।[1]

तीव्र गति से चलते हुए तथा शोभित चामर से मनोहर घोड़े को चिरकाल तक लोगों ने देखा और विलास पूर्वक धीरे चलते हुए हाथी को चिरकाल तक देखा । अतः एक को शीघ्र तथा दूसरे को धीरे-धीरे चलने पर भी दोनों को समान रूप से देखना उचित ही था ।

निम्नलिखित श्लोक में भी अर्थान्तर न्यास अलंकार है -

तनुरुहाणि पुरो विजितध्वनेर्धवलपक्षविहङ्गमकूजितैः ।
जगलुरक्षमयेव शिखण्डिनः परिभवोऽरिभवो हि सुदुःसहः ।।[2]

पहले हंसों की ध्वनियों से पराजित ध्वनि वाले मोर के पंख मानो (पराभव सहन) में असमर्थता या ईर्ष्या या क्रोध के कारण झड़ गये क्यों कि शत्रुकृत पराभव अत्यन्त दुःसह होता है ।

इसी प्रकार निम्न श्लोक भी अर्थान्तर न्यास अलंकार का एक उदाहरण है -

या कथञ्चन सखीवचनेन प्रागभिप्रियतमं प्रजगल्भे ।
व्रीडजाड्यमभजन्मधुपा सा स्वां मदात्प्रकृतिमेति हि सर्वः ।।[3]

जो रमणी मद्यपान करने से पहले किसी प्रकार सखी के कहने से

1- शिशुपालवध, 5/6

2- शिशुपालवध, 6/45

3- शिशुपालवध, 10/18

प्रियतम के समक्ष प्रगल्भ हो रही थी । मद्य का पान किए हुयी वही रमणी लज्जा से जड़ हो गयी क्योंकि सभी लोग नशे से अपनी स्वाभाविक अवस्था को प्राप्त कर लेते हैं ।

तुल्ययोगिता अलंकार -

"पदार्थानां प्रस्तुतानामन्येषां वा यदा भवेत्" एकधर्माभिसम्बन्धः स्यात्तदा तुल्ययोगिता"।

तुल्ययोगिता वह अलंकार है जिसे केवल प्रस्तुत पदार्थों अथवा अप्रस्तुत पदार्थों का एक धर्म से अभिसम्बन्ध कहा गया है ।[1]

"नियतानां सकृद्धर्मः सा पुनस्तुल्ययोगिता" ऐसे उपर्युक्त अलंकार को पारिभाषित किया गया है ।[2]

अधोलिखित श्लोक इस सन्दर्भ में प्रस्तुत है -

रम्या इति प्राप्तवतीःपताका रागं विविक्ता इति वर्धयन्तीः।
यस्यामसेवन्त नमद्वलीकाः समं वधूभिर्वलभीर्युवानः ।।[3]

जिस द्वारका पुरी में युवक लोग रमणीय होने से पताकाओं से युक्त (सुन्दरी होने से प्रसिद्ध को प्राप्त) एकान्त होने से राग को बढ़ाती हुई शुद्ध होने से स्नेह को बढ़ाती हुई झुकी हुई वलियों (छज्जे के घोड़मुहों) वाली (लटकती हुई त्रिवलियों वाली) स्त्रियों के साथ वलभियों (महल के छतों पर बने

1- साहित्य दर्पण-विश्वनाथ कविराज, कारिका सं0-47
2- काव्यप्रकाश-मम्मट कारिका संख्या,158
3- शिशुपालवध, 3/53

हुए हवादार छोटे-छोटे कमरों (का सेवन) स्त्रियों के साथ (विहार) करते थे।
प्रथम अर्थ वलभियों के पक्ष में तथा द्वितीय अर्थ स्त्रियों के पक्ष में करना चाहिये।
तुल्ययोगिता अलंकार ही है। ।

निम्नलिखित श्लोक तुल्ययोगिता अलंकार का एक उदाहरण है -

उच्चैर्गतामस्खलितां गरीयसीं तदातिदूरादपि तस्य गच्छतः।
एके समूहुर्बलरेणुसंहतिं शिरोभिराज्ञामपरे महीभृतः ।।[1]

अत्यन्त दूर से आते हुए श्रीकृष्ण भगवान् को ऊपर तक ऊपर उड़ी हुई तथा कभी विच्छिन्न नहीं होने वाली सच्ची गौरवान्वित सेना से उड़ायी गयी धूलि के समूह को कुछ महीभृतों अर्थात् पर्वतों ने शिखर पर धारण किया और दूसरे महीभृतों अर्थात् राजाओं ने उक्त रूप आज्ञा को मस्तक से धारण किया। इसमें तुल्ययोगिता अलंकार है।

तुल्ययोगिता अलंकार के अन्य उदाहरण भी द्रष्टव्य है -

यः कोलतां बल्लवतां च बिभ्रद् दंष्ट्रामुदस्याशु भुजां च गुर्वीम्।
मग्नस्य तोयापदि दुस्तरायां गोमण्डलस्योद्धरणं चकार ।।[2]

1- शिशुपालवध, 12/45

2- शिशुपालवध, 14/86

समासोक्ति अलंकार -

"परोक्तिर्भेदकैः श्लिष्टैसमासोक्तिः"

श्लिष्ट विशेषणों के द्वारा (भेदकैः) पर अर्थात् अप्रकृत अर्थ का बोधन समासोक्ति अलंकार है ।[1]

सम्बद्ध श्लोक प्रस्तुत है -

क्षणमयमुपविष्टः क्ष्मातलन्यस्तपादः प्रणतिपरमवेक्ष्य प्रीतमह्नाय लोकम् ।
भुवनतलमशेषं प्रत्यवेक्षिष्यमाणः क्षितिधरतटपीठादुत्थितः सप्तसप्तिः ।।[2]

जिस प्रकार सिंहासन पर बैठा हुआ राजा प्रणामपरायण प्रजा को प्रणाम-स्वीकार करने से सन्तुष्ट देखकर भूतल पर पैर रखकर समस्त प्रजा-समूह का निरीक्षण करने के लिए सिंहासन से उठता है । वैसे ही यहाँ सूर्य को राजा उदयाचल शिखर को सिंहासन एवं लोक को प्रजा मानकर कवि ने समासोक्ति अलंकार द्वारा बहुत सुन्दर कल्पना की गयी है।

इसी सन्दर्भ में निम्नलिखित श्लोक भी द्रष्टव्य है -

स्फुरदधीरतडिन्नयना मुहुः प्रियमिवागलितोरुपयोधरा ।
जलधरावलिरप्रतिपालितस्वसमया समयाज्जगतीधरम् ।।[3]

1- काव्य प्रकाश-मम्मट-कारिका संख्या-96

2- शिशुपालवध, 11/48

3- शिशुपालवध, 6/25

चमकते हुए चन्चल बिजली रूपी नेत्रों वाली (नहीं बरसने से) बड़े- बड़े मेघों वाली (श्रीकृष्ण भगवान् की सेवा के लिए एक साथ सब ऋतुओं के उपस्थित होने के कारण (अपने समय (क्रमिक काल) की अपेक्षा को छोड़ी हुई मेघ श्रेणी रैवतक पर्वत पर उस प्रकार उपस्थित हुई जिस प्रकार चमकते हुए एवं चन्चल बिजली के समान नेत्रों वाली (युवावस्था होने से) नहीं गिरे हुए अर्थात् उन्नत एवं बड़े-बड़े स्तनों वाली अपने समय की अपेक्षा नहीं की हुई नायिका प्रिय के पास असमय में ही उपस्थित हो जाती है । अतएव विशेषण महिम्ना जलधरावली नायिकात्वप्रतीतेः समासोक्तिः-ऐसा व्यक्त है । इसके अतिरिक्त महाकवि माघ ने निदर्शना, भ्रान्तिमान विरोध सहोक्ति आदि अलंकारों का भी प्रयोग अपने महाकाव्य में किया है ।

अधोलिखित श्लोक में समासोक्ति अलंकार परिलक्षित है -

संभाव्य त्वामतिभरक्षमस्कन्धं स बान्धवः ।
सहायमध्वरधुरां धर्मराजो विवक्षते ।।[1]

वे युधिष्ठिर (यज्ञ सम्बन्धी) महान् भार के वहन करने में अत्यन्त समर्थ कन्धे वाले तुमको सहायक समझकर यज्ञ के भार को वहन करते हैं अर्थात् तुम्हारे ही भरोसे पर यज्ञ को करना चाहते हैं । इसमें समासोक्ति अलंकार है ।

1- शिशुपालवध, 2/103

शब्दालंकार

श्लेष अलंकार -

श्लिष्टैः पदैरनेकार्थाभिधाने श्लेष इष्यते,
वर्णप्रत्ययलिङ्गानां प्रकृत्योः पदयोरपि ।।
श्लेषाद्विभक्ति वचनभाषाणामष्टधा च सः ।[1]

श्लेष के आठ भेद हैं । श्लेष वह अलंकार है जिसे श्लिष्ट पदों द्वारा अनेक अर्थों के अभिधान में देखा जाया करता है ।

माघ ने श्लेष अलंकारों का प्रयोग उत्तम रीति से किया है । इनके महाकाव्य में श्लेषका अत्यधिक प्रयोग मिलता है । श्री हर्ष को "परिरम्भ क्रीड़ा (श्लेष) का बड़ा घमंड था किन्तु माघ भी श्लेष प्रयोग में पीछे नहीं है । श्लेष प्रयोग में माघ भारवि से अधिक कुशल हैं । माघ के अन्य अलंकार भी श्लेष का सहारा लेकर आते हैं । कभी-कभी तो उपमानोपमेय प्रस्तुताप्रस्तुत, प्रकृताप्रकृत पक्षों के अर्थ द्वय को लेने में विभक्ति परिणाम के बिना अर्थ प्रतीति नहीं हो पाती है उदाहरण के लिए निम्न पद्य हैं जहाँ केवल श्लेष अलंकार प्रस्तुत है ।

हस्तस्थिताखण्डितचक्रशालिनं द्विजेन्द्रकान्तं श्रितवक्षसं श्रिया ।
सत्यानुरक्तं नरकस्य जिष्णवो गुणैर्नृपाः शार्ङ्गिणमन्वयासिषुः ।।[2]

1- साहित्यदर्पण-विश्वनाथ कविराज,कारिकासंख्या, ।।

2- शिशुपालवध, 12/3

हाथ में चक्र की रेखा धारण करने वाले, शोभायुक्त वक्षः स्थल वाले, चन्द्रमा के समान सुन्दर सत्यशील पुण्यात्मा (नरकस्य जिष्णवः) राजा लोगों ने हाथ में सुदर्शन चक्र को धारण करने वाले नरकासुर के जेता श्रीकृष्ण का जिनके वक्षः स्थल पर लक्ष्मी का निवास है और सत्यभामा में अनुरक्त है उनके गुणों की दृष्टि से अनुगमन किया । समान गुणशील राजा श्रीकृष्ण के गरुड़ के समान रथ पर चढ़कर रवाना होने पर उनके पीछे-पीछे रवाना हुए । इसमें शब्द श्लेष अलंकार है ।

माघ के अधिकतर श्लिष्ट प्रयोग किसी अन्य अलंकार के अंग बन कर आते हैं ।

अधोलिखित श्लोक में भी श्लेष अलंकार है -

उष्णोष्णशीकरसृजः प्रबलोष्मणोऽन्तरुत्फुल्लनीलनलिनोदरतुल्यभासः ।
एकान् विशालशिरसो हरिचन्दनेषु नागान् बबन्धुरपरान्मनुजा निरासुः ।।[1]

मनुष्यों अर्थात् महावतों ने अत्युष्ण जल-कणों को फेंकने वाले, भीतर में अधिक उष्णता गर्मी वाले खिले हुए नीलकमल के भीतरी हिस्से के समान कान्ति वाले अर्थात् अत्यन्त काले और बड़े मस्तकों वाले कुछ नागों (हाथियों) को श्रेष्ठ चन्दन के वृक्षों में बाँधा तथा दूसरे नागों (सर्पों को चन्दन वृक्षों से (को दूर हटाया

1- शिशुपालवध, 5/45

कृतः प्रजाक्षेमकृता प्रजासृजा सुपात्रनिक्षेपनिराकुलात्मना ।

सदोपयोगेऽपि गुरुस्त्वमक्षयो निधिः श्रुतीनां धनसंपदामिव ।।[1]

जिस प्रकार सन्तान का कल्याण कर्ता पिता धन को सुन्दर सुपात्र में रखकर निश्चिन्त हो जाता है, और सत्पुत्र को उसे सौंपकर सर्वदा व्यय करने पर भी वह निधि समाप्त नहीं होती, उसी प्रकार लोक कल्याण कर्ता ब्रह्मा सत्पात्र रूप आप को समस्त वेदों को सौंपकर निश्चिंत हो, उन वेदों के अनुसार लोक में उपदेश करते रहने पर भी कभी समाप्त नहीं होने वाले वेदों की निधि आपको बनाया है । आपके पिता ब्रह्मा ने आपको समस्त वेदों का अध्ययन कराया है तथा आप उनके अनुसार लोक में उपदेश देते रहते हैं अतएव आप का दर्शन किसके लिए श्लाघ्य नहीं है ।

अधोलिखित श्लोक में श्लेषोपमा अलंकार है -

स्निग्धाञ्जनश्यामरुचिः सुवृत्तो वध्वा इवाध्वंसितवर्णकान्तेः ।

विशेषको वा विशिशेष यस्याः श्रियं त्रिलोकीतिलकः स एव ।।[2]

चिकने अन्जन के समान श्यामवर्ण वाले, सदाचार युक्त त्रिलोकी के तिलक, वे श्रीकृष्ण भगवान् की ब्राह्मणादि वर्णों की मर्यादा को नष्ट नहीं करने वाली जिस (द्वारकापुरी) की शोभा को इस प्रकार बढ़ा रहे थे, जिस प्रकार चिकने अन्जन से श्यामवर्ण वाला सम्यक् प्रकार से गोलाकार तिलक जिसके गौरादि वर्ण तथा शरीर-लावण्य नष्ट नहीं हुए हैं । ऐसी वधू की शोभा को बढ़ा देता है ।

1- शिशुपालवध, 1/28

2- शिशुपालवध, 4/34

शिशुपालवध में प्रयुक्त श्लेष अलंकार के अन्य उदाहरण भी द्रष्टव्य हैं -

गण्डोज्ज्वलामुज्ज्वलनाभिचक्रया विराजमानां नवयोदराभ्रया ।
कश्चित्सुखं प्राप्तुमनाः सुखार्थी रथीं युयोजाविधुरां वधूमिव ।।[1]

स्वस्ताङ्गसन्धौ विगताशपाटवे रुजा निकामं विकलीकृते रथे ।
आप्तेन तक्ष्णा भिषजेव तत्क्षणं प्रचक्रमे लङ्घनपूर्वकः क्रमः ।।[2]

आतन्वद्भिर्दिक्षु पत्राग्रनादं प्राप्तैर्दूरादाशु तीक्ष्णैर्मुखाग्रैः ।
आदौ रक्तं सैनिकानाम् जीवैर्विः पश्चात्पत्रिपूगैरपायि ।।[3]

कवि ने वैसे तो प्रायः सभी अलंकारों का प्रयोग किया है, परन्तु श्लेष, यमक, अनुप्रास अधिक मात्रा में प्रयुक्त हुए हैं ।

अनुप्रास अलंकार - "वर्णसाम्यमनुप्रासः"

वर्णों (व्यन्जनों) की समानता अनुप्रास अलंकार है । वर्णसाम्य अर्थात् स्वरों के असमान होने पर भी व्यन्जनों की समानता । रस (भाव) आदि के अनुकूल (व्यन्जनों की) अद्भुत व्यवधान से रहित चमत्कारजनक योजना ही अनुप्रास है ।[4]

1- शिशुपालवध, 12/8

2- शिशुपालवध, 12/25

3- शिशुपालवध, 18/74

4- काव्य प्रकाश-मम्मट,कारिका संख्या 78

माघ के महाकाव्य में अनुप्रास का पद विन्यास बड़ा सुन्दर है । संस्कृत महाकाव्यों में दूसरा व्यक्तित्व महाकवि माघ का है । कालिदास का काव्य शेक्सपीयर की भाँति भाव प्रधान है और माघ का काव्य मिल्टन की भाँति अत्यधिक अलंकृत है ।

अनुप्रास अलंकार का प्रयोग शिशुपालवध में दर्शनीय है -

अनन्यगुर्वास्तव केन केवलः पुराणमूर्तेर्महिमावगम्यते ।

मनुष्यजन्मापि सुरासुरान्गुणैर्भवान्भवच्छेदकरैः करोत्यधः ।।[1]

जब मनुष्य जन्म लेकर भी आप अपने ज्ञानादि गुणों से देवों तथा असुरों को नीचा करते हैं । तब आपकी सर्वश्रेष्ठ पुराणमूर्ति की सम्पूर्ण महिमा को भला कोई कैसे जान सकता है अर्थात् आपकी महिमा दुर्बोध्य है । यहाँ छेकानुप्रास है । द्वितीयार्थ में स, भ, क, आदि अनेक व्यन्जनों की अनेक बार आवृत्ति होने से छेकानुप्रास है ।

कुछ ऐसे भी श्लोक दृष्टिगत हैं जिसमें अनुप्रास और यमक दोनों ही अलंकारों का प्रयोग मिलता है ।

मधुरया मधुबोधितमाधवीमधुसमृद्धिसमेधितमेधया ।

मधुकराङ्गनया मुहुरुन्मदध्वनिभृता निभृताक्षरमुज्जगे ।।[2]

1- शिशुपालवध, 1/35

2- शिशुपालवध, 6/20

मनोहारिणी वसन्त से विकसित की गयी अर्थात् वसन्त में खिली हुई, माधवी लता के पराग के उड़ने से उड़ी हुई धूलिवाली अर्थात् वसन्त में विकसित माधवी लता के पुष्पराग का पान कर मतवाली (अतएव) मदोत्पादक ध्वनि करती हुयी भ्रमरी गम्भीरता युक्त उच्च स्वर से गाने लगी ।

सप्तभेदकरकल्पितस्वरं साम सामविदसङ्गमुज्जगौ ।

तत्र सूनृतगिरश्च सूरयः पुण्यमृग्यजुषमध्यगीषत ।।[1]

सामवेद के ज्ञाता (उद्गाता) लोग हाथ के सन्चालन विशेष से व्यक्त किये गये निषादादि (या कष्ट मन्द आदि) सात स्वरों वाले सामवेद को स्खलनरहित, अर्थात् कहीं पर स्खलित नहीं होते हुए उच्च स्वर से गाने लगे और सत्य तथा प्रिय बोलने वाले (होता आदि) विद्वान लोग कल्याणकारक ऋग्वेद तथा यजुर्वेद को पढ़ने लगे ।

इसके अतिरिक्त अनुप्रास के विशिष्ट भेद एकाक्षर पाद, एकाक्षरबन्ध, द्वयक्षरबन्ध आदि के प्रयोग में महाकवि माघ सिद्धहस्त हैं ।

19वें सर्ग के तृतीय श्लोक में एकाक्षरपाद अनुप्रास देखने योग्य है । चार पद क्रम से ज, त, भ, र शब्दों की झड़ी से शोभनीय है ।

1- शिशुपालवध, 14/21

एकाक्षरपाद - जजौजोजाजिजिज्जाजी तं ततोऽतितताततुत् ।
भाभोऽभीभाभिभूगाभूरारारिररिरीररः ॥[1]

योद्धाओं के पराक्रम से युद्ध को जीतने वाले अत्यन्त उद्धत (शत्रुओं) को अतिशय व्यथित करने वाले नक्षत्र के समान कान्ति वाले (शुभ्रवर्ण) निर्भीक हाथियों को पराजित करने वाले रथारूढ़ बलराम जी उस वेणुदारी के साथ युद्ध करने के लिए चल पड़े ।

द्व्यक्षरबन्ध अनुप्रास भी कई श्लोकों में उपलब्ध है -

द्व्यक्षरबन्ध - नीलेनानालनलिनलिलीनोल्ललनालिना ।
ललनालालनेनालं लीलालोलेन लालिना ॥[2]

श्यामल नाल रहित कमल पर बैठे हुए चन्चल भ्रमर वाले, ललनाओं (रमणियों) को लालित (वशीभूत) करने वाले, लीला में अत्यधिक चपल और (भक्तों का) लालन करने वाले (शरीर से शोभते परम पुरुष को (शत्रुओं ने श्रेष्ठ योगियों ने देखा ।

इसी प्रकार द्व्यक्षर अनुप्रास के भी प्रयोग मिलते हैं -

द्व्यक्षरअनुप्रास - राजराजी रुरोजाजेरजिरेऽजोऽजरोऽरजाः ।
रेजारिक्षुरजोर्जार्जी रराजर्क्षरजर्जरः ॥[3]

1- शिशुपालवध, 19/3

2- शिशुपालवध, 19/84

3- शिशुपालवध, 19/102

अज (अनादि) अजर, रजोगुणरहित, तेजस्वी शत्रुओं की हिंसा से उत्पन्न बल को प्राप्त करने वाले, सरल और दृढ़ श्रीकृष्ण भगवान् ने युद्ध के प्राङ्गण (मैदान) में राजश्रेणियों को मग्न कर दिया और शोभने लगे ।

इसी प्रकार एकाक्षर अनुप्रास के प्रयोग भी कई स्थानों पर परिलक्षित होते हैं -

दाददो दुद्दुद्दादी दादादो दूददीददोः ।
दुद्दादं दददे दुद्दे ददाददददोऽददः ।।[1]

दादद (दान देने वाले), दुद्दों (दुष्टों) को उपताप देने वाले, दादाद (शुद्धि देने वाले, दूदों (परिताप देने वालों) के नाशक बाहु वाले और दाताओं (देने वालों) तथा अदाताओं (नहीं देने वालों) दोनों को देने वाले श्रीकृष्ण भगवान् दुद्द (दुःखदायी-शत्रु) पर दुःखदायी बाण को दिया । (शत्रुनाशक बाण को चलाया ।

यमक अलंकार -

"अर्थे सत्यर्थभिन्नानां वर्णानां सा पुनः श्रुतिः यमकम्"

अर्थ होने पर भी, भिन्न-भिन्न अर्थ वाले वर्ण समुदाय का पूर्व क्रम से ही (सा) आवृत्ति (पुनःश्रुति) यमक अलंकार कहलाता है ।[2]

1- शिशुपालवध, 19/114

2- काव्यप्रकाश-मम्मट, कारिका संख्या-83

साहित्यदर्पण में यमक का लक्षण इस प्रकार किया गया है ।

सत्यर्थे पृथगर्थायाः स्वरव्यन्जनसंहतेः ।
क्रमेण तेनैवावृत्तिर्यमकं विनिगद्यते ।।[1]

"यमक" वह शब्दालंकार है जिसे, सार्थक होने पर भिन्न अर्थ वाले स्वर-व्यन्जन-समूह की पूर्वक्रमानुसार आवृत्ति कहते हैं । यहाँ सत्यर्थे (सार्थक होने पर) इसलिए कहा गया है कि क्योंकि यमक में ऐसा होता है कि कहीं-कहीं तो दोनों पद सार्थक हुआ करते हैं और कहीं-कहीं दोनों निरर्थक और कहीं ऐसा भी हुआ करता है कि एक पद सार्थक रहता है और दूसरा निरर्थक "तेनैव क्रमेण" (पूर्वक्रमानुसार) कहने का अभिप्राय यह है कि दमो मोदः सरीखेस्वरव्यन्जन-समूह की आवृत्ति को यमक न समझा जाय क्योंकि यहाँ द,म रूप स्वर व्यन्जन समूह का क्रम उल्टा दिखायी दे रहा है ।[2]

यमक का प्रयोग निम्नलिखित श्लोक में द्रष्टव्य है -

नवपलाशपलाशवनं पुरः स्फुटपरागपरागतपङ्कजम् ।
मृदुलतान्तलतान्तमलोकयत्स सुरभिं सुरभिं सुमनोभरैः।।[2]

1- साहित्य-दर्पण, विश्वनाथ कविराज, पृ0 सं0 672

2- शिशुपालवध, 6/2

श्रीकृष्ण भगवान् ने पहले नवपल्लवयुक्त पलाशवन वाले विकसित तथा मकरन्द से परिपूर्ण कमलों वाले, कोमल (अतएव गर्मी) से कुछ म्लान पुष्पों वाले तथा पुष्प समूहों से सुरभित वसन्त ऋतु को देखा। वसन्त का कैसा सजीव सरल मसृण, धारावाही, तथा परिस्फुट चित्ताकर्षक वर्णन है। यमक की छटा से सम्पूर्ण पद खिल उठा है। यहाँ जो "यमक" है वह "पदावृत्ति" प्रकार का है। क्योंकि "पलाश" पराग" "मृदुल" आदि पदों की आवृत्ति स्पष्ट दिखायी दे रही है।

यहाँ पलाश-पलाश सुरभिसुरभिम ये दोनों पद ऐसे हैं। जो सार्थक है किन्तु लतान्त-लतान्त में पहला लतान्त निरर्थक है (क्यों कि यहाँ जो पद है वह लतान्त नहीं अपितु मृदुल-"तान्त" है) इसी प्रकार "पराग-पराग" में दूसरा जो "पराग" पद है। वह कोई अर्थ नहीं रखता (क्यों कि यहाँ पर पराग नहीं अपितु "परागत" है।

यमक का एक और उदाहरण महाकाव्य में मिलता है -

इह मुहुर्मुदितैः कलभैरवः प्रतिदिशं क्रियते कलभैरवः।

स्फुरति चानुवनं चमरीचयः कनकरत्नभुवां च मरीचयः।।[1]

इस रैवतक पर्वत पर (इच्छानुकूल आहार विहार करने से) हर्षित हाथी के तीस वर्ष के बच्चे प्रत्येक दिशा में अर्थात् सब ओर बार-बार स्पष्ट तथा भयंकर शब्द कर रहे हैं। वन के समीप में चमरी गायों का झुण्ड तथा सुवर्णमयी एवं रत्नमयी भूमि की किरणें स्फुरित हो रही है।

1- शिशुपालवध, 4/60

इसमें "कलभैरव" और "कलभैरव" तथा "चमरीचयः" और "च मरीचयः" शब्द देखने योग्य है । इसी भाँति पदों में कहीं-कहीं तो कोमल वर्ण छोटे घुंघरुओं की भाँति गूंथे हुए हैं । यमक का प्रयोग माघ कवि ने अधिकांश पद बन्धों की सजावट के लिए किया है । इस प्रकार के यमक पद्य के एक भाग में होते हुए भी सारे पद्य को चमत्कृत कर देते हैं ।

इसमें भी यमक अलंकार की छटा द्रष्टव्य है-

रवितुरङ्गतनूरुहतुल्यतां दधति यत्र शिरीषरजोरुचः ।
उपययौ विदधन्नवमल्लिकाः शुचिरसौ चिरसौरभसम्पदः ।।[1]

जिस शुचि अर्थात् ग्रीष्म ऋतु में (आषाढ़ मास) शिरीष पुष्पों के पराग की कान्ति सूर्य के घोड़ों के हरित वर्ण वाले रोमों की समानता ग्रहण करती है अर्थात् हरी हो जाती हैं, नवमल्लिकाओं के सुगन्ध को चिरस्थायी करता हुआ वह ग्रीष्म ऋतु आ गया ।

यमक के अन्य प्रयोग भी महाकाव्य में स्थान-स्थान पर दर्शनीय है ।

गजकदम्बकमेचकमुच्चकैर्नभसि वीक्ष्य नवाम्बुदमम्बरे ।
अभिससार न वल्लभमङ्गना न चकमे च कमेकरसं रहः ।।[2]

कुशेशयैरत्र जलाशयोषिता मुदा रमन्ते कलभा विकस्वरैः ।
प्रगीयते सिद्धगणैश्च योषितामुदारमन्ते कलभाविकस्वरैः ।।[3]

1- शिशुपालवध, 6/22

2- शिशुपालवध, 6/26

3- शिशुपालवध, 4/33

महाकवि माघ के यमक अलंकारों के प्रयोग के ही सन्दर्भ में अब एक और उदाहरण लिया जाय -

वाहनाजनि मानासे सारागावनमा ततः ।
मत्तसारगराजेभे भारीहावज्जनध्वनि ।।[1]

"शत्रुओं के अभिमान को नष्ट करने वाले एवं मतवाले तथा बलवान गजराजों वाले कवच आदि के भार से युक्त युद्ध में संलग्न वीरों के मारो, आदि ध्वनि से भी सेना भयभीत नहीं हुयी किन्तु शत्रुओं का डटकर सामना करती रही । इसी श्लोक को प्रतिलोम करने से (उलटकर) अग्रिम (19-34) श्लोक हो जाने से यह श्लोक प्रतिलोम नामक यमक अलंकार युक्त हो जाता है । तैंतीसवें को उलटने से चौंतीसवें श्लोक का पूरा भाग बन जाता है ।

निध्वनज्जवहारीभाभेजे रागारसाजमः ।
ततमानवगारासा सेना मनिजनाहवा ।।[2]

इस प्रतिलोम यमक के लिए दण्डी ने कहा है - वर्णावृत्ति होने से प्रतिलोम यमक नाम पड़ा है ।

आवृत्तिः प्रातिलोम्येन पादार्धश्लोकगोचरा ।
यमकं प्रतिलोमत्वात्प्रतिलोममिति स्मृतम् ।।[3]

1- शिशुपालवध, 19/33

2- शिशुपालवध, 19/34

3- काव्यादर्श-दण्डी, 3/73

एक और श्लोक प्रस्तुत है जिसका शब्द ऐसा है कि वाक्यों को उलटकर पढ़ने से भी वही शब्द उसी अर्थ का बन जाता है । यह भी प्रतिलोम यमक ही कहलाता है । सम्बद्ध श्लोक द्रष्टव्य है -

नानाजावववजानाना सा जनौघघनौजसा ।
परानिहाऽहानिराप तान्वियाततयाऽन्विता ।।[1]

अनेक प्रकार से युद्ध में शत्रुओं को पराजित करती हुई जनसमूह से व्याप्त परिपूर्ण धृष्टता युक्त उसने {शिशुपाल की सेना ने} उन शत्रुओं को प्राप्त किया अर्थात शिशुपाल की सेना श्रीकृष्ण की सेना के समीप पहुँची । इसमें प्रत्येक चरण को उल्टी दिशा से पढ़ने पर भी अनुलोम वाला चरण ही प्राप्त होता है । अतः इसमें प्रतिलोम अलंकार है ।

वारणागगभीरा सा साराऽभीगगणारवा ।
कारितारिवधा सेना नासेधा वारितारिका ।।[2]

'यदुवंशियों की पूर्वोक्त सेना का वर्णन, हाथी रूपी पर्वतों से दुष्प्रवेश बलवान् एवं निर्भीक शूरवीरों के कलकल वाली, शत्रुओं का वध की हुई, निर्बाध गति से आगे बढ़ने वाली, वह यदुवंशियों की सेना शत्रुओं की सेना में सड़क में गली के समान मिल गयी । ऐसा पूर्व {43} श्लोक से स्पष्ट है । यहाँ प्रथम दो चरण मिलकर उलटे सीधे क्रम से एक ही ध्वनि देते हैं और इसी प्रकार तीसरे चौथे चरण भी अनुलोम या प्रतिलोम क्रम से एक ही ध्वनि प्रदान करते हैं ।

1- शिशुपालवध, 19/40
2- शिशुपालवध, 19/44

अधोलिखित श्लोक यमक अलंकार के साथ ही विरोधाभास अलंकार से भी युक्त है -

अखिद्यतासन्नमुदग्रतापं रविं दधानेऽप्यरविन्दधाने ।

भृङ्गावलिर्यस्य तटे निपीतरसा नमत्तामरसा न मत्ता ।[1]

इस पर्वत के अतिशय ऊँचा होने से समीपवर्ती तीक्ष्ण सन्ताप वाले सूर्य को धारण करने वाले तथा कमलों के खजाना (जिस रैवतक पर्वत) के तट पर मकरन्द का सम्यक् पान किये हुए, कमलों पर बैठकर उसे झुकाने वाले तथा मदोन्मत्त भ्रमर समूह (सूर्य के तीव्र ताप से भी) खिन्न नहीं होते थे । इस श्लोक में यमक अलंकार के साथ शब्द श्लेष मूलक विरोधाभास अलंकार है ।

यहाँ पर पूर्वार्द्ध में सूर्य को धारण करने वाला होता हुआ भी सूर्य को नहीं धारण करने वाला ऐसा अर्थ करने से विरोध आता है । "रविन्दधाने" तथा "अरविन्दधाने" इन दोनों में शब्दश्लेषमूलक विरोधाभास है । अतः सूर्य को धारण करने वाला होता हुआ कमलों का आकर अर्थ (उत्पत्तिस्थान) करने से उक्त विरोध दूर हो जाता है । भाव यह है कि रैवतक पर्वत के अत्यन्त ऊँचा होने से अत्यन्त निकटस्थ सूर्य के ताप से भी भ्रमर-समूह खिन्न नहीं होते थे क्योंकि वे कमल परागों का पाकर मदोन्मत रहते थे ।

चित्रालंकार -

महाकवि माघ चित्रालंकारों के प्रयोग में भी अति निपुण थे । भारवि, श्रीहर्ष के समान माघ ने भी चित्रालंकारों का प्रयोग किया है । प्रत्येक

1- शिशुपालवध, 4/12

कवि लेखक अपने समय की युग-प्रवृत्तियों का अनुगमन करने को विवश होता है । जिस युग में माघ रचना कर रहे थे उस समय का आदर्श कालिदास, भास और अश्वघोष नहीं थे।उस समय आकाश की अनन्त ऊंचाइयों तक भारवि का तेज ही अधिष्ठित था । अत: माघ को आदर्श के रूप में अथवा प्रतिद्वन्द्वी के रूप में भारवि ही प्राप्त थे । भारवि ने सुकुमार मार्ग को त्यागकर कठिन काव्य लेखन का सूत्रपात किया था । उनमें अधिकाधिक विचित्र प्रयोग रीति के प्रयोग, शब्दालंकारों के प्रति विशेष आकर्षण था । फलत: माघ को भी वही सब मार्ग स्वीकार करने पड़े । अतएव हेय होते हुए भी चित्रालंकारों के भरपूर प्रयोग में दक्षता प्रदर्शित करना माघ के लिए अत्यावश्यक हो गया था ।

माघ काव्य में चित्रालंकारों का प्रयोग विशेषत: 19 सर्ग में में प्राप्त होता है । जहाँ पद्य रचना में अपनी निपुणता द्वारा कवि ऐसे अक्षर शब्द तथा वाक्य रखता है जिनसे अनेक चित्र एवं अन्तर्लापिका आदि अनेक प्रकार की मनोरंजक कविताएँ बन जाती है साहित्यशास्त्री ऐसे विकट बन्धों में की गयी कविता को अधम काव्य की संज्ञा देते हैं ।

कविराज विश्वनाथ अपने "साहित्यदर्पण" में लिखते हैं - "काव्यान्तर्गड्डुभूतया तु नेह प्रपंच्यते " काव्य में यह सर्वतोभद्र आदि शब्द चित्र तो ऐसा भद्दा प्रदर्शन हैं जैसे-किसी के गले में मांस फूलकर लटक रहा हो-उस लटके मांस से पुरुष की शोभा बढ़ने के स्थान पर और घटती ही है । इसलिये यह सर्वतोभद्र आदि"विकटबन्ध" काव्य में "गड्डु" से प्रतीत होते हैं ।[1]

1- साहित्यदर्पण - विश्वनाथ कविराज ; पृ०सं० 690

काव्यप्रकाशकार "मम्मट" ने तथा "रसगंगाधर" के प्रणेता पण्डितराज जगन्नाथ ने भी इसकी बहुत उपेक्षा की है । हिन्दी के महाकवि देव ने चित्रकाव्य को निरर्थक कहा है

शब्दों के निबन्धन से भिन्न-भिन्न प्रकार के चित्र बनाना, शब्दों को किसी वांछित क्रम से बैठाना, समान अक्षर वाले पद बनाना, एकाक्षर द्वयक्षर गतप्रत्यागत समुद्गयमक आदि कविता की रचना मे मानसिक कौशल दिखाना है । इसमें शब्दों को तोड़ने मरोड़ने की आवश्यकता पड़ती है । अतएव इसमें स्वाभाविकता बहुत कुछ नष्ट हो जाती है किन्तु यह अवश्य है कि चित्रालंकारों के प्रयोग द्वारा कवि का अद्भुत पाण्डित्य और कवित्व शक्ति प्रकट होती है । अपि च पाण्डित्य प्रदर्शित करने से बार-बार के हमारे भाव ही उस कविता को सुन्दर कहने में योग देते हैं । माघ के काव्य में पदलालित्य का विशेष योग होने से माघ काव्य का जटिलतम अंश भी भारवि के काव्य की अपेक्षा अधिक सुन्दर एवं हृदयाग्राही बन गया है । माघ के समय में इसी शब्द चित्र की ज्यादा माँग थी क्यों कि राज दरबारों में वही व्यक्ति विद्वान् व पण्डित कहलाता था जिसकी कविता में शब्दों की जादूगरी हो और उतने ही उत्तमभाव भी हों अतः लोक रंजन के लिए माघ ने इस प्रकार के काव्य की रचना की ।[1]

1- महाकवि माघ उनका जीवन तथा कृतियाँ-

डॉ० मनमोहनलाल जगन्नाथ शर्मा, पृ०51।

अपि च
सरस वाक्य पद अरथ तजि शब्द चित्त समुहात् ।
दधिकृत मधु पयस तजि वायस चाम चबात् ।।

सर्वतोभद्रबन्ध -

सर्वतोभद्र से तात्पर्य है सब ओर से ग्राह्य । इस अलंकार का भी प्रयोग महाकाव्य के उन्नीसवें सर्ग में परिलक्षित होता है-

स का र ना ना र का स,

का य सा द द सा य का ।

र सा ह वा वा ह सा र,

ना द वा द द वा द ना ।।[1]

उपर्युक्त श्लोक का अर्थ यह है कि अनेक प्रकार के शत्रु समूहों की गति एवं उसके शरीर के नाश करने वाले बाणों से युक्त वह शिशुपाल की सेना रण में अनुरक्त होकर श्रेष्ठ घोड़ों की हिनहिनाहट से व्याप्त थी ।

स	का	र	ना	ना	र	का	स
का	य	सा	द	द	सा	य	का
र	सा	ह	वा	वा	ह	सा	र
ना	द	वा	द	द	वा	द	ना
ना	द	वा	द	द	वा	द	ना
र	सा	ह	वा	वा	ह	सा	र
का	य	सा	द	द	सा	य	का
स	का	र	ना	ना	र	का	स

इस श्लोक की चारों पंक्तियों को अलग-अलग अक्षरों में सीधी लिखने से तत्पश्चात उल्टी पंक्तियों को चतुर्थ तृतीय, द्वितीय, प्रथम एक सीध में लिखने से यह सर्वतोभद्र चित्र बन जाता है। इस श्लोक का प्रत्येक पाद इस रूप में पढ़ा जा सकता है। चार कोनों के चौंसठ कोष्ठों से युक्त बन्ध में क्रमशः एक-एक अक्षर लिखकर पढ़ने से इसका सर्वतोभद्र रूप समझ मेंआ जाता है।

प्रथम पाद - पहली और आठवीं पंक्तियाँ-दायें से बायें तथा

द्वितीय पाद- दूसरी और सातवीं पंक्तियाँ-बायें से दायें और

तृतीय पाद - तीसरी और छठी पंक्तियाँ ऊपर से नीचे तथा

चतुर्थ पाद- चौथी और पाँचवीं पंक्तियाँ नीचे से ऊपर

मुरजबन्ध -

यह अलंकार 19वें सर्ग के 29वें श्लोक में द्रष्टव्य है -

सा से ना ग म ना र म्भे,

र से ना सी द ना र ता।
ता र ना द ज नो म त।
धी र ना ग म ना म या॥

1- शिशुपालवध, 19/29

उस सेना के वीर सैनिक सिंहनाद कर रहे थे । [illegible] वस्तु का नाम है-उसमें यह कोई जानता ही नहीं था । युद्धार्थ गमन के आरम्भ में वे युद्ध के उत्साह से भरे हुये थे और उनके साथ निर्दोष मदोन्मत्त हाथियों के समूह चल रहे थे ।
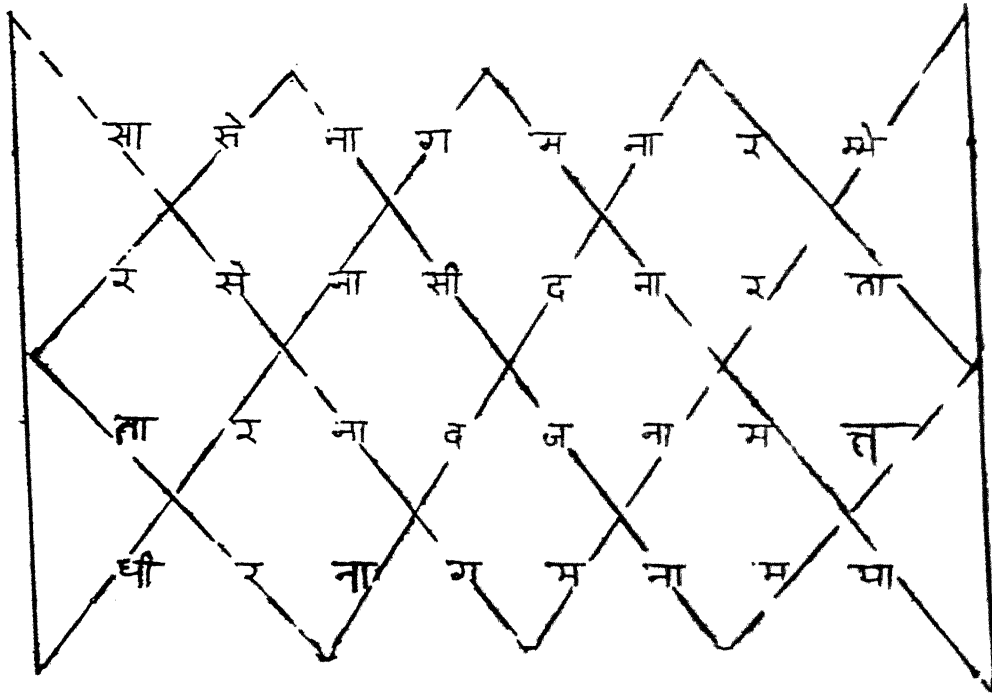
इसके अक्षरों को चारों पंक्तियों में अलग-अलग लिखकर फिर प्रथम द्वितीय, तृतीय और चतुर्थ अक्षर पढ़ने से सा सेना गमनारम्भे पंक्ति बनेगी । इस भाँति यह तीन वर्णाकार चित्र बनाता हुआ, उन वर्णों को आधे पर काटता हुआ मुरज (ढोल) नामक वाद्ययंत्र के बन्ध अर्थात् डोरी का चित्र धारण कर लेता है ।

गोमूत्रिकाबन्ध -

अतिदुष्कर चित्रालंकारों में यह गोमूत्रिकाबन्ध भी उन्नीसवें सर्ग में परिलक्षित होता है-

प्रवृत्ते विकसद्भ्रानं साधने प्यविषादिभिः ।
ववृषे विकसद्दानं युधमाप्य विषाणिभिः ।।[1]

बढ़ते हुये कलरव के साथ युद्ध के आरम्भ होने पर भी विवादरहित हाथी भी युद्ध (के मैदान) को प्राप्त कर अर्थात् युद्ध में जाकर बहुत मद बरसाने लगे ।
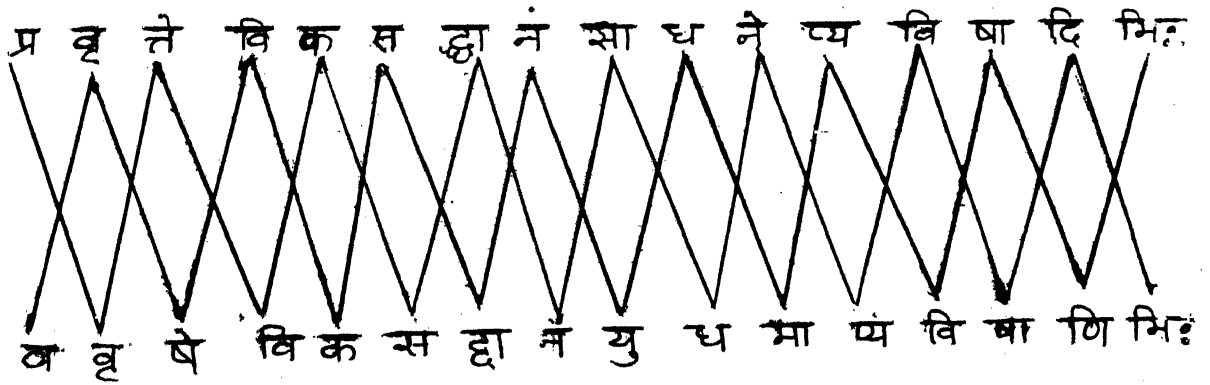
गोमूत्रिकाबन्ध चित्रकाव्य में ऊपर और नीचे के सोलहों कोष्ठों में दोनों पंक्तियों के एक-एक अक्षर को छोड़कर पढ़ने से भी यही श्लोक बन जाता है ।

1- शिशुपालवध, 19/46

अर्धभ्रमक बन्ध -

यह अलंकार शिशुपालवध के उन्नीसवें सर्ग के 72 वें श्लोक में द्रष्टव्य है -

अ भी क म ति के ने द्वे,
भी ता न न्द स्य ना श ने ।
क न त्स का म से ना के,
म न्द का म क म स्य ति ।।[1]

वह भयानक युद्ध निर्भय चित्त वाले वीरों से सुशोभित था । भयभीतों के आनन्द का नाश करने वाला था । विजय की भावना से भरी हुयी सेनाओं से युक्त था तथा लोगों के मन्द उत्साह को दूर करने वाला था ।

अ	भी	क	म	ति	के	ने	द्वे
भी	ता	न	न्द	स्य	ना	श	ने
क	न	त्स	का	म	से	ना	के
म	न्द	का	म	क	म	स्य	ति

1- शिशुपालवध, 19/72

यह चित्रबन्ध अर्द्धभ्रमक है । इसके प्रथम चरण को सीधा पढ़ने अथवा चारों चरणों के प्रथम अक्षर ऊपर से नीचे तथा आठवें अक्षर नीचे से ऊपर को इसी प्रकार दूसरे चरण को सीधा पढ़ने अथवा चारों चरणों के दूसरे अक्षरों को ऊपर से नीचे और सातवें अक्षरों को नीचे से ऊपर पढ़ने पर द्वितीय चरण प्राप्त होता है, इसी प्रकार तीसरे चरण को सीधा पढ़ने से अथवा तीसरे अक्षरों को ऊपर से नीचे, तथा छठें अक्षरों को नीचे से ऊपर पढ़ने पर तीसरा चरण प्राप्त होगा और चौथे चरण में यदि चौथे अक्षरों को ऊपर से नीचे और पाँचवें अक्षरों को नीचे से ऊपर पढ़ा जाय तो चौथा चरण प्राप्त हो जाता है । अर्थ परिवर्तन भी नहीं होता । इसे हम बाण चिन्हों एवं कोष्ठक संख्या के अनुरूप भी यथावत् पढ़ सकते हैं ।

द्व्यक्षरबन्ध -

माघ काव्य में इसका भी प्रयोग परिलक्षित होता है ।

भूरिभिर्भारिभिर्भीराभूभारैरभिरेभिरे ।
भेरीरेभिभिरभ्राभैरभीरुभिरिभैरिभाः ॥[1]

अत्यन्त भार से युक्त, भयानक पृथ्वी के भार स्वरूप, भेरी की भाँति भयानक शब्द करने वाले, बादलों के समान काले एवं निर्भीक हाथी प्रतिद्वन्द्वी हाथियों से भिड़ गये । इसमें "भ" "र" दो अक्षर प्रयुक्त है ।

1- शिशुपालवध, 19/66

अतालव्य -

अधोलिखित श्लोक में यह अलंकार दृष्टव्य है -

नामक्षराणां मलना मा भूदभर्तुरतः स्फुटम् ।
अगृह्णतपराङ्गनामसूनस्त्रं न मार्गणाः ।।[1]

श्रीकृष्ण भगवान् के नामाक्षर बाण, वीर समूहों के प्राण रूपी सम्पत्ति को छीनकर अर्थात् वीरों को मारकर भूमि में छिप गये जैसे-चोर व्यापारी के धन को छीनकर दूर जाकर कहीं पर गड्ढे आदि वाली भूमि में छिप जाते हैं । उसी प्रकार भगवान् के बाण शत्रु समूह के प्राणों को लेकर दूर भूमि में गिरकर अदृश्य हो गये । यहाँ कोई भी तालव्य वर्ण नहीं आया है । अतः अतालव्य अलंकार है ।

समुद्ग यमक --

इसकी पूर्व पद की पर पद में आवृत्ति है किन्तु नीचे समुद्ग में प्रथम और तृतीय चरण ही भंग के साथ द्वितीय और चतुर्थ चरण बन जाता है ।

अयशोभिदुरालोके कोपधाम-रणादृते ।
अयशोभिदुरा लोके कोपधा मरणादृते ।।[2]

1- शिशुपालवध, 19/110

2- शिशुपालवध, 19/58

भाग्यवान् एवं तेजस्वी होने के कारण कठिनाई से देखने योग्य तथा रण राग से क्रोधान्ध वीरों के लिए स्वामी द्वारा प्राप्त अनादर रूपी अपयश को मिटाने के लिए इस समय प्राण त्यागने के सिवा और अन्य उपाय ही क्या था ।

गूढ़ चतुर्थ -

अधोलिखित श्लोक इस अलंकार से युक्त है -

शरवर्षी महानादः स्फुरत्कार्मुककेतनः ।

नीलच्छविरसौ रेजे केशवच्छलनीरदः ।।[1]

उस समय बाणों की वृष्टि करते हुए, जोर से सिंहनाद करने वाले, चमकते हुए धनुष तथा ध्वजा से सुशोभित एवं नीले रंग के शरीर वाले भगवान् श्रीकृष्ण जल की वर्षा करने वाले, जोर से गरजने वाले, चमकते हुए इन्द्रधनुष से सुशोभित नील मेघ के समान सुशोभित हो रहे थे । प्रथम द्वितीय एवं तृतीय चरणों के अर्थ से चौथे चरण की प्राप्ति हो जाती है । अर्थात् चौथे चरण में प्रयुक्त सभी अक्षर पूर्व के तीन चरणों में आ चुके होते हैं ।

द्वयक्षर बन्ध -

अधोलिखित श्लोक में यह अलंकार प्रयुक्त हुआ है -

वररोऽविवरो वैरिविवारी वारिरारवः ।

विववार वरो वैरं वीरो रविरिवौर्वरः ।।[2]

1- शिशुपालवध, 19/96

2- शिशुपालवध, 19/100

भक्तों को वर देने वाले, नीरन्ध्र दोषरहित शत्रुओं को रोकने वाले, मेघ के समान गम्भीर ध्वनि वाले, श्रेष्ठ शूरवीर श्रीकृष्ण भगवान् ने पृथ्वी में उत्पन्न सूर्य के समान वैरी समूह को विदीर्ण कर दिया । इसमें "व" और "र" ये अक्षर प्रयुक्त हुए हैं । अतः द्व्यक्षरबन्ध अलंकार है ।

चतुष्पाद यमक -

अधोलिखित श्लोक में यह अलंकार द्रष्टव्य है -

भीमास्त्राराजिनस्तस्य बलस्य ध्वजराजिनः ।

कृतघोराजिनश्चक्रे भुवः सरुधिरा जिनः ।।[1]

जिन महावीर का अवतार धारण करने वाले श्रीकृष्ण भगवान् ने शत्रुओं की उस सेना की जो भयंकर अस्त्र-शस्त्रों से सुसज्जित थी, ध्वजा पताकाओं से सुशोभित थी एवं घोर युद्ध कर चुकी थी-भूमि को रक्त से प्लावित कर दिया।

अर्थत्रयवाची -

अधोलिखित श्लोक में यह अलंकार प्रयुक्त हुआ है -

सदामदबलप्रायः समुद्धतरसो बभौ ।

प्रतीतविक्रमः श्रीमान्हरिर्हरिरिवापरः ।।[2]

1- शिशुपालवध, 19/112

2- शिशुपालवध, 19/116

सर्वदा मदयुक्त बलराम जी को प्रसन्न करने वाले, पृथ्वी का उद्धार करने वाले, प्रसिद्ध पदन्यास वाले या पक्षी गरुड़ द्वारा गमन करने वाले, लक्ष्मीयुक्त, श्रीकृष्ण, भगवान्, सज्जनों को दुःख देने वाले बल नामक असुर को मारने वाले, विघ्न का नाश किये हुए, प्रसिद्ध पराक्रम वाले और स्वर्ग लक्ष्मी से युक्त दूसरे इन्द्र और सज्जनों (भक्तों) के लिए रोगनाशक एवं बलवर्द्धक उदय वाले (तीव्र धूप से) जल को सुखाने वाले जिसका आकाश गमन करना प्रसिद्ध है और (श्री) वाले दूसरे सूर्य के समान शोभित हुए ।

चक्रबन्ध अलंकार -

चक्रबन्ध नामक चित्र विशेष की रचना इस प्रकार कवि ने बताया है- दस गोल रेखा में बने हुए नौ मण्डल तथा नाभिस्थान (मध्यवृत्त) के साथ-साथ ही 19 कोष्ठक हुए, प्रत्येक में दो अक्षर से तीन पंक्तियों को समरेखा में लिख करके वहाँ एक पंक्ति में बायीं ओर से पहला चरण लिखकर के और फिर प्रदक्षिणा के प्रक्रम से दूसरे और तीसरे में दूसरे और तीसरे पाद को लिखकर (नेमी) धुरी स्थान में बाहरी वलय(चक्र) में 6 कोष्ठकों में लिखे हुए अक्षरों के साथ-साथ इस प्रकार अठारह कोष्ठक वाले तीसरे पाद आदि पद से आरम्भ करके प्रदक्षिणा क्रम से चौथे पाद को लिखकर वहीं समाप्त कर देना चाहिये ।

सत्वं मानविशिष्टमाजिरभसादालम्ब्य भव्यः पुरो
लब्धाधक्षयशुद्धिरुद्धरतरश्रीवत्सभूमिर्मुदा ।
मुक्त्वा काममपास्तभीः परमृगव्याधः स नादं हरे-
रेकाघैः समकालमभ्रमुदयी रोपैस्तदा तस्तरे ।।[1]

1- शिशुपालवध, 19/120

सुन्दर मूर्तिवाले पापनाशक एवं शुद्धि को प्राप्त, उन्नत श्रीवत्स-स्थान (वक्षः स्थल) वाले, अत्यन्त निर्भय, शत्रुरूप मृगों के लिए व्याध (शत्रुओं को मारने वाले) और सर्वदा उन्नतिशील वे (श्रीकृष्ण भगवान्) अहंकार से बढ़े हुए बल को प्राप्त कर तथा उत्साह से सिंहनाद कर उस समय एक साथ एक प्रहार में फेंके गये बाणों से आकाश को आच्छादित कर दिये ।

निरोष्ठ्य चित्रबन्ध -

उपमा और रूपक की एक साथ छटा को दिखाते हुए कवि माघ ने अधोलिखित श्लोक में कोई भी शब्द ऐसा नहीं रखा है जो ओष्ठ से उत्पन्न होता है- यह उनकी निरोष्ठ्य रचना कही जाती है -

दधानैर्घनसादृश्यं लसदायसदंशनैः ।
तत्र कान्चनसच्छाया ससृजे तैःशराशनिः ।।[1]

शोभमान लोहे के कवचों को धारण करने वाले, मेघ की शोभा को धारण करते हुए उन सैनिकों ने उस "प्रद्युम्न" पर सुवर्ण की कान्ति वाले वज्र को फेंका ।

भारवि और महाकवि माघ को इस प्रकार के विकटबन्ध वाले चित्रकाव्य के प्रयोग से इन दोनों का काव्य कठिन हो गया है जो "नारिकेलफल" के तुल्य है । माघ के पश्चात् के कवियों विशेषतः श्रीहर्ष ने भी इस शैली का प्रयोग किया है । अतः परवर्ती कवियों के स्वीकार्य पाण्डित्यपूर्ण शैली के प्रवर्तक महाकवि माघ है जो न केवल संस्कृत कवियों तक ही अपितु रीतिकाल के संस्कृत हिन्दी कवियों तक यह प्रणाली चलती रही ।

1- शिशुपालवध, 19/1।

(पन्चम अध्याय)

गुण

गुणों को सर्वाधिक महत्तव देने वाले आचार्य वामन ही हैं ।[1] वैसे गुणों का निरूपण भरतमुनि से ही आरम्भ हो जाता है । आचार्य भरत ने गुण का कोई भी भावात्मक लक्षण नहीं किया, केवल दोष विपर्यय को ही गुण कहा है ।[2] भरत ने काव्य के दस दोष बतायें हैं । अतः दोष विपर्ययत्वेन दस ही गुण भी बताये गये हैं ।[3] तदनुसार अभिनव कहते हैं कि दोषों का विघात ही गुण होता है ।[4]

अलंकार शास्त्र में गुणों का विवेचन प्रायः तीन दृष्टियों से हुआ है- स्वरूप की दृष्टि से, संख्या की दृष्टि से तथा अलंकारों से सम्बन्ध की दृष्टि से। गुण किसके धर्म हैं- इसका भरत ने स्पष्ट निर्देश नहीं किया है । केवल गुणों का काव्य से सम्बन्ध माना है । काव्य के अन्तर्गत पद, वाक्य, तथा अर्थ आते हैं । इसलिए

1- काव्यशोभायाः कर्तारो धर्मा गुणाः ।
काव्यालंकार सूत्रवृत्ति, 3/1/1.

2- एते दोषा हि काव्यस्य मया सम्यक् प्रकीर्तिताः
गुणा विपर्ययादेषां माधुर्यौदार्यलक्षणाः ।। नाट्यशास्त्र, 16/95

3- श्लेषः प्रसादः समतासमाधिर्माधुर्यमोजः पदसौकुमार्यम् ।
अर्थस्य च व्यक्तिरूदारता च कान्तिश्च काव्यस्य गुणा दशैते ।
नाट्यशास्त्र, 16/96

4- "एतद्दोषविघात एव गुणो भवति"
ध्वनि सिद्धान्त, विरोधी सम्प्रदाय उनकी मान्यताएं-
डॉ० सुरेशचन्द्र पाण्डेय, पृ०245

भरत की दृष्टि में गुण पद - वाक्य अर्थ के होते हैं ।[1]

आचार्य भामह ने भी गुण की कोई परिभाषा नहीं दी है । गुणों की संख्या भी तीन माना है-माधुर्य, ओजस तथा प्रसाद ।[2] उनके गुण विवेचन के आधार पर गुणों का लक्षण इस प्रकार कर सकते हैं ।

माधुर्य गुण - अधिक समास युक्त पदों का अभाव

ओजोगुण - समास बहुल पदों का सद्भाव

प्रसादगुण - नातिसमस्तता तथा अर्थ का सुप्रतीतत्व ।

इस प्रकार भामह केवल पदों की समस्तता के आधार पर ही गुणों की सत्ता निर्धारित करते हैं । उनके टीकाकार उद्भट भी गुणों को संघटना के धर्म ही मानते हैं -"संघटनाया धर्मा गुणा इति भट्टोद्भटादयः ।[3]

आचार्य दण्डी ने भरत के अनुकरण पर गुणों की संख्या दस ही माना है तथा उन्हें वैदर्भ मार्ग का प्राण बताया है । दण्डी का गुण-विवेचन काव्य में भाषा प्रयोग को काव्य के जीवित रूप में प्रतिष्ठित करता है ।[3] गुणों की पुनः स्पष्ट परिभाषा हमें आचार्य वामन के ग्रन्थ में मिलती है । उन्होंने गुणों को काव्य का शोभा विधायक धर्म कहा है तथा अलंकारों को काव्य का आतिशय्य

1- काव्यस्येति पदस्य वाक्यस्य तदुभयगतस्य अर्थस्य वेत्यर्थः।

अभिनवभारती, पृ० 334

2- माधुर्यमभिवाञ्छन्तः प्रसादं च सुमेधसः। समासवान्ति भूयांसि न पदानि प्रयुञ्जते । केचिदोजोऽभिधित्सन्त समस्यन्ति बहून्यपि ।। काव्यालंकार, 2/1,2

3- दण्डी एवं काव्यशास्त्र का इतिहास-दर्शन, पृ० 154-167

(शोभा) विधायक माना है ।[1] यद्यपि उनके इस मत का परवर्ती आलंकारिकों ने खण्डन किया है तथापि गुणालंकार का परस्पर भेद तथा उनकी स्पष्ट परिभाषा देने का श्रेय उन्हीं को है । उनके लक्षण से स्पष्ट है कि उनकी दृष्टि में काव्य में अलंकारों की अपेक्षा गुणों का प्रमुख स्थान है । गुणों को वे शब्दार्थ धर्म मानते हैं । संख्या की दृष्टि से वामन ने 20 गुण माने हैं-10 शब्द गुण और 10 अर्थ गुण ।[2] यद्यपि नाम की दृष्टि से जो शब्दगुण हैं वे ही अर्थ गुण भी है किन्तु दोनों स्थलों पर उनके लक्षण भिन्न रूप से किये गये हैं, अतः 20 गुण कहना ही उचित है ।

ध्वनिकार ने वाचक शब्द और वाच्य अर्थ शरीरस्थानीय मानकर रसादि को उससे सर्वथा पृथक् आत्मस्थानीय स्वीकार किया है । इस प्रकार आत्मा और शरीर के सम्बन्ध की दृष्टि से विचार करने पर काव्य के गुण आत्म रूप रसादि के ही धर्मसिद्ध होते हैं, शब्दार्थ रूप काव्यशरीर के नहीं । इस दृष्टि से गुणों का लक्षण व्यक्त करते हुए ध्वनिकार कहते हैं कि जिस प्रकार पुरुष के शौर्यादि गुण उसके चित्त के धर्म हैं शरीर के अंगों के नहीं उसी प्रकार काव्य के माधुर्यादि गुण भी रसरूप काव्य की आत्मा के ही धर्म हैं, शब्दार्थ के नहीं ।[3] यदि सूक्ष्म

1- "काव्यशोभायाः कर्तारो धर्मा गुणाः तदतिशयहेतवस्त्वलङ्‌काराः"

-काव्यालंकारसूत्रवृत्ति, 3/1/1-2

2- ओजःप्रसादश्लेष समतासमाधिमाधुर्यसौकुमार्योदारतार्थव्यक्ति कान्तयो बन्धगुणाः । त एवार्थगुणाः ।द्रष्टव्य ध्वनि सिद्धान्त विरोधी सम्प्रदाय एवं उनकी मान्यतायें -डॉ० सुरेश चन्द्र पाण्डे, पृ० 248

3- तमर्थमवलम्बन्ते येऽङ्गिनं ते गुणाः स्मृताः ।

ये तमर्थं रसादि लक्षणमङ्‌गिनं सन्तमवलम्बन्तेते गुणा शौर्यादिवत्।।

ध्वन्यालोक. 2/6

विचार किया जाय तो जिन माधुर्यादि को काव्य का गुण कहा जाता है वे भी वस्तुतः सहृदय के चित्तवृत्ति के ही धर्म हैं क्योंकि रस भी चित्तवृत्ति विशेष ही है काव्य तो केवल उनका व्यंजक है ।

ध्वनिकार का ही अनुसरण करते हुए आचार्य मम्मट गुणों के स्वरूप को अधिक स्पष्ट करते हैं ।[1-2] उन्होंने अपने गुण लक्षण में गुणों की तीन विशेषताओं की ओर संकेत किया है । वे तीन विशेषताएं ये हैं -

1- रसधर्मत्व

2- रसोत्कर्षत्व

3- रसाव्यभिचारिस्थितत्व

गुण रस के ही धर्म हैं ये रस के बिना नहीं रहते और रहने पर अवश्य ही रस के उत्कर्ष बनते हैं । इन तीन विशेषताओं के कारण गुणों का अलंकारों से पार्थक्य भी स्पष्ट हो जाता है क्योंकि अलंकार रस के धर्म नहीं होते । नियमतः रस के उपकारक भी नहीं होते और रस के रहने पर ही रहते हों ऐसी बात नहीं है ।[3]

ध्वनिकार माधुर्य गुण की सत्ता विप्रलम्भ श्रृंगार से अधिक करुण में मानते हैं किन्तु मम्मट सम्भोग, श्रृंगार से अधिक करुण में, करुण से अधिक विप्रलम्भ में तथा सबसे अधिक शान्तरस में माधुर्य गुण मानते हैं ।[4] ध्वनिवादी भी केवल

1- ये रसस्याङ्गिनो धर्माःशौर्यादय इवात्मनः ।
उत्कर्ष हेतवस्ते स्युरचलस्थितयो गुणाः ।। काव्यप्रकाश, 8/66

2- गुणवृत्या पुनस्तेषां वृत्तिःशब्दार्थयोर्मता: ।काव्यप्रकाश, 8/95

3-(अ) रसं विना ये नावतिष्ठन्ते अवतिष्ठमानाश्चावश्यं रसमुपकुर्वन्ति ।
बालबोधिनी, पृ0463

(ब) अलंकाराणां तु रसव्यभिचारिस्थितित्वेन नियमेनरसोपकारकत्वाभावेनवा ।।
बालबोधिनी,पृ462

4- आह्लादकत्वं माधुर्यं श्रृंगारे द्रुतिकारणम् ।
करुणे विप्रलम्भे तच्छान्ते चातिशयान्वितम् ।।काव्यप्रकाश, 8/68

तीन ही गुण मानते हैं। माधुर्य, ओज तथा प्रसाद।[1] ध्वनिवादी गुणों को रस-जन्य चित्तवृत्ति मानते हैं और रसचर्वणा के समय द्रुति, दीप्ति तथा प्रसादरूप चित्तवृत्तियां ही सम्भव हैं। अतः चित्तवृत्तियों को ही आधार मानकर गुण भी तीन ही सम्भव हैं। प्राचीन आलंकारिकों ने श्लेष, अर्थव्यक्ति, पदसौकुमार्य भाविक आदि को भी गुण माना है क्योंकि वे गुणों को शब्द धर्म तथा अर्थ धर्म मानते थे। चित्तवृत्ति का उनसे कोई भी सम्बन्ध न था किन्तु गुणों का चित्त-वृत्ति से सम्बन्ध मानने से ध्वनिवादी की दृष्टि में श्लेष आदि की गुणता कथमपि संभव नहीं हो सकती। इसलिए वामन के द्वारा बतायें गये दस गुणों में से जो गुण चित्तवृत्ति के प्रयोजक बन सकते हैं उनका अन्तर्भाव इन गुणों में ही किया गया, अन्यथा उनको दोषरूप अथवा दोषत्यागरूप कहकर उनका निराकरण किया गया।[2] यह कार्य आचार्य मम्मट ने किया और इस प्रकार ध्वनि-सिद्धान्त के त्रिगुणवाद को एक मजबूत आधार सर्वथा प्रतिष्ठित कर दिया। मम्मट ने वामन के उपर्युक्त 10 शब्द गुण और 10 अर्थगुण को मात्र तीन गुणों में अन्तर्भाव कर दिया है।

सभी रसध्वनिवादी आलंकारिकों की भाँति, विश्वनाथ कविराज भी माधुर्य, ओज तथा प्रसाद" को रसमात्र धर्म मानते हैं।[3] इस प्रकार वामन, भामह,

---

1- माधुर्यौजः प्रसादाख्यास्त्रयस्ते न पुनर्दश।

काव्यप्रकाश, 8/67

2- केचिदन्तर्भवन्त्येषु दोषत्यागात्परे श्रिताः।
अन्ये भजन्ति दोषत्वं कुत्रचिन्न ततो दश।। काव्यप्रकाश 8/72

3- साहित्यदर्पण, 8/1

मम्मट आदि अनेक आचार्यों ने केवल तीन गुणों का निरूपण किया है । माधुर्य गुण सम्भोग श्रृंगार में रहता है। चित्त के द्रवीभाव का कारण तथा आह्लादस्वरूप है। इसकी अतिशय अवस्था, करुण, विप्रलम्भ-श्रृंगार तथा शान्त में पायी जाती है । ओजोगुण चित्त की विस्तार रूप दीप्ति को उत्पन्न करने वाला है और मुख्यतः वीर रस में रहता है किन्तु वीभत्स और रौद्र रस में इसका आधिक्य पाया जाता है ।[1] प्रसाद गुण सब रसों में व्याप्त रहता है - जैसे-सूखे ईंधन में अग्नि अथवा स्वच्छ धुले हुए वस्त्र में जल अनायास ही व्याप्त हो जाता है ।[2]

महाकवि माघ की कविता में भी गुणों की भरमार है ओजोगुण - मयी कविता की रुचिरता इनमें दृष्टिगोचर होती है। माघ ने भी काव्य के तीन ही गुण माने हैं- माधुर्य, ओजस् तथा प्रसाद । माघ का काव्य ओजोगुण प्रधान काव्य कहा जाता है परन्तु इसके अतिरिक्त माधुर्य और प्रसाद गुण भी काव्य में प्रचुर मात्रा में प्रयुक्त हुए हैं ।[3]

1- दीप्त्यात्मविस्तृतेर्हेतुरोजो वीररसस्थिति ।
   बीभत्सरौद्ररसयोस्तस्याधिक्यं क्रमेण च ।।
   काव्य प्रकाश , 8/93

2- शुष्केन्धनाग्निवत् स्वच्छजलवत्सहसैव यः ।
   व्याप्नोत्यन्यत्प्रसादोऽसौ सर्वत्र विहितस्थितिः ।।
   काव्यप्रकाश , 8/94

3- संस्कृत-सुकवि-समीक्षा- आचार्य बलदेव उपाध्याय, पृ0 310

माधुर्य गुण -

"मूर्ध्नि वर्गान्त्यगाः स्पर्शा अटवर्गा रणौ लघू"
अवृत्तिर्मध्यवृत्तिर्वा माधुर्ये घटना तथा"।।[1]

टवर्ग को छोड़कर शेष स्पर्श व्यन्जन अपने-अपने वर्ग के अन्तिम वर्णों (ड़,ञ) से युक्त होकर (अनड्·ग,कुन्ज आदि) ह्रस्व अ से युक्त रकार और णकार तथा समास रहित अथवा स्वल्प समासवाली रचना माधुर्य गुण की व्यन्जक होती है ।

चतुर्थ सर्ग से एकादश सर्ग तक श्रृंगार के विविध प्रसड्·ग मिलते हैं । इसमें सम्भोग श्रृंगार का प्राधान्य रहा है । पन्चम,षष्ठ, सप्तम सर्ग में विभिन्न नायिकाओं के विविध स्वरूप प्राप्त होते हैं । चतुर्थ सर्ग के 42वें श्लोक में माधुर्य गुण के व्यन्जक वर्णों का सुन्दर प्रयोग हुआ है -

"वर्जयन्त्या जनैः सड्·गमेकान्ततस्तर्कयन्त्या सुखं सड्·गमे कान्ततः ।
योऽस्यैव स्मरासन्नतापाड्·गया सेव्यतेऽनेकया सन्नतापाड्·गया"।[2]

यहाँ पर गकार तथा तकार अपने वर्ग के अन्तिम वर्णों से युक्त हैं- जैसे सड्ग, पाड्·ग आदि में गकार अपने वर्ग के अन्तिम वर्ग ड·कार से संयुक्त है तथा कान्त यन्त्या आदि पदों में तकार अपने वर्ग के अन्तिम अक्षर नकार से संयुक्त है । इसमें समास भी अत्यल्प है । इस प्रकार इस संभोग श्रृंगार की

1- काव्यप्रकाश, 8/74

2- शिशुपालवध, 4/42

रचना में माधुर्य गुण रसाभिव्यन्जन में सहायक है । माधुर्य गुण के व्यन्जक वर्णों से युक्त अन्य पद्य भी द्रष्टव्य हैं ।[1-3]

ओजोगुण -

योगआद्यतृतीयाभ्यामन्त्ययो रेण तुल्ययोः ।

टादिः शषौ वृत्तिदैर्घ्यं गुम्फ उद्धतओजसि ।।[4]

कवर्ग, चवर्ग, तवर्ग तथा पवर्ग चारों वर्गों के प्रथम और तृतीय वर्णों के साथ क्रमशः द्वितीय और चतुर्थ वर्णों का अव्यवधान या नैरन्तर्य से प्रयोग रेफ के साथ जुड़कर किसी वर्ण का प्रयोग जैसे क्र, वक्त्र आदि में और तुल्य वर्णों का योग जैसे वित्त उच्च आदि में ण को छोड़कर शेष टवर्ग श, ष ये वर्ण तथा दीर्घ समास वाला उद्धत गुम्फन रचना ओजो गुण के व्यन्जक हैं । शिशुपालवध महाकाव्य ओजोगुण प्रधान

1- शुकाङ्गनीलोपलनिर्मितानां लिप्तेषुभासा गृहदेहलीनाम् ।
यस्यामलिन्देषु न चक्रुरेव मुग्धाङ्गना गोमयगोमुखानि ।।
शिशुपालवध, 3/48

2- स्कंधेच्छुराभिधातुमनीशा संमुखी न च बभूव दिदृक्षुः ।
स्पर्शनेन दयितस्य नतभ्रूरङ्गसङ्गचपलापि चकम्पे ।।
शिशुपालवध, 10/41

3- शिशुपालवध, 4/22, 38, 42, 5/63, 6/16

4- काव्यप्रकाश, 8/75

काव्य है । यह मुख्यतः वीर रस का उत्कर्षाधायक है वीभत्स और रौद्र रसों में भी ओजोगुण की अधिकता रहती है -

यातैश्चातुर्विध्यमस्त्रादिभेदादव्यासङ्गैः सौष्ठवाल्लाघवाच्च ।
शिक्षाशक्तिं प्राहरन्दर्शयन्तो मुक्तामुक्तैरायुधैरायुधीयाः ।।[1]

उपर्युक्त उदाहरण मे यातैश्चातु में "च" वर्ण का प्रयोग विध्य में रेफ का प्रयोग, अस्त्र में "र" का प्रयोग, अव्यासङ्गैः में "व" और "ग" का प्रयोग सौष्ठवाल्लाघवाच्च में "ल" "च" वर्णों का प्रयोग हुआ है। इसमें दीर्घ समास भी हैं। शिक्षाशक्ति में समान वर्णों का प्रयोग है । दर्शयन्तो में "र" और न" का प्रयोग मुक्तामुक्तैः में "त" वर्ण का प्रयोग हुआ है, इस कारण ओजोगुण परिलक्षित हो रहा है । इसी प्रकार ओजोगुण के व्यन्जक वर्णों से युक्त अन्य श्लोक भी प्रचुर मात्रा में काव्य में प्राप्त होते हैं ।[2-4]

1- शिशुपालवध, 18/1।

2- लूनग्रीवात् सायकेनापरस्याधामत्युच्चैराननादुत्पतिष्णोः ।
त्रेसे मुग्धैः सैंहिकेयानुकाराद्रौद्राकारादप्सरोवक्त्र चन्द्रैः ।।

शिशुपालवध, 18/59

3- निम्नेष्वोघीभूतमस्त्रक्षतानामस्त्रं भूमौ यच्चकासान्चकार ।
रागार्थं तत्किन्तु कौसुम्भमम्भः संव्यानानामन्तकान्तःपुरस्य ।।

शिशुपालवध, 18/69

4- शिशुपालवध, 18/57,65,70,19/28, 30, 20/15,18

प्रसाद गुण -

श्रुतिमात्रेण शब्दात्तु येनार्थप्रत्ययो भवेत ।

साधारणः समग्राणां स प्रसादो गुणो मतः ।।[1]

जिस (प्रसाद-व्यन्जक शब्द आदि) के द्वारा श्रवण मात्र से ही शब्द से अर्थ की प्रतीति हो जाती है और जो सब (रसों तथा रचनाओं) में समान रूप से व्याप्त होता है, वह प्रसादगुण व्यन्जक (वर्ण तथा रचना आदि) माना गया है ।

तुल्येऽपराधे स्वर्भानुर्भानुमन्तं चिरेण यत् ।

हिमांशु माशु ग्रसते तन्म्रदिम्नः स्फुटं फलम् ।।[2]

इस श्लोक में श्रवणमात्र से ही अर्थ की प्रतीति हो जाती है। अतः इसमें प्रसाद गुण है । प्रसाद गुण से युक्त अन्य पद्य भी द्रष्टव्य है ।[3-6]

1- काव्यप्रकाश, ~ 8/76

2- शिशुपालवध, 2/49

3- सवधूकाः सुखिनोऽस्मिन्ननवरतममन्दरागतामरसदृशः ।

नासेवन्ते रसवन्ननवरतममन्दरागतामरसदृशः ।।

-शिशुपालवध, 4/5 ।

4- मधुरया मधुबोधित माधवीमधुसमृद्धि समेधित मेधया ।
मधु कराङ्गनयामुहुरून्मदध्वनि भृता निभृताक्षरमुज्जगे ।।
-शिशुपालवध, 6/20

5- तेजःक्षमा वा नैकान्तं कालज्ञस्य महीपते ।
नैकमोजःप्रसादो वा रसभावविदः कवेः।। -शिशुपालवध, 2/83

6- शिशुपालवध - 5/23,24, 6/8, 38,55 ।

इन सभी श्लोकों में प्रसाद गुण विद्यमान है, क्योंकि इनके श्रवण मात्र से ही शब्द के अर्थ की प्रतीति हो जाती है । इस प्रकार माघ काव्य भी इन तीन गुणों से ही युक्त है । माघ के परवर्ती अनेक कवियों ने भी माघ को अपना आदर्श माना है। रत्नाकर का "हरविजय" माघ की शैली का सर्वोत्कृष्ट विकास है । प्राचीन आलोचक भी माघ काव्य के गुणों पर मुग्ध हो गये थे । राजशेखर ने माघके इन्हीं गुणों को देखकर उनकी प्रशस्ति में यह भी कह डाला-

"कृत्स्न प्रबोध कृद्वाणी, भारवेरिव भारवेः ।
माघेनेव च माघेन, कम्पः कस्य न जायते "।।[1]

तथा धनपाल ने भी इस तथ्य का समर्थन किया है ।[1]

रीति तथा वृत्ति -

रीति का सर्वप्रथम सुस्पष्ट एवं सैद्धान्तिक रूप से विवेचन आचार्य वामन ने किया है । यद्यपि रीति सिद्धान्त का वर्णन भरत, दण्डी और भामह ने भी किया है किन्तु ध्वनिकार के समय तक रीति-सिद्धान्त ही अधिक प्रसिद्ध था ।[2] आचार्य वामन गुण-विशिष्ट पद-रचना (पद-विन्यास) को रीति कहते हैं और रीति को ही काव्य की आत्मा बताते हैं । रीति तीन प्रकार की है - वैदर्भी,

---

1- संस्कृत -सुकवि- समीक्षा- आचार्य बलदेव उपाध्याय, पृ0 310

2- ध्वनि सिद्धान्त, विरोधी सम्प्रदाय, उनकी मान्यताएं- डॉ0सुरेश चन्द्र पाण्डेय, पृ0 278 ।

गौड़ी, पान्चाली ।[1] समग्रगुणासमन्विता वैदर्भी रीति है । ओजोगुण तथा कान्तिगुण से समन्वित एवं समास बहुला गौड़ी रीति है। माधुर्य एवं सौकुमार्य गुणों से युक्त पान्चाली रीति है । इस प्रकार वामन गुणों को ही रीति का नियामक मानते हैं । रीति को काव्य की आत्मा मानने पर भी काव्य की चारुता गुण तथा अलंकार में ही खोजते हैं ।

माघ का काव्य गौडी रीति प्रधान है फिर भी इन्होंने सभी रीतियों का प्रयोग कहीं न कहीं अवश्य किया है ।

वैदर्भी रीति -

सभी गुणों से युक्त श्लोक को वैदर्भी रीति प्रधान श्लोक कहते हैं ।[2] जैसे - माघ का यह पद्य सभी ओज:प्रसाद गुणों से युक्त है -

इहमुहुर्मुदितै:कलभैरव: प्रतिदिशं क्रियते कलभैरव: ।
स्फुरति चानुवनं चमरीचय: कनकरत्नभुवां च मरीचय: ।।[3]

इस पद्य में सभी गुणों के रहने से इसे वैदर्भी रीति का पद्य कहा गया है । इसके अतिरिक्त अन्य भी वैदर्भी रीति के श्लोक द्रष्टव्य हैं -

लवङ्गमालाकलितावतंसास्ते नारिकेलान्तरप:पिबन्त: ।
आस्वादितार्द्रक्रमुका:समुद्रादभ्यागतस्यप्रतिपत्तिमीयु: ।।[4]

1- रीतिरात्मा काव्यस्य, विशिष्टा पदरचना रीति:,विशेषो गुणात्मा । सा त्रिधा -वैदर्भी,गौडी,पान्चाली चेति । -काव्यालंकारसूत्रवृत्ति, पृ0 15

2- समग्रगुणा वैदर्भी -काव्यालंकारसूत्रवृत्ति, पृ0 17

3- शिशुपालवध, 4/60

4- शिशुपालवध, 3/81

5- शिशुपालवध 3/82,4/5,22,32,38,64

गौडी रीति -

ओजस और कान्ति गुणों से युक्तरीति गौडी रीति है ।[1] माघ काव्य में ओजों गुण का प्रचुर मात्रा में प्रयोग है इसीलिए इसमें गौडी रीति के कई पद्य मिलते हैं -

"सहस्त्रपूरणः कश्चिल्लूनमूर्धाऽसिना द्विषः ।
तथोध्र्व एव कबन्धीभवन्नर्तनक्रियाम् ।।"[2]

यहाँ श्लोक में माधुर्य और सौकुमार्य गुणों के अभाव से तथा समास बहुल होने से यह गौडी रीति उग्रपदों से युक्त रहती है।गौडी रीति से युक्त अन्य पद्य भी द्रष्टव्य हैं।[3-4]

पान्चाली रीति -

माधुर्य और सौकुमार्य गुणों से युक्त पान्चाली रीति होती है।[5] ओज और कान्ति गुणों के अभाव से उसके पद गाढत्वविहिन तथा असमास बहुल

1- ओजः कान्तिमतीगौडीया- काव्यालंकारसूत्रवृत्ति पृ0 18

2- शिशुपालवध, 19/5।

3- दन्तैश्चिच्छिदिरे कोपात् प्रतिपक्षं गजा इव ।
परिनिस्त्रिंशनिर्लूनकरवालाः पदातयः ।।
शिशुपालवध, 19/55

4- शिशुपालवध,
19/53, 20/17, 18, 20, 58

5- माधुर्य सौकुमार्योपपन्ना पान्चाली-काव्यालंकारसूत्रवृत्ति, पृ0 19

होते हैं । ऐसा एक श्लोक भी है –

"मुदे मुरारेरमरैः सुमेरोरानीयवस्योपचितस्यश्रृङ्गैः ।
भवन्ति नोददामगिरां कवीनामुच्छ्रायसौन्दर्यगुणा मृषोद्याः ॥"[1]

यह श्लोक कान्तिगुण ओजोगुण के अभाव से पान्चाली रीति का है। इसी प्रकार अन्य श्लोक भी द्रष्टव्य है ।[2-3]

वृत्ति –

उद्भट ने "काव्यालंकारसारसंग्रह" के अनुप्रास अलंकार के प्रसंग में वृत्तियों का विवेचन किया है । वे वृत्तियों को अनुप्रास की जाति मानते हैं । उद्भट वृत्ति तीन प्रकार की मानते हैं परुषा, उपनागरिका, और ग्राम्या(कोमला)। उद्भट के वृत्ति सिद्धान्त का प्रतिपादन करते हुए लोचनकार कहते हैं कि वर्णनीय विषय की दीप्तिमत्ता, मसृणता तथा मध्यमता को दृष्टि में रखकर ही वर्णों की परुषता कोमलता तथा मध्यमता के अनुसार अनुप्रास के तीन वर्ग बनाने के लिए तीन वृत्तियां बनायी गयी हैं और इस प्रकार ये वृत्तियां केवल अनुप्रास की जातियां ही हैं । अनुप्रास जाति होने के कारण वृत्तियों का अनुप्रास अलंकार से

1- शिशुपालवध, 4/10

2- यावत्स एव समयः सममेव तावदव्याकुलाः पटमगान्यभितोवितत्या
पर्याप्तत्क्रियकलोकमगण्यपण्यपूर्णापणा विपणिनो विपणीर्विभेजुः ॥

–शिशुपालवध, 5/24

3- शिशुपालवध,
4/21, 26,39, 6/44

अभ्याधिक व्यापार नहीं है इसलिए वे अनुप्रास से भिन्न नहीं हैं । ध्वनि सिद्धान्त के अनुसार उदभट की परुषा आदि वृत्तियों का पर्यवसान भी रसध्वनि में हो जाता है क्योंकि वर्णों की परुषता तथा कोमलता का रसव्यंजकता के नाते ही महत्व सिद्ध होता है, इसलिए कठोरवर्णों वाली परुषावृत्ति का रौद्रादि में, उपनागरिका वृत्ति का श्रृंगारादि कोमल रसों में तथा ग्राम्या वृत्ति का हास्यादि रसों में ही पर्यवसान हो जाता है ।[1]

जिस प्रकार रीति का गुणों में और गुणों का रस में पर्यवसान होने के कारण परम्परया रीति का रसध्वनि में पर्यवसान हो जाता है, उसी वृत्तियों का भी रसध्वनि में पर्यवसान हो जाता है । रसव्यंजकता के नाते दोनों रीति और वृत्ति समान आसन की अधिकारी हैं, इसीलिए वृत्तियों का विवेचन कर ध्वनिकार कहते हैं कि व्यंग्य-व्यंजक भाव से युक्त ध्वनि के ज्ञात हो जाने पर वृत्तियां भी रीति की पदवी को प्राप्त करती हैं ।

ध्वनिकार के उक्त रीति और वृत्ति के रसव्यंजकता के कारण किये गये समीकरण का परवर्ती ध्वनिवादियों ने अनुकरण किया है । आचार्य मम्मट ने तो रीति और वृत्ति की अभिन्नता ही मानी है । वे माधुर्यगुण व्यंजकवर्णों वाली उपनागरिका वृत्ति को वैदर्भी का, ओजोगुणव्यंजक परुषा वृत्ति को गौडी रीति का, तथा प्रसादगुण व्यंजक ग्राम्यावृत्ति को पांचाली रीति का ही पर्याय मान लेते हैं । आचार्य मम्मट नेइस रीति और वृत्ति के समीकरण पर आचार्य रुद्रट के वृत्ति रीति-विषयक सिद्धान्त का स्पष्ट प्रभाव है ।

1- ध्वनिसिद्धान्त, विरोधीसम्प्रदाय, उनकी मान्यताएं-

डॉ0सुरेश चन्द्र पाण्डेय, पृ0280

आचार्य रुद्रट ने दो प्रकार की वृत्ति मानी है वर्ण वृत्ति तथा पदवृत्ति । यद्यपि उन्होंने इस प्रकार से द्विविध वृत्ति का नामकरण नहीं किया तथापि उनके वृत्ति विवेचन से यही निष्कर्ष निकलता है कि पदवृत्ति न कहकर "नाम्नां वृत्तिः" कहते हैं और नामाख्यातनिपातादि में परिगणित नाम शब्द का अर्थ पद ही है। वर्ण वृत्ति ही अनुप्रास वृत्ति है। यह अनुप्रास वृत्ति पाँच प्रकार की है । मधुरा, प्रौढ़ा, परुषा ललिता तथा भद्रा ।[1] यह तो वर्णों के सन्निवेश के आधार पर अनुप्रास वृत्ति है क्योंकि अनुप्रास में वर्णों का ही साम्य रहता है । पद का नहीं । पदों के सन्निवेश के आधार पर मानी गयी पदवृत्ति (नामवृत्ति) का दो भेद किया गया है - समासवती वृत्ति तथा असमासवती वृत्ति। असमासा वृत्ति को वैदर्भी रीति कहते हैं तथा समासवती वृत्ति के भी लघुसमास, मध्य-समास एवं दीर्घ समास के आधार पर त्रिविध वृत्तियों को क्रमेण पान्चाली लाटी गौडी रीति कहते हैं ।

इस प्रकार माघ का काव्य समस्त गुणों से युक्त है । परन्तु, ओजोगुण प्रधान है । काव्य में समस्त रीतियां भी दिखायी पड़ती हैं । परन्तु गौडी रीति का प्रयोग ज्यादा हुआ है वृत्तियों का प्रयोग माघ काव्य में यत्र तत्र मिलता है ।

1- मधुरा प्रौढ़ा परुषा ललिता भद्रेति वृत्तयः पन्च ।
वर्णानां नानात्वादस्येति यथार्थनामफलाः ।।

काव्यालंकार, 2/19

षष्ठ अध्याय

रसादि विवेचन

प्रायः सभी आचार्यों ने आनन्द को ही काव्य का आत्यन्तिक प्रयोजन बतलाया है। काव्य का जायासम्मित उपदेश आनन्दमूलक ही है। काव्य का जायासम्मितत्व लक्षण ही उसे प्रभु-सम्मित वेदादि तथा मित्र-सम्मित इतिहासादि से भिन्न बनाता है जैसा कि लोचनकार ने कहा है - "प्रभुसम्मितेभ्यो वेदादिभ्यो मित्रसम्मितेभ्यश्चेतिहासादिभ्यो व्युत्पत्ति हेतुभ्यः कोऽस्य काव्य रूपस्य व्युत्पत्ति हेतोः जायासम्मितत्वलक्षणो विशेषः इति प्राधान्येन आनन्द एवोक्तः।[1] काव्यों में आनन्द की कल्पना दो रूपों में पल्लवित हुई है - 1-वर्णन शैली अथवा अभिधान प्रकार का चमत्कार और 2-काव्य के प्रतिपाद्य की सुन्दर व्यन्जना। प्रथम के अन्तर्गत अलङ्कारादि तथा द्वितीय में रस का अन्तर्भाव है। अलङ्कारादि काव्य के बाह्य तत्त्व तथा रस अन्तस्तत्व का निर्माण करता है। ध्वनिवादी आचार्यों ने अभिनेयार्थ तथा अनभिनेयार्थ सभी प्रकार के काव्यों में चमत्कार अथवा आनन्द का कारण रस ही को माना है। काव्य के प्राण तत्व रस की निष्पत्ति करना ही कवि का मुख्य व्यापार बताया गया है-"रसबन्ध एव मुख्यः कवि-व्यापारविषयः।[2] भामह ने "न कान्तमपि निर्भूषं विभाति वनितामनम्"[3]

1- लोचन, पृ० 40-41

2- लोचन, पृ० 363

3- काव्यालंकार, 1/13

कहकर काव्य में गुण तथा अलंकार रूप भूषा का होना अनिवार्य माना है । भामह की दृष्टि में गुण और अलंकार काव्य के सौन्दर्याधायक हैं । इस वचन को कहने वाले भामह ने रस का उल्लेख करते हुए महाकाव्य में उसकी स्थिति आवश्यक बताई है । युक्तं लोक स्वभावेन रसैश्च सकलैः पृथक् । "रसवत्" अलंकारों के वर्णन में श्रृंगारादि रसों का निर्देश भी किया है ।[1] दण्डी भी रसतत्व से परिचित हैं, उन्होंने रसवत् अलंकार के अन्तर्गत आठों रस और आठ स्थाई भावों का उल्लेख किया है ।[2] उन्होंने ने माधुर्य गुण के अन्तर्गत रस की स्थिति मानी है ।[3]

उदभट ने "रसवत्" अलंकार की व्याख्या करते हुए आगे स्थायी भाव, संचारीभाव, विभाव आदि पारिभाषिक संज्ञाओं का निर्देश कर, रस की नवप्रकारता भी मानी है ।[4] रुद्रट ने काव्य को प्रयत्नपूर्वक रसयुक्त करने के लिए कहा है । रुद्रट की दृष्टि में श्रृंगार रस ही सर्वश्रेष्ठ रस है ।[5]

आनन्दवर्धन रस को ही मुख्यता प्रदान करते हैं । उन्होंने रस व्यन्जन के विषय में कुछ इतिकर्तव्यताओं का निर्देश करते हुए सहृदयों तथा कविजनों की व्युत्पत्ति के लिए अमूल्य उपदेश दिये हैं । उनकी दृष्टि में केवल इतिवृत्त का

1- "रसवद्दर्शितस्पष्ट श्रृंगारादि रसं यथा"

काव्यालंकार, 1/21; 3/6

2- "इह त्वष्टरसायत्ता रसवत्ता स्मृतागिराम्"

काव्यादर्श, 2/292

"प्राक्प्रीतिदर्शिता सेयं रतिः श्रृङ्गारतां गता ।"

काव्यादर्श, 2/281

3- "मधुरं रसवद्वाचि वस्तुन्यपि रसस्थितिः।" काव्यादर्श, 1/51

4- "रसवद् दर्शितस्पष्ट श्रृंगारादि रसोदयम् ।" काव्यालंकारसार संग्रह, 4/2-4

5- "तस्मात् तत् कर्तव्यं यत्नेन महीयसा रसैर्युक्तम् ।"

काव्यालंकार, 12/2, 14/38

निर्वाह कर कविजन रस की उपेक्षा कर देते हैं जो कि उनका स्खलन है । कभी-कभी कविजन अलंकारादि के सन्निबन्धन में ही लगे रह जाते हैं । और रस की उपेक्षा कर बैठते हैं ।[1] ध्वनिकार की दृष्टि में यह उनका स्खलन है । वे तो रस को ही काव्य में सर्वाधिक प्रामुख्य प्रदान करते हैं -

मुख्या व्यापार विषया: सुकवीनां रसादय: ।
तेषां निबन्धने भाव्ये तै: सदैवाप्रमादिभि: ।।
नीरसस्तुप्रबन्धो य: सोऽपशब्दो महान् कवे: ।
स तेनाकविरेव स्यादन्येनास्मृतलक्षण: ।।[2]

काव्य में रस निर्वाह के विषय में कवि को बहुत सतर्क रहना चाहिये और निम्नलिखित बातों का ध्यान रखना चाहिये -

1- ऐतिहासिक अथवा कवि-कल्पित इतिवृत्त का रसोचित उपन्यास ।

2- ऐतिहासिक क्रम से प्राप्त भी किन्तु रस के लिए अनुपयोगी अंश का परित्याग तथा उपयोगी अंश का सन्निवेश, रसानुकूलता की दृष्टि से कल्पित कथावस्तु का भी सन्निवेश ।

3- सन्धियों तथा सन्ध्यङ्गों की रसानुकूल योजना ।

4- रस के यथावसर उद्दीपन एवं प्रशमन की योजना तथा विश्रान्त होते हुए अङ्गीरस का अनुसन्धान ।

5- अलंकारों का रसोचित सन्निवेश ।[3]

1- "दृश्यन्ते च कवयोऽलङ्कारनिबन्धनैकरसा अनपेक्षित रसा: प्रबन्धेषु ।'
ध्वन्यालोक, पृ० 342

2- ध्वन्यालोक, पृ० 364

3- ध्वन्यालोक 3/10-14

कथा शरीर के निर्माण में स्थायी भाव, विभाव, अनुभाव तथा सन्चारी भाव के औचित्य का सतत ध्यान रखना चाहिये । नायकादि की प्रकृति के अनुकूल ही उत्साहादि भावों अभिव्यन्जन होना चाहिये । नायकादि भी दिव्य, अदिव्य, दिव्यादिव्य तथा उत्तम, मध्यम और अधम कोटि के होते हैं । उत्साहादि भावों की व्यन्जना उनकी प्रकृति के अनुकूल होनी चाहिये । यदि नायक मानुष कोटि का राजा है तो उसमें सप्तार्णव-लङ्घन आदि व्यापार अनुचित होने के कारण नीरसता उत्पन्न करता है । यदि वही नायक दिव्य-प्रकृति का हो तो इस प्रकार का उत्साहातिरेक सरसता लाता है । उत्तम प्रकृति के राजा का उत्तम प्रकृति की नायिका के साथ ग्राम्य-सम्भोग-वर्णन नितान्त अनुचित है, क्योंकि वह माता-पिता के सम्भोग-वर्णन के समान नितान्त असभ्य माना गया है। कहने का तात्पर्य यह है कि रस-भङ्ग का सबसे बड़ा कारण अनौचित्य है । इस सम्बन्ध में भामह के औचित्य-विषयक-मत को मानते हुए ध्वनिकार की उक्ति है-

अनौचित्यादृते नान्यद्रसभङ्गस्य कारणम् ।
प्रसिद्धौचित्यबन्धस्तु रसस्योपनिषत्परा ।।[1]

इतिवृत्त चयन के विषय में भी औचित्य का सदा ध्यान रखना चाहिये । विभावादि के अनुकूल चुना गया ऐतिहासिक इतिवृत्त रस का व्यन्जक बनता है । रामायण तथा महाभारत की रसवती कथावस्तु में से भी केवल विभावादि के औचित्यानुसार वस्तु का ग्रहण करना चाहिये तथा अन्य वस्तुओं का सर्वथा

1- ध्वन्यालोक , पृ० 190

परित्याग कर देना चाहिये ।

नाटकीय सन्धियों एवं सन्ध्यङ्गों की योजना भी रस की दृष्टि से ही करनी चाहिये । प्रबन्ध में रस का यथावसर उद्दीपन एवं प्रशमन भी होना चाहिये और आरम्भ किये अङ्गीरस को मन्द पड़ता हुआ देखकर उसका पुनः पुनः अनुसन्धान करना चाहिये । अलङ्कारों की योजना भी रसानुकूल ही होनी चाहिये । अभिनेयार्थ अथवा अनभिनेयार्थ काव्य में एक रस अङ्गी तथा अन्य रस अङ्गरूप में सन्निविष्ट होने चाहिये । मुक्तक काव्य में प्रत्येक पद्य पृथक् - पृथक् रसों का व्यन्जक होता है । इसलिए वहाँ वैरस्य उत्पन्न होने का कोई कारण नहीं होता । महाकाव्य में अङ्गी रस एक ही होता है किन्तु आद्योपान्त एक रस से कहीं वैरस्य न उत्पन्न हो, इसलिए उसमें अन्य भी रसों का अङ्गरूप में स्थान आवश्यक माना गया है । अङ्गी रस प्रबन्ध-व्यापी होता है इसलिए उसका आदि से अन्त तक सुष्ठु निर्वाह अपेक्षित है । अङ्ग रसों की योजना इस प्रकार करनी चाहिये कि वे अङ्गी रस के निर्वाह में बाधक न हों ।[1]

रस विरोधियों का परिहार -

रसाभिव्यक्ति के इच्छुक कवि के लिए अपने काव्य में रस-विरोधी

1- प्रसिद्धेऽपि प्रबन्धानां नानारसनिबन्धने ।
एको रसोऽङ्गीकर्तव्यस्तेषामुत्कर्षमिच्छता ।।
रसान्तर समावेशः प्रस्तुतस्य रसस्य यः ।
नोपहन्त्यङ्गितां सोऽस्य स्थायित्वेनावभासिनः ।।

ध्वन्यालोक, 3/21-22

तत्वों का परिहार भी आवश्यक है । आनन्दवर्धन ने पाँच प्रकार के रसभङ्ग के हेतु बतायें हैं -

1- विरोधी रसके सम्बन्धी विभावादि का ग्रहण कर लेना ।

2- प्रस्तुत रस से परम्परया सम्बन्ध रखने वाली भी अन्य कथावस्तु का अधिक विस्तार-पूर्वक वर्णन ।

3- असमय में रस को समाप्त कर देना अथवा अनवसर में उसका प्रकाशन ।

4- रस का पूर्ण परिपोषक हो जाने पर भी बार-बार उसका उद्दीपन करना ।

5- वृत्ति अर्थात् व्यवहार का अनौचित्य अथवा भरतमुनि प्रोक्त कैशिकी आदि अथवा उद्भट-प्रोक्त उपनागरिका आदि वृत्तियों का अनौचित्य ।[1]

प्रस्तुत रस के विरोधी विभाव, अनुभाव तथा सञ्चारी भाव का ग्रहण करना रसभङ्ग का हेतु होता है । प्रस्तुत रस से यथा-कथञ्चित् सम्बद्ध भी वस्त्वन्तर का विस्तार के साथ वर्णन करना भी रसभङ्ग का हेतु बनता है जैसे विप्रलम्भ श्रृंगार के प्रसंग में पर्वतादि का यमकादि अलङ्कारों से युक्त सविस्तार वर्णन करना । अनवसर में रस का विराम भी रसभङ्ग का कारण बन जाता है जैसे नायक-नायिका के श्रृंगार के परिपुष्ट हो जाने पर तथा उनके परस्परानुराग के ज्ञात हो जाने पर भी उनके समागम के उपाय की चिन्ता को छोड़कर अन्य व्यापार का वर्णन करना । अनवसर में रस का प्रकाशन भी वैरस्य लाता है जैसे अनेक वीरों के संग्राम छिड़ जाने पर श्रृंगार रस का प्रकाशन उदाहरणार्थ वेणीसंहार नाटक में युद्ध छिड़ जाने पर दुर्योधन तथा भानुमती का श्रृंगार-वर्णन । परिपुष्ट हुए रस का

1- ध्वन्यालोक, 3/17-19

पौनः पुन्येन उद्दीपन भी बार-बार स्पर्श किये गये अतएव मुर्झाये हुए पुष्प के समान रसापकर्ष का कारण बन जाता है । व्यवहार का अनौचित्य भी रसभङ्ग का कारण है, जैसे नायिका का नायक के प्रति अपने भ्रूभङ्ग आदि के द्वारा अभिलाषा व्यक्त करना उचित है किन्तु ऐसा न कर यदि वह स्वयं सम्भोग की अभिलाषा को कहने लगे तो यह व्यवहार का अनौचित्य होगा ।

शिशुपालवध महाकाव्य में रस विवेचन -

शिशुपालवध महाकाव्य में अङ्गीरस वीर तथा अन्य अङ्ग रसों की सुन्दर योजना हुयी है ।

वीर रस -

"शिशुपालवध" में अङ्गी रस वीर है ।[1] श्रृंगार, रौद्र, भयानक आदि रस इसमें अङ्ग-रूप में सन्निविष्ट हैं । अङ्ग-रसों में श्रृंगार को इस महाकाव्य में प्रामुख्य प्राप्त हैं । माघ ने भारतीय संस्कृति के उन्नायक तथा दुष्टों के संहारक श्रीकृष्ण सदृश नायक और प्रजोत्पीड़क दुष्ट शिशुपाल सदृश प्रतिनायक का चयन कर

1- नेताऽस्मिन् यदुनन्दनः स भगवान्वीरः प्रधानो रसः ।
श्रृङ्गारादिभिरङ्गवान् विजयते पूर्णा पुनर्वर्णना ।
इन्द्रप्रस्थगमाद्युपायविषयश्चैद्यावसादः फलं
धन्यो माघकविर्वयं तु कृतिनस्तत्सूक्तिसंसेवनात् ।।

सर्वङ्कषा - मल्लिनाथ, पृ० 1

उन दोनों की वीरता तथा उन दोनों के मध्य चलने वाले युद्ध का वर्णन कर अपनी काव्य-रचना-चातुरी का सुन्दर परिचय दिया है । "शिशुपालवध" में वीर रस का सन्निबन्धन श्रीकृष्ण शिशुपाल तथा दोनों की सेनाओं के वीरों के माध्यम से हुआ है । अङ्गी-रस को प्रबन्ध-व्यापी होना चाहिये । एक ही रस कहीं वैरस्य न उत्पन्न कर दे, इसलिए बीच-बीच में अङ्ग रसों की भी समुचित योजना करनी चाहिये । अङ्ग रसों की योजना इस प्रकार करनी चाहिये कि वे अङ्गी रस के निर्वाह में बाधक न हों ।[1] कुछ आचार्यों के अनुसार वीर रस तीन प्रकार का होता है और कुछ के अनुसार चार प्रकार का होता है ।[2-3]

1- इतिवृत्तवशायातां त्यक्त्वाऽननुगुणां स्थितिम् ।
उत्प्रेक्ष्याप्यन्तराभीष्टरसोचित कथोन्नयः ।।
सन्धि सन्ध्यङ्गघटनं रसाभिव्यक्त्यपेक्षया ।
न तु केवलया शास्त्रस्थितिसम्पादनेच्छया ।।

-ध्वन्यालोक, 3/11-12

2- वीरः प्रतापविनयाध्यवसाय सत्त्व-
मोहविषादनयविस्मयविक्रमाद्यैः ।
उत्साहभूः स च दयारणदानयोगात्-
त्रेधा किलात्रमतिगर्व धृतिप्रहर्षाः ।।

-दशरूपक, 4/72

3- स च दानधर्मयुद्धैर्दयया च समन्वितश्चतुर्धा स्यात् ।।

-साहित्यदर्पण, 3/234

शिशुपालवध में अङ्गी-रस की सुन्दर व समुचित योजना हुई है। किन्तु श्रृंगार-रूप अङ्ग-रस को इतनी अधिक कवि ने प्रधानता प्रदान कर दी है कि तत्सम्बद्ध स्थलों को देखकर ऐसा प्रतीत होने लगता है कि मानो यह वीर-रस प्रधान नहीं प्रत्युत श्रृंगार-रस प्रधान काव्य है। ऐसे स्थलों पर अङ्गी रस विश्रान्त होता हुआ सा प्रतीत होता है। "शिशुपालवध" में नायक गत वीर रस के सर्वप्रथम दर्शन प्रथम सर्ग में होते हैं। जहाँ पूर्व जन्म के वृत्तान्त को प्रस्तुत करते हुए नारद जी श्रीकृष्ण जी से कहते हैं -

सटाच्छटाभिन्नघनेनबिभ्रता नृसिंह। सैंहीमतनुं तनुं त्वया।
स मुग्धकान्तास्तनसङ्गभङ्गुरैरुरोविदारं प्रतिचस्करे नखैः॥[1]

श्लोक का भाव इस प्रकार है- नृसिंह। विशाल सिंह-शरीर को धारण किये हुए (अतएव) केसरों के समूहों से मेघों को विदीर्ण करने वाले आप ने कान्ता के कठोर स्तनद्वय के सङ्ग से उच्चावच हो गये नखों से पेट फाड़कर उस हिरण्यकशिपु का वध किया।

इसी प्रकार जब शिशुपाल रावण रूप में था, तब श्रीकृष्ण ने किस प्रकार उसका वध किया- इसका उल्लेख करते हुए नारद जी कहते हैं -

स्मरत्यदो दाशरथिर्भवन्भवानमुं वनान्ताद्वनितापहारिणम्।
पयोधिमाबद्धचलज्जलाविलं विलङ्घ्य लङ्कां निकषा हनिष्यति॥[2]

1- शिशुपालवध, 1/47

2- शिशुपालवध, 1/68

उपर्युक्त श्लोक का भाव यह है - दशरथ पुत्र (रामचन्द्र) होते हुए आपने दण्डकारण्य से स्त्री (सीता) का अपहरण करने वाले इस रावण को पुल बाँधने से चन्चल जल वाले समुद्र को लाँघकर लंका के पास मारा था, यह आप स्मरण करते हैं। इन दोनों उदाहरणों में आलम्बन है, क्रमश: हिरण्यकशिपु तथा रावण, उद्दीपन उनका औद्धत्य, श्रीकृष्ण द्वारा उनका वध अनुभाव, तथा मति, स्मृति एवं गर्व आदि सन्चारी भाव हैं।

प्रतिनायक-गत शौर्य के दर्शन भी प्रथम सर्ग में होते हैं। नायक की वीरता को प्रतिष्ठापित करने के लिए प्रतिनायक के भी शौर्य का वर्णन नितान्त आवश्यक है। रावण-रूप में वर्तमान शिशुपाल के विजय में नारद की उक्ति है -

> रणेषु तस्य प्रहिता: प्रचेतसा सरोष हुंकार पराङ्‍मुखीकृता: ।
> प्रहर्तुरेवोरगराजरज्जवो जवेन कण्ठसभया: प्रपेदिरे ॥[1]

उपर्युक्त श्लोक का भाव यह है - युद्ध में वरुण के द्वारा छोड़े गये तथा रावण के द्वारा क्रोध के साथ किये गये हुंकार से लौटाये गये रस्सी के समान नागपाश नामक शस्त्रों ने भय-युक्त होकर प्रयोक्ता के ही कण्ठ को वेग के साथ प्राप्त कर लिया। इस उदाहरण में वरुण आलम्बन है। रावण का हुंकार उद्दीपन, नागपाश नामक शस्त्र अनुभाव, भय, वेग आदि सन्चारी भाव हैं।

1- शिशुपालवध, 1/56

माघ ने अपने नायक की वीरता का सुष्ठु प्रतिपादन किया है -

कटुनापि चैद्यवचनेन विकृतिमगमन्न माधवः ।
सत्यनियतवचसं वचसा सुजनं जनाश्चलयितुं क ईशते ।।[1]

शिशुपाल के क्रोधयुक्त वचन सुनकर भी श्रीकृष्ण भगवान् विकार-युक्त (क्षुब्ध) नहीं हुए क्योंकि सत्यप्रतिज्ञ सज्जन को कटुवचन कहकर भी कोई क्षुभित नहीं कर सकता है । यदि शिशुपाल के वचनों से श्रीकृष्ण में कोई विकार आ जाता तब यह उनका वीररूप न होकर रौद्र रूप हो जाता है ।[2]

षोडश सर्ग में दूत के मुख से प्रतिनायक के शौर्य एवं पराक्रम का सुन्दर परिचय प्राप्त होता है । दूत अपने स्वामी के पराक्रम का वर्णन करते हुए कहता है -

न तदद्भुतमस्य यन्मुखं युधि पश्यन्ति भिया न शत्रवः।
द्रवतां ननु पृष्ठमीक्षिते वदनं सोऽपि न जातु विद्विषाम् ।।[3]

युद्ध में शत्रु लोग इन (शिशुपाल) के मुख को नहीं देखते, यह आश्चर्य नहीं है, क्योंकि वह शिशुपाल भी भागते हुए शत्रुओं की पीठ को ही देखता है, उनके मुख को कभी नहीं देखता (अर्थात् युद्ध में शिशुपाल के सामने कोई भी शत्रु नहीं ठहरता) ।

इसी प्रकार का अन्य उदाहरण -

1- शिशुपालवध, 15/40

2- प्रस्वेदरक्तवदननयनादिक्रोधानुभावरहितो युद्धवीरोऽन्यथा रौद्रः ।

-दशरूपक, 4/72

3- शिशुपालवध, 16/60

न चिकीर्षति यः स्मयोद्धतो नृपतिस्तच्चरणोपगं शिरः ।
चरणं कुरुते गतस्मयः स्वमसावेव तदीयमूर्धनि ।।[1]

दर्प से उद्धत जो राजा अपने मस्तक को शिशुपाल के चरण के पास नहीं झुकाता है, अर्थात् उनके चरणों में नम्र होकर प्रणाम नहीं करता है, दर्प-हीन यह शिशुपाल ही उस राजा के मस्तक पर अपने चरण को रखता है । इन दोनों उदाहरणों में शत्रुगण आलम्बन हैं, उनकी चेष्टायें उद्दीपन, शिशुपाल द्वारा उनका वध किया जाना, उनके मस्तक पर चरण-प्रहार आदि अनुभाव तथा मति और गर्व आदि सन्चारी भाव हैं ।

सप्तदश सर्ग में प्रतिपक्षी की सेना के उत्साह मिश्रित हर्ष का सुन्दर-चित्रण किया गया है -

यथा यथा पटहरवः समीपतामुपागमत् स हरिवराग्रतः सरः ।
तथा तथा हृषितवपुर्मदाकुला द्विषां चमूरजनि जनीव चेतसा ।।[2]

श्रीकृष्ण रूप वर के आगे2चलने वाला वह नगाड़े का शब्द जितना-जितना समीप होता गया, उतना-उतना शत्रुओं की सेना वधू के समान मन से आनन्द-विह्वल तथा पुलकित शरीर वाली होती गयी ।
इस उदाहरण में भगवान् श्रीकृष्ण आलम्बन, पटह ध्वनि उद्दीपन, मन का आनन्दित होना आदि अनुभाव, पुलक आदि संचारी भाव हैं ।

1- शिशुपालवध, 16/68

2- शिशुपालवध, 17/43

शिशुपालवध में दोनों सेनाओं के मध्य चलने वाले युद्ध का सुविस्तृत एवं साङ्गोपाङ्ग चित्रण हुआ है - युद्ध से नहीं भागने वाले तथा गम्भीर ध्वनि वाले वे दोनों सेना-समुद्र वेग-पूर्वक एक दूसरे से मिल गये । दोनों सेनाओं के युद्ध विषयक औत्सुक्य का दृश्य दर्शनीय है -

पत्तिः पत्तिं वाहमेयाय वाजी नागं नागः स्यन्दनस्थो रथस्थम् ।
इत्थं सेना वल्लभस्येव रागादङ्गेनाङ्गं प्रत्यनीकस्य भेजे ।।[1]

पैदल-पैदल में, घोड़ा-घोड़े में, हाथी-हाथी में, रथ पर चढ़ा हुआ रथ पर चढ़े हुए में मिल गया, इस प्रकार सेना ने युद्ध के अनुराग से शत्रु के सेनाङ्गों को अपने सेनाङ्गों से उस प्रकार प्राप्त किया, जिस प्रकार कोई रमणी प्रियतम के (रति-विषयक) अनुराग से उसके अङ्गों को अपने अङ्गों से प्राप्त करती है । इस उदाहरण में युद्ध पक्ष में उभयपक्ष की सेना आलम्बन, उभय पक्ष की सेना का परस्पर मिल जाना अनुभाव, उत्साह संचारी भाव है ।

अष्टादश सर्ग में दोनों सेनाओं के तुमुल-युद्ध के वर्णन के पश्चात् एकोनविंश सर्ग में द्वन्द्व-युद्ध का वर्णन चित्र-बन्ध द्वारा किया गया है । श्रीकृष्ण ने शत्रु पर किस प्रकार आक्रमण किया इसका भी वर्णन प्राप्त है-श्रीकृष्ण की युद्ध-वीरता अद्भुत है -

दिङ्मुखव्यापिनस्तीक्ष्णान्ह्रादिनो मर्मभेदिनः ।
चिक्षेपैकक्षणेनैव सायकानहितांश्च सः ।।[2]

1- शिशुपालवध 18/2

2- शिशुपालवध 19/95

उन्होंने (श्रीकृष्ण भगवान् ने) दिगन्त तक व्याप्त, तीक्ष्ण ध्वनि करते हुए तथा मर्मस्थल को विदीर्ण करने वाले, बाणों को तथा शत्रुओं को एक क्षण में ही निरस्त कर दिया । इस उदाहरण में आलम्बन है श्रीकृष्ण, धनुष की तीक्ष्ण ध्वनि उद्दीपन, शत्रु संहार अनुभाव ।

नायक तथा प्रतिनायक द्वारा विविध अस्त्रों के प्रयोग के वर्णन द्वारा दोनों की युद्ध वीरता का सुन्दर निरूपण हुआ है -

शुद्धिं गतैरपि परामृजुभिर्विदित्वा
बाणैरजय्यमविघाटितममभिस्तम् ।
मर्मातिगैरनृजुभिर्नितरामशुद्धै-
र्वाक्शायकैरथ तुतोद तदा विपक्षः ।।[1]

अन्त में जब शिशुपाल अपने बाणों द्वारा श्रीकृष्ण पर विजय प्राप्त करने में सफल नहीं हुआ, तब वह वाग्बाणों से उन्हें व्यथित करने लगा और तब कुवाक्यों को कहते हुए ही शिशुपाल के सिर को श्रीकृष्ण ने अपने सुदर्शन चक्र से काट दिया । यहाँ आलम्बन है शिशुपाल, उसकी चेष्टायें उद्दीपन, श्रीकृष्ण द्वारा सिर काटा जाना अनुभाव तथा मति, स्मृति, गर्व आदि सन्चारी भाव हैं जिनसे वीर के स्थायी उत्साह की सुन्दर व्यन्जना हुई है ।

1- शिशुपालवध, 20/77-78

इसी प्रकार अन्य कई स्थलों पर भी महाकवि ने अपने काव्य में वीर-रस की सफल अभिव्यञ्जना की है, सम्बद्ध कुछ श्लोक द्रष्टव्य है।[1-5]

1- तदीशितारं चेदीनां भवांस्तमवमंस्त मा ।
निहन्त्यरीनेकपदे य उदात्तः स्वरानिव ।।

शिशुपालवध, 2/95

2- यातैश्चातुर्विध्यमस्त्रादिभेदादव्यासङ्गैः सौष्ठवाल्लाघवाच्च ।
शिक्षाशक्तिं प्राहरन्दर्शयन्तो मुक्तामुक्तैरायुधैरायुधीयाः ।।

शिशुपालवध, 18/11

3- विषमं सर्वतोभद्रचक्रगोमूत्रिकादिभिः ।
श्लोकैरिव महाकाव्यं व्यूहैस्तदभवद्बलम् ।।

शिशुपालवध, 19/41

4- अभग्नवृत्ताः प्रसभादाकृष्टा यौवनोद्धतैः ।
चक्रन्दुरुच्चकैर्मुष्टिग्राह्यमध्या धनुर्लताः ।।

शिशुपालवध, 19/35

5- सम्भृतोपकरणेन निर्मलां कर्तुमिष्टिमभिवाञ्छता मया ।
त्वं समीरण इव प्रतीक्षितः कर्षकेण वलजान्पुपूषता ।।

शिशुपालवध, 14/7

वीर-रसाभास-

अष्टादश सर्ग में हाथियों के परस्पर युद्ध करने का वर्णन तिर्यग्गत होने से रसाभास के अन्तर्गत आता है-इसका उदाहरण दृष्टव्य है -

अन्योन्येषां पुष्करैरामृशन्तो दानोद्भेदानुच्चकैर्भुग्नवालाः।
उन्मूर्धानः सन्निपत्यापरान्तैः प्रायुध्यन्त स्पष्टदन्तध्वनीभाः।।[1]

इसका भाव है - परस्पर के गण्डस्थलों का सूंड के अग्र-भाग से स्पर्श करते हुए, ऊँचे पूँछों को समेटे हुए और मस्तक को ऊपर किये हुए हाथी, परस्पर दाँतों के आघात से होने वाली स्पष्ट खट-खट ध्वनि को करते हुए पिछले भाग से अच्छी तरह स्थित होकर युद्ध करने लगे । इस उदाहरण में आलम्बन है हाथी, परस्पर दाँतों का टकराव उद्दीपन, सूंडों का परस्पर स्पर्श, पूँछों का समेटना तथा मस्तक को ऊपर उठाना आदि अनुभाव हैं । दाँतों का खटखटाना आदि संचारी भाव है । इसके अतिरिक्त अन्य श्लोक भी द्रष्टव्य हैं ।[2]

रौद्र रस -

शिशुपालवध महाकाव्य में रौद्ररस का अतिसुन्दर निबन्धन हुआ है। शिशुपाल युधिष्ठिर, भीष्म और श्रीकृष्ण के प्रति उपालम्भ-पूर्ण तथा क्रोध से

1- शिशुपालवध, 18/32

2- द्राघीयांसः संहताः स्थेमभाजश्चारुदग्रास्तीक्ष्णतामत्यजन्तः ।
दन्ता दन्तैराहताः सामजानां भङ्गं जग्मुर्न स्वयं सामजाताः।।

शिशुपालवध, 18/33-38

निष्ठुर वचन कहने लगा । युधिष्ठिर को फटकारता हुआ शिशुपाल कहता है -

यदराज्ञि राजवदिहार्घ्यमुपहितमिदं मुरद्विषि ।

ग्राम्यमृग इव हविस्तदयं भजते ज्वलत्सु न महीशवह्निषु ।।[1]

इस श्लोक का भाव है - जो तुमने राजाओं से भिन्न इस मुरारि (कृष्ण) को राजाओं के समान अर्घ्य दिया है, वह (मुरारि) नृप-रूप इन अग्नियों के जलते रहने पर हविष्य को खाने के लिए कुत्ते के समान योग्य नहीं है । यहाँ आलम्बन श्रीकृष्ण हैं, युधिष्ठिर द्वारा उनको-आर्घ्य दिया जाना उद्दीपन, शिशुपाल-कृत आत्म-प्रशंसा तथा श्रीकृष्ण-निन्दा अनुभाव, मद, अमर्ष आदि सन्चारी भाव हैं ।

यहाँ शिशुपाल के अश्रु, स्वेद का वर्णन किया गया है, जिससे उसका क्रोधातिरेक व्यञ्जित होता है -

स वमन्रुषाश्रु घनघर्मविगलदुरुगण्डमण्डलः ।

स्वेदजलकणकरालकरो व्यरुचत्प्रभिन्न इव कुञ्जरस्त्रिधा ।।[2]

उपर्युक्त श्लोक का भाव है क्रोध से आँसू गिराता हुआ, क्रोध की अधिक उष्णता से पसीना बहते हुए विशाल कपोल मण्डल वाला, तथा स्वेद के जलकणों से भयानक बाहु वाला, वह शिशुपाल, तीन प्रकार (नेत्र, गण्ड-स्थल, तथा सूंड) से मद को प्रवाहित करने वाले मतवाले हाथी के समान शोभित होने लगा । यहाँ आलम्बन है - शिशुपाल, क्रोधातिरेक तथा अश्रुपात अनुभाव है (पसीना के रूप में) स्वेद संचारी भाव है ।

1- शिशुपालवध, 15/15

2- शिशुपालवध 15/4

उसने अपने कन्धे से खम्भे पर धक्का मारा । टेढ़े भ्रू-द्वय वाला एवं अधिक भ्रू-भङ्ग होने से भयंकर ललाट वाला उसका मुख मानो फिर तृतीय नेत्र से युक्त सा होकर क्रूर हो गया । उसका भ्रू-भङ्ग उसके क्रोध के विकट रूप का परिचायक है । इस प्रकार शिशुपाल के क्रोध के अनुभावों का माघ ने कुशलता पूर्वक चित्रण किया है ।[1]

शिशुपालवध में रौद्र रस के प्रसंग में क्रोध के अनुभावों का अवसर तथा पात्र-भेद से अनेक बार वर्णन हुआ है किन्तु उसमें किसी प्रकार का वैरस्य नहीं आने पाया है । एक तो अवसर तथा पात्र को देखते हुए क्रोधानुभावों के वर्णन में औचित्य का सतत ध्यान रखा गया है । दूसरे एक स्थल का क्रोधानुभाव वर्णन दूसरे स्थल के क्रोधानुभाव-वर्णन से भिन्न है । इस भिन्नता का कारण कवि की विविध कल्पनाएं तथा काव्य-रचना-कौशल है । रौद्र के स्थाई क्रोध की यहाँ जैसी व्यन्जना हुई है वह सहृदयों से छिपी नहीं है । उस तुमुल युद्ध में पदातियों के क्रोध की व्यन्जना इस प्रकार हुई है -

दन्तैश्चिच्छिदिरे कोपात् प्रतिपक्षं गजा इव ।
परानाि स्त्रिंशानिर्लूनकरवालाः पदातयः ।।[2]

1- भ्रूविभङ्गोष्ठनिर्दंशबाहुस्फोटनतर्जनाः ।
आत्मावदानकथनमायुधोत्क्षेपणानि च ।।
अनुभावास्तथाक्षेपक्रूर संदर्शनादयः ।
उग्रतावेगरोमान्चस्वेदवेपथवो मदः ।।

साहित्यदर्पण, 3/229-230

2- शिशुपालवध, 19/55

श्लोक का भाव इस प्रकार है - शत्रुओं के खड्ग से कटे हुए खड्ग वाले पैदल सैनिक क्रोध के कारण दाँतों से शत्रु को उस प्रकार काटने लगे, जिस प्रकार शत्रुओं के खड्ग से कटे हुए सूंड तथा पूँछ वाले हाथी क्रोध के कारण दाँतों से शत्रु को छेदते हैं। यहाँ शत्रु-गण आलम्बन हैं, उनके द्वारा खड्ग का काटा जाना उद्दीपन, पदातियों का उन्हें दाँत से काटना अनुभाव तथा उग्रता और अमर्ष आदि सन्चारी भाव हैं।

विंश सर्ग में शिशुपाल के क्रोध का वर्णन करते हुए कवि की उक्ति-

मुखमुल्लसितत्रिरेखमुच्चैर्भिदुरभ्रूयुगभीषणं दधानः ।
समिताविति विक्रमानमृष्यन्गतभीराह्वत चेदिराण्मुरारिम् ।।[1]

उपर्युक्त श्लोक का भाव है- इस प्रकार (19/91-120) युद्ध में श्रीकृष्ण के पराक्रम को नहीं सहन करते हुए, अतएव क्रोधजन्य सिकुड़न से तीन रेखाओं वाले तथा चढ़ी हुई भ्रुकुटि से भयंकर मुख को धारण करते हुए निर्भीक शिशुपाल ने श्रीकृष्ण को युद्धार्थ ललकारा। यहाँ श्रीकृष्ण आलम्बन हैं, उनकी चेष्टायें उद्दीपन, शिशुपाल के मुख का भ्रू-युगलभीषण होना आदि अनुभाव तथा गर्व, अमर्ष आदि सन्चारी भाव हैं। इसी प्रकार अन्य कई स्थलों पर रौद्र-रस की अभिव्यन्जना हुई है, कुछ सम्बद्ध श्लोक द्रष्टव्य है।[2-3]

1- शिशुपालवध, 20/1।

2- विहितं मयाद्य सदसीदमपमृषितमच्युतार्चनम् ।
यस्य नमयतु स चापमयं चरणः कृतः शिरसि सर्वभूभृताम् ।।
शिशुपालवध, 15/46

3- परस्परं परिकुपितस्य पिंषतः क्षतोर्मिकाकनकपरागपाङ्कलम् ।
करद्वयं सपदि सुधन्वनो निजैरनारतस्रुतिभिरधाव्यताम्बुभिः ।।
शिशुपालवध, 17/8

भयानक रस -

शिशुपालवध महाकाव्य में भय-भाव की भी कहीं-कहीं सुन्दर व्यन्जना हुई है । युद्ध स्थल से कुछ लोगों के पलायन का वर्णन करते हुए कवि की उक्ति है -

श्मश्रूयमाणे मधुजालके तरोर्गजेन गण्डं कषता विधूनिते ।
क्षुद्राभिरक्षुद्रतराभिराकुलं विदश्यमानेन जनेन दुद्रुवे ।।[1]

उपर्युक्त श्लोक का भाव है - वृक्ष की दाढ़ी के समान आचरण करते हुए, मधुमक्खी के छत्ते के गाल रगड़ते हुए, हाथी के द्वारा हिलाये जाने पर बड़ी-बड़ी मधुमक्खियों से काटे जाते हुए लोग व्याकुलतापूर्वक भागने लगे । यहाँ गज आलम्बन है, उसकी चेष्टा तथा उन लोगों का मधुमक्खियों द्वारा काटा जाना उद्दीपन, पलायन अनुभाव, त्रास, श्रम आदि सन्चारी भाव है ।

भयानक रस का एक अन्य उदाहरण द्रष्टव्य है ।[2]

भयानक रसाभास -

शिशुपालवध में कहीं-कहीं भयानक रसाभास के दर्शन होते हैं । शिशुपाल के पूर्वजन्म के रावण-रूप का वर्णन करते हुए कवि की उक्ति -

---

1- शिशुपालवध, 12/54

2- लूनग्रीवात् सायकेनापरस्य धामत्युच्चैराननादुत्पतिष्णोः ।
त्रेसे मुग्धैः सैंहिकेयानुकाराद्रौद्राकारादप्सरोवक्त्रचन्द्रैः ।।

शिशुपालवध, 18/59

अशक्नुवन् सोढुमधीरलोचनः सहस्त्ररश्मेरिव यस्य दर्शनम् ।
प्रविश्य हेमाद्रिगुहागृहान्तरं निनाय बिभ्यद्दिवसानि कौशिकः ।।[1]

सूर्य के समान प्रदीप्त रावण के दर्शन करने में असमर्थ, अधीर-नयन कौशिक (इन्द्र) हिमालय के गुफा-रूपी गृहान्तर में घुसकर डरते-डरते दिन बिताते थे, जिस प्रकार दिन में अस्थिर-दृष्टि कौशिक (उलूक) परम तेजस्वी सूर्य को देखने में असमर्थ होकर हिमालय की गुफा में प्रवेश कर, डरता हुआ दिन व्यतीत करता है यहाँ इन्द्र और उलूक का साम्य व्यङ्ग्य है । कौशिक शब्द श्लिष्ट है । इसमें भयानक रसाभास है क्योंकि उत्तमपात्र इन्द्र में भय दिखाया गया है ।[2] साहित्य दर्पण में भी इस श्लोक अशक्नुवन को भयानक रसाभास के उदाहरण रूप में प्रस्तुत किया गया है ।[3]

बीभत्स रस -

जुगुप्सा भाव की व्यन्जना युद्ध प्रसंग में कहीं-कहीं हुई है । प्रायः बीभत्स रस के वर्णन में आलम्बन का स्वरूप-चित्रण मात्र का दिया जाता है । कुछ उदाहरण-

---

1- शिशुपालवध, 1/53

2- उत्तमपात्रगतत्वे भयानके ज्ञेयमेवमन्यत्र ।
भावाभासो लज्जादिके तु वेश्यादिविषयेस्यात् ।।

साहित्यदर्पण, 3/266

3- साहित्यदर्पण, पृ0 275

निम्नेष्वोर्वीभूतमस्त्रक्षतानामस्त्रं भूमौ यच्चकासाञ्चकार ।
रागार्थं तत्कि नु कौसुम्भमम्भः संव्यानानामन्तकान्तःपुरस्य ।।[1]

युद्ध भूमि के लघुतम गर्त में एकत्रित, आयुध से कटे हुए लोगों का रक्त जो शोभित हो रहा था, वह यमराज की रमणियों के दुपट्टे को रंगने के लिए रखा हुआ कुसुम्भ-पुष्पों का (घोला हुआ) पानी था क्या ?
"जलती हुई जीभवाली स्यारिन ने, युद्ध में मरे हुए तेजस्वियों के शरीर के साथ जो तेज को खाया, भीतर गये हुए उस तेज को मानों ज्वाला के छल से वमन करती हुई स्यारिन उच्च स्वर से चिल्लाने लगी । इन उदाहरणों में क्रम से रक्त तथा शिवा (स्यारिन) रूप आलम्बन का स्वरूप-चित्रण किया गया है । इस प्रकार अन्य और भी उदाहरण हैं । बसन्त ऋतु का वर्णन करते हुए कवि ने अशोक पुष्प के वर्णन को जुगुप्सा-मय बना दिया है ।[2]

श्रृंगार रस -

श्रृंगार रस का स्वरूप - "श्रृंगार शब्द की व्युत्पत्ति (श्रृङ्गं गच्छति" इति श्रृंगारः) से ही स्पष्ट हो जाता है "श्रृङ्ग" का अभिप्राय है (कामुक-युगल के उत्पीड़क) कामाविर्भाव का और "श्रृंगार" का अभिप्राय यह है

1- शिशुपालवध, 18/69-75

2- स्फुटमिजोज्ज्वलकाञ्चनकान्तिभिर्युतमशोकमशोभत चम्पकैः ।
विरहिणां हृदयस्य भिदाभृतः कपिशितं पिशितं मदनाग्निना ।।
शिशुपालवध, 6/5

जो इस प्रकार के कामोद्भव से संभूत हो" । इस रस के आलम्बन प्रायः उत्तम प्रकृति के ही प्रेमीजन हुआ करते हैं । इसके उद्दीपन विभाव है - चन्द्र चन्द्रिका, चन्दनानुलेपन, भ्रमर झङ्कार आदि-आदि । इसके अनुभाव प्रेम-पगे, भ्रुकुटिभङ्ग, कटाक्ष आदि हैं । मरण, औग्र्य, आलस्य, और जुगुप्सा को छोड़कर सभी व्यभिचारिभाव इसके परिपोषक हुआ करते हैं । रति इसका स्थायीभाव है । इसका वर्ण श्याम है और इसके अभिमानिदेव विष्णु भगवान् हैं ।[1]

शिशुपालवध में अङ्ग-रसों में श्रृङ्गार रस की सुन्दर योजना हुई है । चतुर्थ सर्ग से एकादश सर्ग तक तथा त्रयोदश सर्ग में श्रृङ्गार के विविध वर्णन मिलते हैं-इसमें सम्भोग श्रृङ्गार का प्राधान्य रहा है । इसमें रति के आलम्बन है - नायक एवं नायिकाएं । उद्दीपन रूप में कवि ने रैवतक, षड्ऋतु सन्ध्या, चन्द्रोदय आदि का वर्णन किया है । कहीं-कहीं केवल अनुभावों का तथा केवल सन्चारी भावों की

1- श्रृङ्गं हि मन्मथोद्भेदस्तदागमनहेतुकः ।
उत्तमप्रकृतिप्रायो रसः श्रृङ्गार इष्यते ।।
परोढां वर्जयित्वा तु वेश्यां चाननुरागिणीम् ।
आलम्बनं नायिकाः स्युर्दक्षिणाद्याश्च नायकाः ।।
चन्द्रचन्दनरोलम्बरुताद्युद्दीपनं मतम् ।
भ्रूविक्षेपकटाक्षादिरनुभावः प्रकीर्तितः ।।
त्यक्त्वौग्र्यमरणालस्यजुगुप्सा व्यभिचारिणः ।
स्थायिभावो रतिः श्यामवर्णोऽयं विष्णुदेवतः ।।

साहित्यदर्पण, 3/183-185

भी सुन्दर व्यन्जना हुई है । माघ ने अपने काव्य में अनेक प्रकार की नायिकाओं के विविध चित्र अंकित किए हैं । उनकी श्रृङ्गार चेष्टाओं का, उनके अयत्नज एवं स्वभावज अलंकारों का, उनकी बाह्य एवं आभ्यन्तर सुरत-केलि का, उनकी दूतियों के अनेक प्रियतमों के पास जाकर सन्देश निवेदन करने का सखियों द्वारा नायिकाओं के समझाये जाने आदि का माघ ने सुविस्तृत एवं सुन्दर वर्णन किया है ।

चतुर्थ सर्ग में रैवतक-वर्णन-प्रसंग में विलासी यादवों तथा उनकी अङ्गनाओं की रति-विषयक इच्छा का अनेक बार उल्लेख किया गया है -

दधन्निरभितस्तटौ विकचवारिजाम्बूनदे-
र्विनोदितदिनक्लमाः कृतरुचश्च जाम्बूनदैः ।
निषेव्य मधु माधवाः सरसमत्र कादम्बरं -
हरन्ति रतये रहःप्रियतमाङ्गकादम्बरम् ।।[1]

उपर्युक्त श्लोक में रैवतक पर विकसित कमलों वाले जल हैं जिनमें ऐसे तट-द्वय को दोनों भाग में धारण करते हुए नदों से दिन के श्रम को दूर किये हुए तथा सुवर्ण भूषणों से अलंकृत यादव-जन, गन्ने के रस से बने हुए सुस्वादु मद्य को पीकर रति के लिए एकान्त में प्रियतमा के शरीर से वस्त्र को हटा रहे हैं । यहाँ प्रियतमाएं आलम्बन हैं, मद्यपान तथा एकान्त आदि उद्दीपन, वस्त्रों का हटाया जाना अनुभाव तथा औत्सुक्य एवं हर्ष आदि सन्चारी भावों से रतिभाव व्यन्जित हुआ है।

1- शिशुपालवध, 4/66

पंचम, षष्ठ, एवं सप्तम सर्ग में विभिन्न नायिकाओं के विविध चित्र प्राप्त होते हैं । उदाहरणार्थ प्रगल्भा नायिका का वर्णन इस प्रकार प्रस्तुत किया गया है -

प्रस्वेद वारिस विशेषविश्लथमङ्गे कूर्पासकं क्षतनखक्षतमुत्क्षिपन्ती ।
आविर्भवद्घनपयोधरबाहुमूला शातोदरी युवदृशां क्षणमुत्सवोऽभूत् ।।[1]

शरीर में पसीने के जल से विशेषरूप से सटी हुई चोली को रतिकाल में किये गये नखक्षत को पुनः विदीर्ण कर निकलती हुई, (अतएव) दिखलाई पड़ते हुए विशाल स्तन एवं बाहुमूल वाली कृशोदरी युवक के नेत्रों के लिए क्षण-मात्र आनन्द प्रद हो गई । यह अभिसारिणी या प्रगल्भा नायिका है । यहाँ आलम्बन चोली से निकले हुये स्तनद्वय हैं । नेत्रों से देखकर युवक का आनन्दित होना अनुभाव है । अब मेरी प्रियतमा मुझे स्वयमेव आलिङ्गन कर सुखी करे-प्रेमी के इस कथन का वर्णन कवि की मध्या नायिका इस प्रकार करती है -

इति गदन्तमनन्तरमङ्गना भुजयुगोन्नमनोच्चतरस्तनी ।
प्रणयिनं रभसादुदरश्रिया वलिभयालिभयादिव सस्वजे ।।[2]

दोनों बाहुओं को उठाने से अधिक ऊँचे स्तनों वाली तथा त्रिवली-युक्त उदर-शोभा से उपलक्षित अङ्गना ने मानो भ्रमर के भय से वेगपूर्वक आलिङ्गन कर लिया । यह नायिका मध्या है ।[3]

1- शिशुपालवध, 5/23

2- शिशुपालवध, 6/13

3- लज्जामन्मथमध्यस्था मध्येयं नायिका मता"
शिशुपालवध, 6/13 की मल्लिनाथ कृत "सर्वंकषा" टीका से उद्धृत ।

इसी प्रकार खण्डिता नायिका द्वारा अपराधी प्रिय के फटकारे जाने का कवि ने सुन्दर वर्णन किया है एक स्थल पर वह कहती है –

मुहुरुपहसितामिवालिनादैर्वितरसि नः कलिकां किमर्थमेनाम् ।
वसतिमुपगतेन धाम्नि तस्याः शठ कलिरेषमहांस्त्वयाद्य दत्तः ।।[1]

उपर्युक्त श्लोक में "भ्रमरों की ध्वनियों से बार-बार हँसी गयी इस कलिका (पुष्प कलिका) को हमारे लिए क्यों दे रहे हो ? शठ ! उस (सपत्नी) के घर ठहरे हुए तुमने आज यह बड़ी भारी कलि (कलह) दे दी है (अर्थात् एक कलि (कलह) के दे चुकने पर दूसरी कलि (पुष्प-कलिका) देना व्यर्थ है । यहाँ आलम्बन भ्रमरों से युक्त कलिका है तथा नायक के लिये शठ शब्द का प्रयोग अनुभाव है ।

महाकवि माघ ने दक्षिण[2] तथा धृष्ट[3] नायकों का भी वर्णन किया है ।

षष्ठ एवं सप्तम सर्ग में विभिन्न नायिकाओं के वर्णन-प्रसङ्ग में उनके विलास-पूर्वक-गमन, चुम्बन, आलिङ्गन, नख-क्षत, सीत्कार, सुरत आदि का विविध प्रकार से वर्णन किया गया है । इनमें से कुछ के चित्र प्रस्तुत करना प्रसङ्गगत आवश्यक है । रमणियों के विलास-पूर्वक-गमन का वर्णन करते हुए कविकी सरस उक्ति है –

1- शिशुपालवध, 7/55

2- शिशुपालवध, 7/52

3- शिशुपालवध, 7/56

मदनरसमहौघपूर्णनाभीह्रदपरिवाहितरोमराजयस्ताः ।
सरित इव सविभ्रमप्रयातप्रणदितहंसकभूषणा विरेजुः ।।[1]

उपर्युक्त श्लोक का भाव है- "कामरस के महाप्रवाह से पूर्ण नाभि-रूप तड़ाग के जलोच्छ्वास के समान रोमावली है जिनकी ऐसी तथा विलासपूर्वक चलने से बजते हुए नुपुर-रूप भूषण वाली वे यादव-स्त्रियाँ, जिनके जल के महा-प्रवाह तड़ागों को भरकर बह रहे हैं ऐसी तथा विलास के साथ चलते हुए हंस वाली नदी के समान शोभित होती थीं । यहाँ आलम्बन हंस के समान गति वाली नायिकाये हैं । यहाँ इस श्लोक में काम-सूत्रोक्त वृक्षाधिरूढ़क आलिङ्गन का वर्णन किया है

विलसितमनुकुर्वती पुरस्ताद्धरणिरुहाधिरुहो वधूर्लतायाः ।
रमणमृजुतया पुरः सखीनामकलितचापलदोषमालिलिङ्ग ।।[2]

सामने वृक्ष से लिपटी लता का अनुकरण करती हुई किसी अङ्गना ने सरलता से चञ्चलता रूपी दोष का विचार छोड़कर सखियों के सामने ही प्रियतम का आलिङ्गन कर लिया । वृक्ष के सहारे लिपटी हुई लता आलम्बन तथा नायिका का आलिंगन अनुभाव है ।

श्रम नामक सञ्चारी भाव का चित्रण करते हुए कवि की उक्ति है -

1- शिशुपालवध, 7/23

2- शिशुपालवध, 7/46

मुहुरिति वनविभ्रमाभिषङ्गादतमि तदा नितरां नितम्बिनीभिः ।
मृदुतरतनवोऽलसा प्रकृत्या चिरमपि ताः किमुत प्रयासभाजः ।।[1]

"पृथु नितम्बों वाली स्त्रियाँ इस प्रकार वन-विहार में आसक्ति होने से अत्यन्त खिन्न (श्रान्त) हो गयीं । अत्यन्त सुकुमार शरीर वाली अङ्गनाएँ स्वभाव से आलसी होती हैं, तब फिर बहुत देर तक श्रम करने पर वैसी (आलस्य-युक्त) हो गयीं, इसमें कहना ही क्या है ? यहाँ श्रम आलस्य, श्रान्त आदि सन्चारी भाव हैं । इसी प्रकार उनके स्वेद, अङ्ग-भङ्ग आदि अनुभावों का भी सुन्दर वर्णन प्राप्त होता है ।

अष्टम सर्ग में जल-केलि का वर्णन करते हुए कवि ने काम-शास्त्र के आधार पर श्रृङ्गार वर्णन किया है । जल-प्रविष्ट विलासी युवक द्वारा तड़ाग के तट पर बैठी हुई रमणी के भिगोये जाने का एक दृश्य इस प्रकार है -

आसीना तटभुवि सस्मितेन भर्त्रा रम्भोरूरवतरितुं सरस्यनिच्छुः ।
धुन्वाना करयुगमीक्षितुं विलासाञ्शीतालुः सलिलगतेन सिच्यते स्म ।।[2]

शीत-भीरु, तड़ाग में उतरने के लिए इच्छा नहीं करती हुई, अतएव किनारे पर बैठी हुई तथा (पानी छिड़कने का निषेध करने के लिए) हाथ को हिलाती हुई रमणी को जल में पहले ही प्रविष्ट मुस्कराते हुए पति ने विलास

1- शिशुपालवध, 7/68

2- शिशुपालवध, 8/19

देखने के लिए भिगो दिया । यहाँ तट-स्थित रमणी आलम्बन है, उसका शीतालु होना तथा निषेधार्थ हाथ हिलाना उद्दीपन, पति द्वारा स्मितपूर्वक भिगोया जाना अनुभाव तथा हर्ष सन्चारी भाव है जिससे रति की व्यन्जना हुई है । माघ ने विच्छित्ति"[1] नामक स्त्रियों के स्वभावज अलंकार का वर्णन कर आलम्बन की चेष्टा के अनुरूप उद्दीपन विभाव का सुन्दर चित्रण किया है -

स्वच्छाम्भः स्नपनविधौतमङ्गमोष्ठस्ताम्बूलद्युतिविशदो विलासिनीनाम्।
वासश्च प्रतनु विविक्तमस्त्वतीयानाकल्पो यदि कुसुमेषुणा न शून्यः ।।[2]

निर्मल जल से प्रक्षालित शरीर ताम्बूल-राग से उज्ज्वल ओष्ठ, प्रतनु तथा विमल वस्त्र, बस इतना ही विलासवती रमणियों का भूषण होता है, यदि वह काम से रहित न हो । इसमें निर्मल जल से प्रक्षालित आदि उद्दीपन विभाव है ।

नवम सर्ग में सन्ध्या, अन्धकार, चन्द्रोदय, रात्रि आदि का वर्णन रति के उद्दीपन रूप में किया गया है रति-विषयक औत्सुक्य भाव का चित्रण करते हुए कवि की उक्ति -

गतया पुरः प्रतिगवाक्षमुखं दधती रतेन भृशमुत्सुकताम् ।
मुहुरन्तरालभुवमस्तगिरेः सवितुश्च योषिदमिमीत दृशा ।।[3]

1- "आकल्परचनाऽल्पापि विच्छित्तिः कान्तिपोषकृत्"

-दशरूपक, 2/38

2- शिशुपालवध, 8/70

3- शिशुपालवध, 9/2

रति के लिए अत्यन्त उत्कण्ठित कोई रमणी खिड़की की ओर नेत्र लगाकर अस्ताचल के ओर सूर्य के मध्य भाग को मानो नाप रही थी । यहाँ अस्ताचल का सूर्य उद्दीपन विभाव है ।

नवें सर्ग में भी नायिकाओं के वासक सज्जा, विरहोत्कण्ठिता, तथा कलहान्तरिता आदि प्रकारों का वर्णन मिलता है । नायिकाओं के अपने प्रियतमों से मिलने पर होने वाले सम्भ्रम, हर्ष रोमान्च आदि का सुन्दर वर्णन किया गया है -

पिदधानमन्वगुपगम्य दृशौ ब्रुवते जनाय वद कोऽयमिति ।
अभिधातुमध्यवससौ न गिरा पुलकैःप्रियं नववधूर्न्यगदत ।।[1]

किसी नवविवाहिता रमणी ने पीछे से आकर दोनों नेत्रों को बन्द किये हुए प्रियतम को यह कौन है"ऐसा पूछने वाली सखी का वचन द्वारा उत्तर नहीं दिया, किन्तु सात्विक-भावजन्य-रोमान्चों से प्रियतम को बतला दिया ।

दशम सर्ग में यादवों तथा यादव-रमणियों के बाह्य एवं आभ्यन्तर सुरत का भी वर्णन प्राप्त होता है । बाह्यसुरत में दृष्टि-स्पर्श, आलिङ्गन, चुम्बन आदिका वर्णन किया गया है । आभ्यन्तर-सुरत का वर्णन करते हुए कविकी रसपूर्ण उक्ति -

प्राप्य नाभिनदमज्जनमाशु प्रस्थितं निवसन ग्रहणाय ।
औपनीविकमरून्धकिल स्त्री वल्लभस्य करमात्मकराभ्याम् ।।[2]

1- शिशुपालवध, 9/76

2- शिशुपालवध, 10/60

नाभि-रूपी तड़ाग में मज्जन कर शीघ्र ही वस्त्र को ग्रहण करनेके लिए प्रवृत्त एवं नीवी के समीप पहुँचे हुए प्रियतम के हाथ को रमणी ने अपने दोनों हाथों से रोक-सा लिया (अर्थात् रोकने का अभिनय मात्र किया-वास्तव में तो नहीं ही रोका । यहाँ रमणी आलम्बन, नीवी बन्धन के समीप पहुँचे हाथों को रोकना अनुभाव है ।

"कुट्टमित"[1] नामक स्त्रियों के स्वभावज अलंकार का चित्रण द्रष्टव्य है। इसी प्रकार प्रभात-वर्णन के प्रसंग में श्रृंगार रस तथा इन्द्रप्रस्थ पहुँचे हुए श्रीकृष्ण को देखने के लिए मार्गों में आयी हुई रमणियों की श्रृंगार-चेष्टाओं का वर्णन भी द्रष्टव्य है -[2]

1- दशरूपक, 2/40

2- पाणिरोधमविरोधितवाञ्छं भर्त्सनाश्च मधुरस्मितगर्भाः ।
काभिनः स्म कुरुते करभोरूर्हारि शुष्करुदितं च सुखेऽपि ।।
-शिशुपालवध, 10/69

इति कृतवचनायाः कश्चिदभ्येत्य बिभ्यद्गलितनयनवारेर्याति पादावनामम् ।
करुणमपि समर्थं मानिनां मानभेदे रुदितमुदितमस्त्रं योषितां विग्रहेषु ।।
-शिशुपालवध, 11/35

सरसनखपदान्तर्दष्टकेशप्रमोकं प्रणयिनि विदधाने योषितामुल्लसन्त्यः ।
विदधतिदशनानां सीत्कृताविष्कृतानामभिनवरविभासः पद्मरागानुकारम् ।।
शिशुपालवध, 11/54

अभिवीक्ष्य सामिकृतमण्डनं यतीः कररुद्धनीविगलदंशुकाः स्त्रियः ।
दधिरेऽधिभित्ति पटहप्रतिस्वनैः स्फुटमट्टहासमिव सौधपङ्क्तयः ।।
शिशुपालवध, 13/31

श्रृङ्गार रसाभास -

भ्रमर-भ्रमरी, मयूर-मयूरी एवं चक्रवाक-चक्रवाकी की रति-क्रीड़ा तिर्यग्गत होने से श्रृङ्गार रसाभास के अन्तर्गत आती है । भ्रमर-भ्रमरी की रति का वर्णन इस प्रकार किया गया है -

मुदमब्दभुवामधा मयूराः सहसायन्त नदी पपाट लाभे ।
अलिना रमतालिनी शिलीन्ध्रे सह सायन्तनदीपपाटलाभे ।।[1]

श्लोक का भाव है-मेघ के बरसते रहने पर मयूर सहसा हर्षित हो गये, नदियाँ भर गयीं और भ्रमरी सायंकाल के दीपक की लौ के समान कान्ति वाले अरुण-वर्ण कन्दली पुष्प पर भ्रमर के साथ रमण करने लगी । यहाँ भ्रमर आलम्बन है, मेघ-वर्षण उद्दीपन, रमण करना अनुभाव, औत्सुक्य तथा हर्ष आदि सन्चारी भाव हैं ।

श्रृङ्गार-रसाभास में मयूर-मयूरी की रति भी दर्शनीय है -

आयान्त्यां निजयुवतौ वनात्सशङ्कं बर्हाणामपरशिखण्डिनी भरेण ।
आलोक्य व्यवदधतं पुरो मयूरं कामिन्यः श्रदधुरनार्जवं नरेषु ।।[2]

वन से अपनी तरुणी (मयूरी) के आते रहने पर, दूसरी मयूरी को पंखों के समूह से छिपाते हुए मयूर को सामने देखकर कामिनियों ने पुरुषों में कुटिलता होने का विश्वास कर लिया । यहाँ दूसरी मयूरी आलम्बन, प्रथम मयूरी का आगमन

1- शिशुपालवध, 6/72

2- शिशुपालवध, 8/11

उद्दीपन, दूसरी मयूरी का पंखों में छिपाया जाना अनुभाव तथा शङ्का आदि सन्चारी भाव है । चक्रवाक-चक्रवाकी का दृश्य द्रष्टव्य है ।[1]

भाव-ध्वनि तथा भावाभास-

देव तथा मुनि आदि विषयक रति को भाव पद वाच्य माना गया है ।[2]

श्रीकृष्ण की उपासना के फल को बताते हुए भीष्म कहते हैं -

भक्तिमन्त इह भक्तवत्सले सन्ततस्मरणरीणकल्मषाः ।
यान्ति निर्वहणस्य संसृति-क्लेशनाटकविडम्बनाविधेः ।।[3]

भक्त वत्सल इन श्रीकृष्ण भगवान् में भक्ति करने वाले लोग, सर्वदा इनका स्मरण करने से क्षीण पाप होकर इस संसार के क्लेशरूपी नाटक की विडम्बना की समाप्ति को प्राप्त करते हैं । यहाँ भीष्म का यह वचन उनकी श्रीकृष्ण-विषयक रति की व्यन्जना करता है, अतः यहाँ रतिभाव-ध्वनि है । प्रौढ़ पुराङ्गनाओं का त्रयोदश सर्ग में श्रीकृष्ण के प्रति रतिभाव भावाभास के अन्तर्गत आता है इस सम्बन्ध में श्लोक द्रष्टव्य है -

वलयार्पितासितमहोपलप्रभाबहुलीकृतप्रतनुरोमराजिना ।
हरिवीक्षणाक्षणिकचक्षुषान्यया करपल्वेन गलदम्बरं दधे ।।[4]

1- मुग्धायाः स्मरललितेषु चक्रवाक्या निःशङ्कं दयिततमेन चुम्बितायाः ।
प्राणेशानभि विदधुर्विधूतहस्ताः सीत्कारं समुचितमुत्तरं तरुण्यः ।।
शिशुपालवध, 8/13

2- रतिर्देवादिविषया व्यभिचारी तथान्जितः भावः प्रोक्त"
काव्यप्रकाश, 4/35-36

3- शिशुपालवध, 14/63

4- शिशुपालवध, 13/44

श्रीकृष्ण को देखने में स्थिर दृष्टि वाली किसी दूसरी रमणी ने, नीचे की ओर गिरते हुए वस्त्र को कंकड में जड़े गये इन्द्रनीलमणि की प्रभा से सघन की गई सूक्ष्म रोम पंक्ति वाले हाथ से पकड़ लिया । यहाँ पुराड्गनाओं का श्रीकृष्ण-विषयक रति-भाव अनौचित्य प्रवर्तित है, अतः यहाँ भावाभास है ।[1] भाव-ध्वनि से सम्बद्ध मुनि-विषयक एवं पुण्य-विषयक रति का श्लोक द्रष्टव्य है-[2-3]

हास्य-रस -

हास्य-रस के वर्णन के प्रसंग में प्रायः केवल आलम्बन को या आलम्बन और उद्दीपन केवल इन दोनों को ही उपन्यस्त किया जाता है । शिशुपालवध महाकाव्य में भी हास्य का प्रसंग कहीं-कहीं आया है जैसे -

त्रस्तः समस्तजनहासकरः करेणोस्तावत्खरः प्रखरमुल्लत्रयाञ्चकार ।
यावच्चलासनविलोलनितम्ब बिम्बविस्त्रस्तवस्त्रमवरोधवधूः पपात ।।[4]

1- तदाभासा अनौचित्यप्रवर्तिताः - काव्यप्रकाश, 4/36

2- हरत्यघं संप्रति हेतुरेष्यतः शुभस्य पूर्वाचरितैः कृतं शुभैः ।
शरीरभाजां भवदीयदर्शनं व्यनक्ति कालत्रितयेऽपि योग्यताम् ।।
शिशुपालवध, 1/26

3- अवलोक एव नृपतेः स्मदूरतो रभसाद्रथादवतरीतुमिच्छतः ।
अवतीर्णवान्प्रथममात्मना हरिर्विनयं विशेषयति सम्भ्रमेण सः ।।
शिशुपालवध, 13/7

4- शिशुपालवध, 5/7

हथिनी से डरा हुआ तथा सब लोगों को हसाने वाला गधा तब तक उछलता रहा, जब तक सरके हुए आसन से विवस्त्र नितम्बों वाली अन्तःपुर की वधू गिर नहीं पड़ी । यहाँ खर-स्थित अन्तःपुर वधू आलम्बन, तथा उसके नितम्बों का वस्त्र-हीन होना तथा उस वधू का गधे से गिरना उद्दीपन है ।

इन्द्रप्रस्थ पहुँचे हुए श्रीकृष्ण को देखने के लिए मार्गों में आयी हुई स्त्रियों का वर्णन करते हुए माघ एक स्थल पर कहते हैं -

रभसेन हारपददत्तकान्चयः प्रतिमूर्धजं निहितकर्णपूरकाः ।
परिवर्तिताम्बरयुगाः समापतन्वलयीकृतश्रवणपूरकाः स्त्रियः ।।[1]

श्लोक का भाव है-शीघ्रता के कारण हार के स्थान पर करधनी को पहने हुए केशों में कर्णपूर को लगाये हुए दोनों कपड़ों को उल्टा पहने हुए और कर्णभूषण को कंकण बनाये हुए रमणियाँ वेग से चल पड़ीं । यहाँ विकृत वेष वाली रमणियाँ हास भाव की आलम्बन हैं ।

अद्भुत रस -

शिशुपालवध में विस्मय भाव की सुन्दर व्यन्जना हुई है। बीसवें सर्ग के अन्तिम श्लोक में अद्भुत रस है -

श्रिया जुष्टं दिव्यैः सपटहरवैरन्वितं पुष्पवर्षै -
वपुष्टश्चैद्यस्य क्षणमृषिगणैः स्तूयमानं निरीय ।
प्रकाशेनाकाशे दिनकरकरान्विक्षिपद्विस्मिताक्षै-
र्नरेन्द्रैरौपेन्द्रं वपुरथ विशद्धाम वीक्षांबभूवे ।।[2]

1- शिशुपालवध, 13/32

2- शिशुपालवध, 20/79

श्लोक का भाव है- इस {शिशुपाल के सिर काटे जाने} के बाद शोभा-युक्त, दुन्दुभि-घोषों के सहित दिव्य पुष्प-वृष्टि से युक्त, क्षण मात्र ऋषियों से स्तुत शिशुपाल के शरीर से निकलकर प्रकाश से आकाश में सूर्य की शोभा को फैलाते हुए, श्रीकृष्ण के शरीर में प्रवेश करते हुये तेज को युद्ध में उपस्थित राजाओं ने आश्चर्य-चकित नेत्रों से देखा। यहाँ शिशुपाल के शरीर से निकलने वाला तेज आलम्बन, उस तेज का श्रीकृष्ण के शरीर में प्रविष्ट होना उद्दीपन, राजाओं के नेत्रों का विकसित होना अनुभाव, तथा हर्ष आदि सन्चारी भाव हैं। यद्यपि यहाँ विस्मित शब्द के प्रयोग से स्व-शब्द वाच्यत्व[1] दोष आ गया है, किन्तु उससे विस्मय भाव के अभिव्यन्जना में कोई कमी नहीं आने पाती है।

सन्चारी भाव-चित्रण-

शिशुपालवध महाकाव्य में कहीं-कहीं सन्चारी भावों की व्यन्जना हुई है जिसके कुछ उदाहरण प्रस्तुत करना अप्रासाङ्गिक न होगा। युद्ध में जाने से पहले शिशुपाल पक्षीय वीर अपनी-अपनी प्रियाओं से युद्धार्थ अनुमति प्राप्त करने के लिए उनके पास गये। उस समय किसी रमणी की दशा का वर्णन करते हुए माघ की उक्ति -

न मुमोच लोचनजलानि दयितजयमङ्गलैषिणी।
यातमवनिमवसन्नभुजान्न गलद्विवेद वलयं विलासिनी॥[2]

1- काव्यप्रकाश, 7/60

2- शिशुपालवध, 15/85

प्रियतम के विजय-रूप मंगल को चाहने वाली किसी रमणी ने आंसू नहीं गिराये, किन्तु (शोक से) शिथिल हुए बाहु से निकल कर पृथ्वी पर पड़े हुए कंकण को भी उसने नहीं जाना । यहाँ दैन्य और चिन्ता आदि सन्चारी भावों की व्यन्जना हुई है । एक ही श्लोक में अनेक सन्चारी भावों की भी कहीं-कहीं व्यन्जना हुई है -

व्रजतः क्व तात वजसीति परिचयगतार्थमस्फुटम् ।
धैर्यमभिनदुदितं शिशुना जननीनिर्भर्त्सनाविवृद्धमन्युना ।।

माता के फटकारने से बढ़े हुए कोप वाले बालक के "पिता जी । कहाँ जा रहे हैं " इस प्रकार तोतली वाणी में कहने पर भी, अभ्यास के कारण समझे गये वचन ने (युद्ध में) जाते हुए (शिशुपालपक्षीय) शूरवीर के धैर्य को भग्न कर दिया । यहाँ दम्पति के दैन्य, विषाद, चिन्ता और शंका नामक सन्चारी भावों की सुन्दर अभिव्यंजना हुई है ।
इसी प्रकार अन्य श्लोक द्रष्टव्य हैं -[2]

भावोदय आदि ध्वनियाँ -

शिशुपालवध में रस, रसाभास, भाव और भावाभास के अतिरिक्त भावोदय, भाव-शाबलता आदि ध्वनियों का भी यथावसर सन्निवेश हुआ है । निम्नलिखित प्रसंग में भावोदय है -

उद्वीक्ष्य प्रियकर कुड्मलापविद्धैर्वक्षोजद्वयमभिषिक्तमन्यनार्याः ।
अम्भोभिर्मुहुरसिचद्वधूरमर्षादात्मीयं पृथुतरनेत्रयुग्ममुक्तैः ।।[3]

1- शिशुपालवध, 15/87
2- काचित्कीर्णा रजोभिर्दिवमनुविदधे भिन्नवक्त्रेन्दुलक्ष्मी-
रश्रीकाः काश्चिदन्तर्दिश इव दधिरे दाहमुद्भ्रान्तसत्वाः ।
भ्रेमुर्वात्या इवान्याः प्रतिपदमपरा भूमिवत्कम्पमापुः
प्रस्थाने पार्थिवानामशिवमिति पुरो भावि नार्यः शशंसुः ।। शिशुपालवध, 15/96
3. शिशुपालवध, 8/37

पति के हाथ की अन्जलि से फेंके गये पानी से सींचे गये, सपत्नी के दोनों स्तनों को देखकर, उसे नहीं सहन करने वाली रमणी बड़े-बड़े दोनों नेत्रों से गिराये गये अश्रुओं से अपने दोनों स्तनों को सींचने लगी । यहाँ सपत्नी-विषयक क्रोध के उदय का वर्णन होने से भावोदय है । भाव-शान्ति द्रष्टव्य है-

प्रियमिति वनिता नितान्तमागःस्मरण सरोषकषायिताय ताक्षी ।
चरणगतसखीवचोऽनुरोधात् किल कथमप्यनुकूलयाञ्चकार ।।[1]

प्रिय के प्रभूत अपराध के स्मरण से क्रोध से लाल नेत्र वाली नायिका ने (इस प्रकार 7/7-10 कहकर) मानो चरण पर गिरी हुई सखी के कहने के अनुरोध से किसी प्रकार पति को अनुगृहीत किया । (अर्थात् मान त्यागकर प्रिय के पास गयी, यहाँ नायिका के कोप रूप भाव की शान्ति प्रदर्शित की गयी है, अतः यहाँ भाव शान्ति है । सहसा पति के दर्शन से घबड़ाने वाली नायिका के मुखकमल का वर्णन -

कृतभयपरितोषसन्निपातं सचकितसस्मितवक्त्रवारिजश्रीः ।
मनसिजगुरुतत्क्षणोपदिष्टं किमपि रसेन रसान्तरं भजन्ती ।।
अवनतवदनेन्दुरिच्छतीव व्यवधिमधीरतया यदस्थितास्मै ।
अहरत सुतरामतोऽस्य चेतः स्फुमभिभूषयति स्त्रियस्त्रपैव ।।[2]

1- शिशुपालवध, 7/11

2- शिशुपालवध, 7/37-38

दोनों श्लोकों का भाव द्रष्टव्य है-"सहसा पति को वहाँ देखने से भय तथा हर्ष से युक्त, कामदेव-रूप आचार्य के द्वारा तत्काल उपादिष्ट किसी अनिर्वचनीय भावान्तर को अनुराग से प्राप्त हुई (अतएव) भय से चकित तथा स्मित से युक्त मुख-कमल की शोभा वाली नायिका (लज्जा से) मुख चन्द्र को नीचे किये हुए, पति के व्यवधान को चाहती हुई (अनन्तर व्याकुल होकर) अपने प्रियतम के लिए अपने को प्रकाशित करती हुई जो स्थित हुई, इस कारण से उसने पति के चित्त को सहज ही वश में कर लिया, क्योंकि लज्जा ही स्त्री को अलङ्कृत करती है । यहाँ भय, हर्ष, लज्जा और औत्सुक्य भावों के समावेश से भाव-शबलता है ।

शिशुपालवध का अङ्गी-रस वीर है, जिसका इस काव्य में सुन्दर निर्वाह हुआ है । अङ्ग-रसों में श्रृंगार रस का प्रामुख्य रहा है । प्रथम और द्वितीय सर्ग में वीर-रस की योजना हुई है । तृतीय सर्ग में श्रीकृष्ण का सेनासहित इन्द्रप्रस्थ-प्रस्थान वीर-रस का पोषक है । अनन्तर श्रृंगार रस का सुदीर्घ प्रसंग आ जाता है, जिसमें अङ्गी रस विश्रान्त होता हुआ सा परिलक्षित होता है । द्वादश सर्ग में श्रीकृष्ण के पुनः सेना-सहित इन्द्रप्रस्थ प्रस्थान का वर्णन कर कवि ने विश्रान्त होते हुए अङ्गी रस का कुशलता पूर्वक अनुसन्धान कर दिया है ।[1]

1- उद्दीपनप्रशमने यथावसरमन्तरा ।
रसस्यारब्ध विश्रान्तेरनुसन्धानमङ्गिनः ।।

ध्वन्यालोक, 3/13

श्रृंगार रस का प्रसंग यद्यपि बहुत देर तक चलता है किन्तु वह अङ्गी-रस के पोषण में बाधक नहीं है. श्रृंगार-रस-प्रसंग में सन्निविष्ट अनेक वस्तुओं द्वारा कवि को महाकाव्य के नियमों के निर्वाह में तथा अपने पाण्डित्य का प्रदर्शन करने में बहुत सहायता मिली है ।

परिपुष्ट हुए रस का पौनःपुन्येन उद्दीपन बार-बार स्पर्श किये गये, अतएव मुर्झाये हुए पुष्प के समान रसापकर्ष का कारण बन जाता है ।[1] शिशुपालवध में श्रृंगार के परिपोष के विषय में यह बात कही जा सकती है यहाँ एक बार परिपुष्ट हुए श्रृंगार रसका उद्दीपन बार-बार हुआ है । माघ ने श्रृंगार रस के प्रसंग को अतिविस्तार से कामशास्त्रीय ढंग से प्रस्तुत किया है । उन्होंने चुम्बन आलिङ्गनतथा सुरत की विभिन्न विधियों का वर्णन करने में किञ्चिनमात्र संकोच का अनुभव नहीं किया । आनन्दवर्धन ने स्पष्ट उल्लेख किया है कि संभोग-श्रृंगार का केवल सुरत वर्णन रूप एक ही प्रकार तो नहीं है, अपितु उसके परस्पर प्रेम, दर्शन आदि और भी अनेक भेद हो सकते हैं ।[2] भारवि और माघ ने सुरत-वर्णन में जो विशेष रुचि दिखायी है वह उनकी असमीक्ष्यकारिता ही मानी जायेगी, किन्तु वह उनकी प्रतिभा से अभिभूत हो जाने से प्रतीत नहीं होती है ।[3]

1- अकाण्ड एव विच्छित्तिरकाण्डे च प्रकाशनम् ।
परिपोषं गतस्यापि पौनःपुन्येन दीपनम् ।
रसस्य स्याद विरोधायवृत्यनौचित्यमेव च।। ध्वन्यालोक, 3/19

2- न च सम्भोगश्रृङ्गारस्य सुरतलक्षण एवैकः प्रकारः, यावदन्येऽपि प्रभेदाः परस्परप्रेम दर्शनादयः सम्भवन्ति। ध्वन्यालोक, 3/14

3- यत्त्वेवंविधे विषये महाकवीनामप्यसमीक्ष्यकारिता लक्ष्ये दृश्यते ।
स दोष एव । स तु शक्तितिरस्कृतत्वात् तेषां न लक्ष्यते ।।
ध्वन्यालोक, 3/14

¦ सप्तम अध्याय ¦

व्युत्पत्ति पक्ष ¦ शिक्षा एवं विद्वता ¦

माघ ने अपनी शिक्षा अपने पिता तथा पितामह से प्राप्त की थी। शिशुपालवध के अध्ययन से ज्ञात होता है कि माघ केवल सरस कवि ही नहीं वरन् प्रकाण्ड विद्वान भी थे। माघ का पाण्डित्य सर्वतोन्मुखी था। महाकवि माघ को कवि कहना अधिक उपयुक्त है। कवि के लिये शास्त्र ज्ञान आवश्यक है। कवि का अनुभव अन्त: प्रकृति और वाह्य प्रकृति के सूक्ष्म निरीक्षण से ही परिपक्व होता है। इस सूक्ष्म निरीक्षण से वह प्रकृति का जैसा स्वरूप अंकित कर सकता है वैसा दूसरे विद्वान अथवा वैज्ञानिक नहीं कर सकते इसमें सहृदयों का मानस प्रमाण है विविध कलाओं तथा शास्त्रों में पारंगत संवेदनशील कवि जब रचना करता है तो उसमें उसकी बहुज्ञता का परिचय स्वत: ही मिल जाता है।

ऐसे ही कवियों के विषय में वर्णन करते हुये कहा गया है -

न स शब्दो न तदवाच्यं न स न्यायो न साकला।
जायते यन्न काव्यांगमहो भारो महान कवि: ।।[1]

अर्थात् न कोई ऐसा शब्द है न कोई अर्थ है, न ऐसा कोई न्याय है और न ऐसी कोई कला है जो काव्य का अंग बन सके। कितना बड़ा भार है उस पर।

1- महाकवि माघ,उनका जीवन तथा कृतियाँ - डॉ0मनमोहन लाल जगन्नाथ शर्मा, पृ0 398

राजशेखर ने कहा है-"सकल विद्या स्थानैकायतनं पंचदशं विद्यास्थानं काव्यम्" अर्थात् काव्य पन्द्रहवां विद्या स्थान है । इन सब भार को चतुरता के साथ अपनी लेखनी की नोक पर उठाने की क्षमता रखने वाला व्यक्ति ही महाकवि हो सकता है । ये सब बातें महाकवि माघ पर घटित होती हैं । उनका महाकाव्य इस बात का प्रमाण है-उन्हें संस्कृत भाषा एवं साहित्य पर असाधारण अधिकार था । वह न केवल मानव प्रकृति को समझते थे अपितु अश्व, गज आदि पशुओं की प्रकृति के भी ज्ञाता थे । अचेतन प्रकृति में चेतना का स्फुरण करानेकीक्षमता उनमें विद्यमान थी । "नव सर्गगते माघे नव शब्दो न विद्यते" अथवा "काव्येषु माघः कवि कालिदासः" ये उक्तियाँ उनके विषय में निराधार नहीं है । इनसे उनकी शास्त्रज्ञता सम्बन्धी लोक मान्यता प्रकट होती है । महाकवि माघ की प्रतिभा बहुमुखी थी । उस प्रतिभा का उपयोग जिस भी दिशा में हुआ वही दिशा उनके कवित्व के अद्भुत आलोक से उद्भासित हो गयी । किसी को महाकवि माघ की यमक योजना सुन्दर प्रतीत होती है तो किसी को उनके अर्थालंकार की । कोई उनके वर्णन वैचित्र्य पर आकर्षित होता है तो कोई उनके भाव सौष्ठव पर । कोई उनकी किसी कल्पना से मुग्ध होता है तो किसी को उनके पांडित्य पर आश्चर्य होता है । इस प्रकार उनकी बहुज्ञता का जो-जो परिचय साहित्यों में प्राप्त होता है उनके लिये अभीष्ट ही दृष्टिगत होता है ।

1- माघ का श्रुति विषयक ज्ञान -

महाकवि माघ का श्रुति विषयक ज्ञान अत्यन्त प्रशंसनीय है । प्रातः काल के समय इन्होंने अग्निहोत्र का सुन्दर वर्णन किया है । अधोलिखित श्लोक यह स्पष्ट करता है-

प्रतिशरणमशीर्ण ज्योतिरग्न्याहितानां विधिविहितविरिब्धः सामधेनीरधीत्य।
कृतगुरुदुरितौघध्वंसमध्वर्युवर्यैर्हुतमयमुपलीढे साधु सान्नाय्यमग्नि: ।।[1]

अग्नि का आधान करने वाले अग्निहोत्रियों के प्रत्येक घर में प्रचंड ज्वाला के साथ अग्नि जलने लगी है । उसमें श्रेष्ठ पुरोहित ब्राहमण लोग उदात्त, अनुदात्त स्वरों के उच्चारण के साथ गंभीरपापों के नाश करने वाले समिधा छोड़ने के मन्त्रों का पाठ करके शास्त्रानुमोदित विधि से हवि डालने लगे हैं और अग्नि की लपटें उसका आस्वादन करने लगी हैं ।

उपर्युक्त श्लोक में हवन कर्म में आवश्यक सामधेनी की विशेषता वाली ऋचाओं का उल्लेख किया गया है । महाकवि का वैदिक स्वरों की विशेषता का ज्ञान भी इससे भली भाँति प्रकट होता है । स्वरभेद से किसी प्रकार अर्थ भेद हो जाया करता है-इसे उनके काव्य के 14वें सर्ग के 24वें श्लोक में देखा जा सकता है -

संशयाय दधतो: सरूपतां दूरभिन्नफलयो: क्रियां प्रति ।
शब्दशासनविद: समासयोर्विग्रहं व्यवससु: स्वरेण ते ।।

इसका तात्पर्य यह कि संदिग्ध समासों से विपरीत अर्थ की संभावना बनी रहती है जैसे वृत्रासुर के यज्ञ में पुरोहितों ने इन्द्र शत्रु शब्द के लिये षष्ठी तत्पुरुष समास तथा बहुब्रीहि समास में स्वरभेद करके अपने यजमान का विनाश ही कर दिया है । अत: व्याकरण शास्त्र के पंडित पुरोहित लोग अपने यजमान युधिष्ठिर के अनुकूल

1- शिशुपालवध, 11/41

पड़ने वाले अर्थ के अनुसार स्वर पाठ कर रहे थे । यज्ञ सम्बन्धी बातों का उन्हें पूर्ण ज्ञान था तथा वेद की ऋचायें स्वर सहित कैसे बोली जायें इससे भी वह पूर्ण परिचित थे । 14वें सर्ग का 21 वां श्लोक इसका प्रमाण है -

सप्तभेदकरकल्पितस्वरं साम सामविदसंगमुज्जगौ ।
तत्र सूनृत गिरश्च सूरयः पुण्य ... ।।

उदात्त स्वर अनुदात्तपदमेकवर्ज्यम्" इस परिमाण से अनुदात्त और स्वरित स्वर को एक ही पद में नीचा कर देता है अर्थात् एक पद में होने वाली उदात्त स्वर अन्य स्वरों को अनुदात्त बना डालता है । एक स्वर के उदात्त होने से अन्य स्वर निपात हो जाते हैं । इस स्वरविषयक प्रसिद्ध नियम का प्रतिपादन माघ में शिशुपाल के वर्णन में कितनी सुन्दर रीति से किया है । आचार्य की तरह एक नियम को ही समझा है और भाव सौन्दर्य को तो बढ़ाया ही है ।

चौदहवें सर्ग में युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ का जैसा विस्तृत वर्णन मिलता है उससे तो यह स्पष्ट हो जाता है कि महाकवि माघ एक अच्छे कर्मकांडी पंडित थे । यह भी इससे सोचा जा सकता है कि महाकवि अपने जीवन में किसी विशाल यज्ञ का समारम्भ एवं समावर्तन समारोह सम्पन्न किये होंगे ।

2- <u>दर्शन विषयक ज्ञान</u> -

कवि का दर्शन विषयक ज्ञान का आरम्भ सांख्य से किया जाता है । सांख्य के तत्वों का उल्लेख कई स्थलों पर प्राप्त होता है ।

प्रथम सर्ग के 33वें श्लोक में नारद जी ने कृष्ण जी की स्तुति इस प्रकार की है -

उदासितारंनिगृहीतमानसैगृहीतमध्यात्मदृशा कथंचन ।

बहिर्विकारं प्रकृतेः पृथग्विदुःपुरातनं त्वां पुरुषं पुराविदः ।।

योगी लोग अपनी चित्तवृत्तियों को अन्तर्मुखी करके अध्यात्म दृष्टि से किसी भांति आपका दर्शन करते हैं । वे आपको संसार उदासीन महत आदि विकारों से पृथक् सत्व रजस् और तमस् इन तीन गुणों मे लिप्त फिर भी त्रिगुणात्मिका प्रकृति से भिन्न विज्ञान,धन आदि पुरुष के रूप में जानते हैं । इस प्रकार का मत कपिल आदि ऋषियों का है । सांख्य सिद्धान्त का उल्लेख वहाँ भी मिलता है । जहाँ राजसूय यज्ञ का वर्णन है - युधिष्ठिर के लिये बताया है कि वह स्वयं कुछ कार्य नहीं कर रहे थे-पुरोहित ही उनका सब कार्य कर रहे थे । सम्बद्ध 14वें सर्ग का 19वां श्लोक द्रष्टव्य है -

तस्य सांख्य-पुरुषेण तुल्यतां बिभ्रतः स्वयमकुर्वतः क्रियाः ।

कर्तृता तदुपलम्भतोऽभवद् वृत्तिभाजिःकरणे यथार्त्विजि ।।

जिस भांति सांख्य मत में पुरुष अपने आप पुण्य पाप आदि कोई कार्य नही करता, बुद्धि ही सब कार्य करती है,तब भी पुरुष उन सब कार्यों का साक्षी होता है और वही कर्ता कहलाता है,उसी प्रकार महाराज युधिष्ठिर उस राजसूय यज्ञ में यद्यपि कोई कार्य नही कर रहे थे-पुरोहित लोग सब कार्य कर रहे थे और युधिष्ठिर उन सब क्रियाओं की देखभाल ही कर रहे थे- फिर भी वही उस यज्ञ के कर्ता थे ।

बलराम की उक्ति में सांख्य शास्त्र का प्रतिपादन दूसरे सर्ग के 59वें श्लोक में कितनी अच्छी तरह से स्पष्ट किया गया है -

विजयस्त्वयि सेनाया: साक्षिमात्रेऽपदिश्यताम् ।

फलभाजि समीक्ष्योक्ते बुद्धेर्भोग इवात्मनि ।।[1]

सांख्य मत में जिस भांति आत्मा साक्षी रहकर फल की भागीदार रहती है और बुद्धि सुख दुखादि का भोग करती है उसी प्रकार तुम (श्रीकृष्ण) साक्षी मात्र बने रहकर फल के भागी बनोगे और यादवों की सेना विजय लाभ करेगी । तुम उद्-घोषणा मात्र कर दो । मीमांसा दर्शन का परिचय राजसूय यज्ञ के प्रसंग में मिलता है । वहाँ एक श्लोक आता है -

शाब्दितामनपशब्दमुच्चकैर्वाक्यलक्षण विदोऽनुवाक्यया ।

याज्यया यजनकर्मिणोऽत्यजन्द्रव्यजातमपदिश्य देवताम् ।।[1]

योगशास्त्र की चर्चा अधोलिखित श्लोक में प्राप्त होती है । यहाँ सांख्य दर्शन की भी बात आ गयी है -

मैत्र्यादिचित्त परिकर्मविदो विधाय क्लेशप्रहाणमिह लब्धसबीजयोगा: ।

ख्यातिं च सत्वपुरुषान्यतयाऽधिगम्य वांछन्ति तामपि समाधिभृतो निरोद्धुम् ।।[2]

इस श्लोक में प्रयुक्त मैत्र्यादि चित्त परिकर्मसबीजयोग "सत्वपुरुषान्यतया ख्याति" क्लेश: आदि योगशास्त्र की पारिभाषिक शब्दावली है । मैत्री, करुणा, मुदिता और उपेक्षा ये चार चित्त की शोधक वृत्तियाँ हैं । पुण्यकर्ताओं के लिये मैत्री, दुखियों के लिये करुणा, सुखियों के लिये मुदिता एवं पापियों के लिये उपेक्षावृत्ति का विधान है ।

1- शिशुपालवध, 14/20

2- वही, 4/55

दूसरा श्लोक और है -

सर्वं वेदिनमनादिमास्थितं देहिनामनुजिघृक्षया वपुः ।
क्लेशकर्मफलभोगवर्जितं पुंविशेषममुमीश्वरं विदुः ॥[1]

उपर्युक्त श्लोक में योगशास्त्र के सिद्धान्तों की दृष्टि से परमात्मा की विशिष्ट संज्ञाओं अथवा विशेषणों की चर्चा की गयी है । यहाँ ज्ञानी पुरुष से कवि का तात्पर्य योगी पुरुष से है ।

अद्वैत वेदान्त के तत्वों का प्रतिपादन भी कई स्थानों पर मिलता है । संसार को मिथ्या-माया स्वीकार कर ब्रह्म अथवा परमात्मा को ही एक मात्र सत्य बताने की बात तथा केवल ब्रह्म ज्ञान की प्राप्ति की साधना एवं मोक्ष प्राप्ति की उत्कट अभिलाषा को माघ ने अनेक स्थानों पर प्रकट किया है । वेदान्त के अन्यान्य सिद्धान्तों की चर्चा भी उन-उन अवसरों पर दृष्टिगत होती है । 14वें सर्ग का 64वां श्लोक इसका एक उदाहरण है -

ग्राम्यभावमपहातुमिच्छवो योगमार्गपतितेन चेतसा ।
दुर्गमेकमपुनर्निवृत्तये यं विशन्ति वशिनं मुमुक्षवः ॥

प्रथम सर्ग के 32वें श्लोक में भी इसी प्रकार निर्गुण ब्रह्म का प्रतिपादन मिलता है-

उदीर्णरागप्रतिरोधकं जनैरभीक्ष्णमक्षुण्णतयाऽतिदुर्गमम् ।
उपेयुषो मोक्षपथं मनस्विनस्त्वमग्रभूमिर्निरपायसंश्रया ॥

1- शिशुपालवध, 14/62

इसमें बताया गया है कि मोक्ष इच्छुकों को भी उसी एक ब्रह्मरूपी श्रीकृष्ण की शरण में जाना पड़ता है ।

माघ ने अपने समय के बौद्ध तथा जैन शास्त्रों का भी पूर्ण अध्ययन किया था । दूसरे सर्ग के 28वें श्लोक में इसका उल्लेख मिलता है -

सर्वकार्यशरीरेषु मुक्त्वाङ्गस्कन्धपंचकम् ।

सौगतानामिवात्माऽन्यो नास्ति मंत्रो महीभृताम् ।।

इस श्लोक में बौद्ध दर्शन भरा पड़ा है । बौद्ध शरीर में आत्मा नाम की कोई वस्तु स्वीकार नहीं करते । वे शरीर को पाँच स्कन्धों से युक्त मानते हैं । रूप स्कन्ध वेदना स्कन्ध, विज्ञान स्कन्ध, संज्ञा स्कन्ध और संस्कार स्कन्ध । बलराम ने अपने कथन को पंच स्कन्ध के साम्य से बड़ी स्पष्टता से पुष्ट किया है ।

महाकवि ने इसी तरह एक जगह और कहा है कि जिस तरह जीवात्मा पूर्व शरीर की पाँच इन्द्रियों के साथ नवीन देह में प्रविष्ट होती है उसी भाँति पाँचों राजपुत्रों के साथ भगवान श्रीकृष्ण ने इन्द्रप्रस्थ में प्रवेश किया । उनके 13वें सर्ग के 28वें श्लोक में ही पुनर्जन्म का सनातन रूप बड़ी सुन्दरता से प्रस्तुत किया गया है ।

असकृद्गृहीतबहुदेह सम्भवस्तदसौ विभक्तनवगोपुरान्तरम् ।

पुरुषः पुरं प्रविशति स्म पंचभिः सममिन्द्रियैरिव नरेन्द्र सूनुभिः ।।

इन अत्यल्प उदाहरणों से यह विदित हो जाता है कि माघ वेद और दर्शन के रहस्यों को बारीकी से समझते थे ।

3- पौराणिक ज्ञान -

पौराणिक ज्ञान भी कवि का असीम था । प्रतीत होता है कि कवि को समस्त पुराणों, महाभारत, भागवत, गीता आदि की पूर्ण जानकारी थी । काव्य को आदि से लेकर अन्त तक पढ़ लेने पर यह ज्ञात होता है कि पौराणिक कथायें तो माघ की जिह्वा पर नाचती सी हैं । पद-पद पर किसी न किसी कथा उल्लेख है और इस तरह उनके काव्य में अनेक पौराणिक कथायें आ गयी हैं । उदाहरण के रूप में 5वें सर्ग का 66वां श्लोक ले लिया जाय -

सार्धं कथंचिदुचितैः पिचुमर्दपत्रैरास्यान्तरालगतमाम्रदलं म्रदीयः ।
दासेरकः सपदि संवलितं निषादैर्विप्रं पुरा पतगराडिव निर्जगार ।।

इसमें पुराणों की एक कथा के अनुसार पूर्व काल में गरुड़ ने म्लेच्छों से अप्रसन्न होकर उन्हें जब निगलना आरम्भ किया तो सहसा उनका मुँह जलने लगा । जब उन्होंने उगला तो देखा वह म्लेच्छ नहीं एक ब्राह्मण था ।

गतया निरन्तर निवासमभ्युरः परिनाभि नूनमवमुच्य वारिजम् ।
कुरुराजनिर्दयनिपीडनाद्भयान्मुखमभ्ययरोहि मुरविद्विषः श्रिया ।।[1]

इस श्लोक में भगवान के नाभि कमल की कथा आई है तथा वक्षः स्थल में निवास करने वाली देवी-लक्ष्मी की भी कथा है ।

1- शिशुपालवध, 13/11

शिरसि स्म जिघ्रति सुरारिबन्धने छलवामनं विनयवामनं तदा ।

यशसेव वीर्य विजितामरद्रुम प्रसवेन वासिततिरोरुहे नृपः ।।[1]

पौराणिक कथाओं के अनुसार पूर्व समय में भगवान श्री कृष्ण ने सत्यभामा को प्रसन्न करने के लिये बलपूर्वक इन्द्रलोक से पारिजात को उखाड़कर अपने भवन में लगा लिया था ।

प्रजाइवांगादरविन्दनाभेः शम्भोर्जटाजूटतटादिवापः ।

मुखादिवाथ श्रुतयो विधातुः पुरान्निरीयुर्मुरजिद्ध्वजिन्यः ।।[2]

इस श्लोक से यह स्पष्ट होता है कि समस्त जगत के प्राणी भगवान के अंगों से उत्पन्न हुये हैं । "यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते" अथवा "ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीत्" इत्यादि श्रुतियाँ इसकी साक्षी हैं । उपर्युक्त श्लोकों में कमल नाभि भगवान विष्णु की कथा आ गयी, गंगा की उत्पत्ति की कथा आ गयी, विधाता के मुख से श्रुतियाँ कैसे आयीं इसकी भी कथा आ गयी और इससे भी परे श्रुतियों में कही हुयी बात परोक्ष रूप में "ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीत्" के रूप में आ गयी । प्रस्तुत चित्र अप्रस्तुत चित्रों की पृष्ठभूमि में मानो खिल उठे । इस भाँति हम देखते हैं कि महाकवि ने पुराणों की कथा का आश्रय लेकर न केवल अपने पौराणिक ज्ञान का ही परिचय दिया है किन्तु उन कथाओं से अर्थ को अभिव्यक्त करने में तथा उसमें चमत्कार लाने में अपनी कुशलता का परिचय भी दिया है ।

---

1. शिशुपालवध, 13/12
2. वही , 3/65

4- साहित्यिक ज्ञान -

महाकवि माघ को साहित्य के विभिन्न अंगों का पूर्ण ज्ञान था। अतः क्या अलंकार शास्त्र, क्या छन्दशास्त्र तथा क्या रस सिद्धान्त-सब ही साहित्यिक विषयों की चर्चा उनके काव्य में यत्र तत्र प्राप्त होती है।

5- सामरिक ज्ञान -

युद्ध विषयक बातों की चर्चा भी महाकवि के काव्य में प्रचुर मात्रा में मिलती है। कवि ने महाकाव्य में न केवल सैनिक प्रमाण के यथावत वर्णनों से युद्ध सम्बन्धी बातों का परिचय दिया है किन्तु युद्धस्थल का भी रोमांचकारी तथा यथावत् वर्णन किया है। इन दृश्यों को पढ़ने से यह अनुमान होने लगता है कि कवि को रणभूमि का प्रत्यक्ष अनुभव है। युद्ध का ऐसा विपुल वर्णन काव्यों में अन्यत्र दुर्लभ है। वन विहार, जल विहार, चन्द्रोदय वर्णन, नायिकाओं के उपालंभ श्रृंगार सम्बन्धी बातों से पाठकों को मुग्ध करके कवि उन्हें एक यज्ञ में सम्मिलित कर देता है और फिर सहसा एक युद्ध का दृश्य उनके सामने आ जाता है, बात ही बात में घमासान युद्ध हो जाता है जिसमें विभिन्न अस्त्र शस्त्र आंखों के सामने नाचने से लगते हैं -कवि की यह वर्णन चारुता पाठकों को अवाक् कर देती है।

6- संगीत शास्त्र का ज्ञान -

साहित्य शास्त्र की अन्य बातों पर जैसा कवि का अधिकार था वैसा ही अधिकार संगीत एवं अन्यान्य उपयोगी ललित कलाओं पर भी था।

गायन, वाद्य, स्वर, ताल, लय आदि के सम्बन्ध में कवि की अधिकारपूर्ण उपमायें एवं उक्तियाँ सिद्ध करती हैं कि महाकवि संगीत प्रेमी थे । उनकी संगीत निपुणता का परिचय का प्रमाण प्रथम सर्ग के दसवें श्लोक से प्राप्त होता है -

रणद्भिराघट्टनया नभस्वतः पृथग्विभिन्नश्रुतिमण्डलैः स्वरैः ।

स्फुटीभवद्ग्राम-विशेषमूर्च्छनामवेक्षमाणं महतीं मुहुर्मुहुः ।।

वायु के आघात की पृथक ध्वनि में (वीणा के तारों की झन-झनाहट में) पृथक-पृथक सुनाई देने वाले स्वर (सप्त स्वर- स रे ग म प ध नी) द्वारा तीनों ग्राम (षड्ज, मध्यम और गान्धार) तथा मूर्च्छना (आरोह, अवरोह) के क्रम भेद को बताने वाली महती नाम वाली वीणा को बार-बार देखते हुये श्रीकृष्ण जी ने नारद को देखा ।

उपर्युक्त में स्वरों के ग्राम का अर्थ है स्वरों का समूह । संगीत शास्त्र में कहा गया है "यथा कुटुम्बिनः सर्वेऽप्येकीभूता भवन्तिहि । तथा स्वराणां सन्दोहो ग्राम इत्यभिधीयते । ये ग्राम तीन होते हैं । मूर्च्छनाओं की संख्या इक्कीस होती है । स्वरों के उतार-चढ़ाव तथा आरोह-अवरोह को मूर्च्छना कहते हैं । एक-एक ग्राम की सात-सात मूर्च्छनायें कुल मिलाकर इक्कीस होती हैं- "सप्तस्वरस्त्रतो ग्रामाः मूर्च्छनाश्चैकविंशतिः"।

इसी प्रकार ग्यारहवें सर्ग के प्रथम श्लोक से भी महाकवि ने अपने विशिष्ट संगीत ज्ञान का परिचय दिया है -

श्रुतिसमधिकमुच्चैः पंचमं पीडयन्तः सततमृषभहीनं भिन्नकीकृत्य षड्जम् ।

प्रणिजगदुरकाकुश्रावकस्निग्धकण्ठाः परिणतिमिति रात्रेर्मागधा माधवाय ।।

उपर्युक्त दोनो श्लोकों से ज्ञात होता है कि महाकवि माघ संगीत शास्त्र में गहरे उतरे हुये थे। वह यह जानते थे कि कौन से स्वर से कब गाना चाहिये और कौन से कब।

7- नाट्य शास्त्र का ज्ञान -

नाट्यशास्त्र का भी इन्हें पूर्णज्ञान था। इन्होंने विभिन्न नाट्यांगों की उपमा बड़े सुन्दर ढंग से अपने काव्य के 20वें सर्ग के 44वें श्लोक में की है-

दधतस्तनिमानमानुपूर्व्या बभुरक्षिश्रवसो मुखे विशाला:।

भरतज्ञ कवि प्रणीत काव्य ग्रथितांका इव नाटक प्रपंचा: ।।

नाटकों की मुख सन्धि को विस्तृत एवं अन्यान्य प्रतिमुख, गर्भ, विमर्श. निर्वहण, संधियों को क्रमश: सूक्ष्म रखना चाहिये। इसका वर्णन सर्पों पर घटाकर किस कमनीय रूप में किया है - 14वें सर्ग के 50वें श्लोक से पूर्ण स्पष्ट हो जाता है -

स्वादयन्रसमनेकसंस्कृत-प्राकृतैरकृतपात्रसंकरै: ।

भावशुद्धिसहितैर्मुदं जनो नाटकैरिव बभार भोजनै:।।

जिस भांति दर्शकगण नाटकों को देखते समय श्रृंगार आदि नवों रसों का अनुभव करते हुये आनन्द प्राप्त करते हैं, उसी भांति युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ में आये हुये लोग भोजन करते समय मधुर अम्ल आदि छहों रसों के व्यंजनों का आस्वादन कर आनन्द प्राप्त कर रहे थे। नाटक में जिस भांति संस्कृत, प्राकृत अनेक भाषाओं का व्यवहार होता है। उसी भांति उस यज्ञ के भोज्य पदार्थों में भी बहुत पदार्थ संस्कृत अथवा पकाये गये थे और कुछ प्राकृत अर्थात् वैसे ही रख दिये गये थे। जिस

भाँति नाटक में एक पात्र का अभिनय कोई दूसरा पात्र नहीं करता उसी भाँति भोजन के एक पात्र से दूसरा पात्र नहीं मिलता था । नाटक में जैसे शुद्ध स्थायी भाव रहता है, उसी प्रकार यज्ञ के भोज्य पदार्थों में भी स्वाभाविक शुद्धि थी ।

उपर्युक्त श्लोक से महाकवि माघ की नाट्य विषयक जानकारी प्रमाणित होती है ।

4- राजनीति विषयक ज्ञान -

महाकवि का राजनीति विषयक ज्ञान बहुत विषद् था । द्वितीय सर्ग के श्रीकृष्ण उद्धव बलराम संवाद से तथा राजसूय यज्ञ के अवसर पर युधिष्ठिर और भीष्म द्वारा कहे गये वाक्यों से महाकवि के राजनीतिक ज्ञान का परिचय मिलता है । राजनीति पारंगत इस कवि ने अपने महाकाव्य के द्वारा बहुत से राजनीतिक तत्वों को हमारे सम्मुख रखा है । राजा के क्या-क्या कर्तव्य होने चाहिये, राजा की सेना सम्बन्धी नीति क्या होनी चाहिये, संधि, विग्रह आदि के प्रयोग किस तरह किये जाने चाहिये आदि सामान्य और विशेष बातों को अपनी युक्तियां देकर तर्क की कसौटी पर रखकर सरल और सुबोध बनाकर प्रस्तुत किया है । जिन जटिल राजनीतिक समास्याओं का समाधान करना अतिकठिन है। उसको भी महाकवि ने अपनी लेखनी के द्वारा इस प्रकार सरल और सुस्पष्ट कर दिया कि इस युग में भी वह बातें कार्य रूप में परिणत करने योग्य समझी जाती है । कवि की राजनीति महलों तक ही सीमित थी-ऐसी कोई बात नहीं थी वह तो राजतंत्र की पूर्ण समर्थक थी । वह हमारे सम्मुख आकर राजा के उस उदार स्वरूप

को व्यक्त करती है जिसकी आज्ञा सर्वतोन्मुखी हित रक्षा से सम्बन्ध रखती है । महाकाव्य में वर्णित राजनीति भारतीय सभ्यता एवं संस्कृति की पृष्ठ भूमि में ही विकसित हुयी है । दैनिक कार्यों में भी जो राजनीतिक ज्ञान की आवश्यकता पड़ती है, उसे भी महाकाव्य में यत्र-तत्र महाकवि द्वारा समझाया गया है । महाकाव्य के दूसरे सर्ग का 10वाँ, 26वाँ, 27वाँ, 28वाँ, 57वाँ, 111वाँ और 113वाँ श्लोक महाकवि के विशिष्ट राजनीतिक ज्ञान का परिचायक है ।

9- <u>ज्योतिष ज्ञान</u> -

महाकवि माघ को ज्योतिष शास्त्र का अच्छा-खासा ज्ञान था । स्थल-स्थल पर उनके काव्य में ज्योतिष शास्त्र से सम्बद्ध तथ्य आये हैं जो यह प्रमाणित करते हैं कि उनका ज्योतिष शास्त्र का ज्ञान भी विशिष्ट श्रेणी का ही था । तीसरे सर्ग का 22वां श्लोक इसी सन्दर्भ में प्रस्तुत है -

> रराज सम्पादकमिष्टसिद्धेः सर्वासु दिक्ष्वप्रतिषिद्ध मार्गम् ।
> महारथः पुष्परथं रथांगी क्षिप्रं क्षपानाथ इवाधिरूढः ।।

चक्रधारी महारथी श्रीकृष्ण जो सदैव अभिलषित वस्तुओं का सम्पादन करने वाले हैं, जिनका मार्ग सब दिशाओं में बाधा रहित है तथा जिनकी गति तीव्र है आज अपने पुष्परथ में उसी तरह अवस्थित हैं जैसे पुष्य नक्षत्र में अवस्थित चंद्रमा हों । कवि ने अपनी कला से पुष्परथ को उपर्युक्त श्लोक में पुष्य नक्षत्र बतला कर कार्य सिद्धि की सूचना दी है । ज्योतिष शास्त्र का कथन है कि पुष्य नक्षत्र में किया हुआ कार्य कभी निष्फल नहीं होता । वह अर्थसिद्धि का सम्पादन करता है ।

इष्ट सिद्धिदायक तथा सर्वदिक् गमन में प्रशस्त वह पुष्य नक्षत्र रूपी क्रीड़ा रथ भी वैसा ही था- उसमें श्रीकृष्ण के बैठते ही कार्य सिद्धि का विश्वास हो गया । इसी प्रकार प्रथम सर्ग के 75वें श्लोक की अंतिम पंक्ति भी ज्योतिष शास्त्रों के तथ्यों से पूर्ण है -

व्योम्नीव भ्रुकुटिच्छलेन वदने केतुश्चकारास्पदम् ।

श्रीकृष्ण के मुखाकाश पर शत्रुओं के नाश का भ्रुकुटि केतु का उदय होता है । ज्योतिष शास्त्र कहता है - "चन्द्रमभ्युत्थित: केतु: क्षितीशानां विनाशकृत्" ।

ज्योतिषशास्त्र में जब चन्द्रमा सूर्य के अतिरिक्त किन्हीं दो ग्रहों के मध्य में स्थित होता है तब दुरूधरा योग होता है (अनफा सुनफा दुरू धरा) । अधोलिखित श्लोक में महाकवि ने इसी बात को स्पष्ट किया है -

पवनात्मजेन्द्रसुतमध्यवर्तिना नितरामरोचि रुचिरेण चक्रिणा ।
दधतेव योगमुभयग्रहान्तरस्थितिकारितं दुरुधराख्यमिन्दुना ।।[1]

इसी प्रकार अन्यत्र भी ज्योतिष सम्बन्धित कई प्रसंग आये हैं जिनमें कवि के ज्योतिर्विद होने का प्रमाण मिलता है । श्लोक 2/84, 2/93, 2/94 एवं 12/25 द्रष्टव्य है ।

10- आयुर्वेद का ज्ञान -

आयुर्वेद अथवा वैद्यक शास्त्र का महाकवि माघ को पूर्ण ज्ञान था क्योंकि तत्सम्बन्धी सूक्ष्म बातों का उल्लेख हम शिशुपालवध में हम इधर उधर पाते हैं । यही नहीं कहीं-कहीं तो वह एक वैद्य के रूप में भी उपस्थित दिखाई देते हैं-

---

1- शिशुपालवध, 13/22

अधोलिखित श्लोक इस सन्दर्भ में द्रष्टव्य है -

चतुर्थोपायसाध्ये तु रिपौ सान्त्वमपक्रिया ।

स्वेद्यमामज्वरं प्राज्ञः कोऽम्भसा परिषिञ्चति ।।[1]

जिस भांति तरुण ज्वर में, जिसमें पसीना होने पर शान्ति हो सकती है, जल से स्नान करा देने पर रोगी का ज्वर बिगड़ जाता है, उसी भांति दण्डनीय शत्रु के साथ सन्धि की बात करने से वह भी बिगड़ जाता है । आयुर्वेद के ज्वर सिद्धान्त के रूप में यह कितना मनोहर प्ररूपण प्रस्तुत किया गया है । इस सिद्धान्त के आधार पर कवि ने अपनी वांछित बात एक सुन्दर रूप में यहाँ पर व्यक्त कर दी है । नीति की कही हुयी यह बात कदाचित शुष्क हो जाती-समझ मे न आती अतः महाकवि उसे अप्रस्तुत विधान के रूप में कार्य में लाकर समक्ष रख दिये । यह संसार है, यहाँ सीधे, सच्चे, भोले व्यक्तियों का वैसे ही गुजारा नही तो फिर शत्रु के साथ उनका कैसे निर्वाह हो सकता है । शत्रु तो एक तरुण ज्वर के समान है ।। तरुण ज्वर तो एक भयंकर रोग है । शीतलोपचार से वह ठीक नही हो सकता, उसके लिये तो धर्मोपचार ही चाहिये ।

इसी प्रकार एक और श्लोक देखने लायक है -

मा वेदि यदसावेको जेतव्यश्चेदिराडिति ।

राजयक्ष्मेव रोगाणां समूहः स महीभृताम् ।।[2]

1- शिशुपालवध, 2/54

2- शिशुपालवध, 2/96

यह चेदिराज अकेला है - अतः जीता जाने योग्य है,ऐसी बात मत सोचना क्योंकि वह तो राजाओं का एक समूह है ठीक उसी तरह से जैसे राज्यक्षमा कई रोगों का एक समूह है ।

जिस भाँति ज्वर, खाँसी,रक्त पित्तादि के प्रकोप-इन अनेक रोगों के समूह का नाम राजयक्ष्मा है,उसी भाँति शिशुपाल अनेक राजाओं का समूह है, वह अकेला नही है,उसे जीतना सरल नही है । शिशुपाल अकेला प्रतीत हो रहा है-ऐसी कोई बात नही है । उसके साथ छोटे-मोटे सहायक अन्य राजा भी हैं जिनकी सहायता से आज वह प्रबल है ।

काव्य के दूसरे सर्ग का 84वां श्लोक उनके आयुर्वेद ज्ञान का एक और प्रमाण है -

कृतापचारोऽपि परैरनाविष्कृतविक्रियः ।

असाध्यःकुरुते कोपं प्राप्ते काले गदो यथा।।

जिस भाँति रोग कुपथ्य सेवन करने पर पहले कोई विकार नही प्रकट करता परन्तु शरीर की शक्ति के क्षीण हो जाने पर वही असाध्य हो जाता है और प्रचण्ड कोप करता है उसी भाँति बुद्धिमान पुरूष शत्रुओं से तिरस्कृत होने पर भी अपने चित्त के विकारों को मन में ही छिपाये रखते हैं और जब शत्रु को किंचित मात्र आपदा ग्रस्त देखते हैं तो उस परक्रोध प्रकट करते हैं -

षाड्गुण्यमुपयुंजीत शक्त्यपेक्षी रसायनम् ।

भवन्त्यस्यैव भंगानि स्थास्नूनि बलवन्ति च।।[1]

1- शिशुपालवध,2/93

शक्ति को चाहने वाले (प्रभाव, उत्साह, मन्त्र) राजा को षड्गुण सन्धि विग्रहादि रूपी रसायन का सेवन करना चाहिये, ऐसा करने पर इसका प्रयोग करने वाले राजा के अंग (स्वामी, जनपद, अमात्य, कोष, दुर्ग, सेना और मित्र) दृढ़ और बलवान रहते हैं। इस श्लोक में कितने सुन्दर तरीके से कवि ने दो भिन्न बातों को एक दूसरे से जोड़कर प्रस्तुत कर दिया है।

शरीर को स्वस्थ रखने के लिये आयुर्वेद भी व्यायाम करने की परामर्श देता है। अधोलिखित श्लोक में कवि ने इसी बात का उल्लेख किया है-

स्थाने शमवतां शक्त्या व्यायामे वृद्धिरङ्गिनाम् ।
अयथाबलमारम्भो निदानं क्षयसंपदः ।।[1]

यहाँ व्यायाम की उपयोगिता बतायी गयी है। आयुर्वेद भी व्यायाम पर बल देता है। शक्ति के अनुसार व्यायाम करना चाहिये जिससे शरीर की वृद्धि होती है किन्तु विपरीतावस्था में तो यही व्यायाम क्षय का कारण होकर देह को दुर्बल और रोगों का घर बना देता है। यहाँ आयुर्वेद का पुट देकर कवि ने सुन्दर शैली में अपनी बात को पुष्ट किया है।

ज्वरादि में निपुण वैद्य उपवास कराना हितकर समझता है - इस भाव को कवि ने इस प्रकार स्पष्ट किया है -

स्रस्ताङ्गसंधौ विगताश्वपाटवे, रुजा निकामं विकलीकृते रथे ।
आप्तेन तक्ष्णा भिषजेव तत्क्षणं, प्रचक्रमे लङ्घनपूर्वकः क्रमः ।।[2]

1- शिशुपालवध, 2/94

2- वही, 12/25

इसी प्रकार 20वें सर्ग का 76 वां श्लोक भी महाकवि के आयुर्वेद ज्ञान से सम्बद्ध है । इसमें तो स्वयं महाकवि वैद्यराज के रूप में दृष्टिगत होते हैं -

इति नरपतिरस्त्रं यद्यदाविश्चकार प्रकुपित इवरोगःक्षिप्रकारी विकारम् ।
भिषगिव गुरुदोषच्छेदिनोपक्रमेण क्रमविदथमुरारिः प्रत्यहंस्तत्तदाशु ।।

11- कामशास्त्र का ज्ञान -

महाकवि माघ का कामशास्त्र का ज्ञान विशद था । महाकाव्य में कई स्थलों पर कवि ने अपने उपर्युक्त शास्त्र के ज्ञान का परिचय अपनी लेखनी द्वारा श्लोकों के माध्यम से प्रस्तुत किया है, 9वें, 7वें, 5वें सर्ग के कुछ श्लोकों में उन्होंने अपनी नायिकाओं के अंगों के लावण्य का वर्णन कर उनके रूप-सौन्दर्य का परिचय बहुत ही आकर्षक रूप में कराया है -

दधत्युरोजद्वयमुर्वशीतलं भुवो गतेव स्वयमुर्वशीतलम् ।
शुभौ मुखेना प्रतिमेन काचन श्रियाधिका तां प्रतिमेनका च न।।[1]

अतिशयपरिणाहवान् वितेने बहुतरमर्पित रत्नकिंकिणीकः ।
अलघुनि जघनस्थलेऽपरस्या ध्वनिमधिकं कलमेखलाकलापः ।।[2]

यानाज्जनः परिजनैरवतार्यमाणा राज्ञीर्नरायनयनाकुलसौविदल्लाः ।
स्त्रस्तावगुंठनपटाःक्षणलक्ष्यमाणवक्त्रश्रियः सभयकौतुकमीक्षते स्म ।।[3]

1- शिशुपालवध, 9/86

2- वही, 7/5

3- वही 5/17

माघ कवि के इस प्रकार के सौन्दर्य वर्णनों में इन्द्रिय तुष्टि का प्राधान्य रहता है । क्षीण कटि, मोटे-मोटे नितम्ब, जिन पर करधनी पड़ी हो, स्तन विशाल हों, पैरों में महावर व घुंघरू हों, हाथों में कंकण पहने हुये, लहंगे को घुमाती हुयी, घूंघट के पट से मुंह को दिखाती हुयी माघ की नायिका चल रही है जिससे उसको आनन्द आ रहा है । इन उदाहरणों को रूप वर्णन की श्रेणी में सम्मिलित किया जाता है । इसी प्रकार संयोग श्रृंगार पूर्ण कुछ और भी श्लोक प्राप्त होते हैं जिसमें संयोग की वह स्थिति प्राप्त होती है जो उपभोग मूलक होने के कारण वासनामय दृष्टिगत होतीहै । इन वर्णनों में कवि का मन अधिक तरंगित हुआ है और इसमें वह कुछ उलझा सा भी दिखायी पड़ता है । उदाहरणार्थ -

सीमन्तं निजमनुबध्नती कराभ्यामालक्ष्यस्तनतटबाहुमूलभागा ।
भर्त्रान्यामुहुरभिलष्यया निदध्ये, नैवाहो विरमति कौतुकं प्रियेभ्यः ।।[1]

उपर्युक्त श्लोक में कोई सुन्दरी अपने केशपाश को जब हाथों में बांध रही थी तब उसके बाहुमूल एवं स्तनप्रदेश दिखायी पड़ रहे थे जिसको उसका प्रियतम उसे अनुराग-पूर्वक निर्निमेष दृष्टि से देखे जा रहा था ।

प्रस्वेदवारिसविशेषविषक्तमंगै कूर्पासकं क्षतनखक्षतमुत्क्षिपन्ती ।
आविर्भवद्घनपयोधरबाहुमूला शातोदरी युवदृशां क्षणमुत्सवोऽभूत् ।।[2]

1- शिशुपालवध, 8/69

2- वही , 5/23

उपर्युक्त श्लोक में किसी सुन्दरी की कंचुकी भीग गयी है उसे जब वह निकाल रही थी तो उस समय उसके मोटे-मोटे स्तन एवं बाहुमूल दिखाई पड़ने लगे । यह युवकजनों के लिये क्षणिक उत्सव का कारण बन गये । उपर्युक्त इन दोनों श्लोको में कवि द्वारा व्यंजित इन्द्रियवासना की मादक और भीनी-भीनी सुगन्ध महाकवि द्वारा प्रदर्शित की गयी है । इन्द्रियों के लिये तो यह क्षणिक पर्व के रूप में ही उपस्थित कर दी गयी है । उपर्युक्त श्लोक महाकवि माघ के कामशास्त्र सम्बन्धी गहन अध्ययन का परिचय देते हैं ।

विश्व में ऐसा कोई प्राणी नहीं है जिसमें वासना न हो । सृष्टि की उत्पत्ति ही भोग पर अवलम्बित है । संभोग सुख की मधुरता तथा सरलता बनाये रखने में सृष्टि का हित होता है । हमारे आचार्यों तथा ऋषि महर्षियों ने भी इस बात पर बड़ा बल दिया है । महाकवि माघ का भी कुछ ऐसा ही विचार था -

आहुर्पीडनकचग्रहणाभ्यामाहतेन नखदन्तनिपातैः ।

बोधितस्तनुशयस्तरुणीनामुन्मिमील विशदं विषमेषुः ।।[1]

अर्थात् स्त्रियों के शरीर में रहने वाला कामदेव, निर्दय आलिंगन, केशकर्षण, ग्रहणन एवं दन्त, नख, क्षतों से जगाये जाने पर जड़ता रहित होकर जग उठता है ।

आलिंगन करने की भिन्न-भिन्न विधियाँ आचार्यों द्वारा उल्लिखित हैं । इनसे कामेच्छा जागृत होती है । रतिक्रिया में इनका व्यवहार आनन्द और विलास का वर्धन करता है । महाकवि माघ ने भी आलिंगन को इसी रूप में स्वीकार

1- शिशुपालवध, 10/72

कर यह व्यक्त किया है -

उत्तरीयविनयात्त्रपमाणा रुन्धती किलतदीक्षणमार्गम् ।
आविरष्ट विकटे न विवोढुर्वक्षसि कुचमण्डलमन्या ।।[1]

नायक और नायिका अन्यमनस्क से खड़े हैं । नायक इतने में ही नायिका का उत्तरीय अंचल खींच लेता है । फिर क्या है ? नायिका के स्तन खुल जाते हैं । वह लज्जित होती है । वह भला इस बात को कैसे रुचिकर समझे कि उसके उस खुले हुये कुचों को नायक देख ले । इसका वह तुरन्त उपाय सोच लेती है । नायक की दृष्टि उसके कुचों पर पड़े इससे पहले ही वह अपनी छाती को नायक के वक्षःस्थल से चिपका देती है । आलिंगन के और भी चित्र देखने योग्य हैं -

प्रियतमेन यया सरुषा स्थितं न सहसा सहसा परिरभ्यतम् ।
श्लथयितुं क्षणमक्षमतांगना न सहसा सहसा कृतवेपथुः ।।[2]

शास्त्रकारों ने वृक्षाधिरूढ़क आलिंगन का जिक्र किया है । महाकवि ने भी उसके स्वरूप का प्रदर्शन किया है -

विलसितमनुकुर्वती पुरस्ताद्धरणिरुहाधिरुहो वधूर्लतायाः ।
रमणमृजुतया पुरः सखीनामकलितचापलदोषमालिलिंग ।।[3]

1- शिशुपालवध, 10/42

2- वही, 6/57

3- वही, 7/46

इसी भांति का एक और आलिंगन

सललितमवलम्ब्य पाणिनांऽसे सहचरमुच्छ्रितगुच्छवाञ्छयाऽन्या ।
सकलकलभकुम्भविभ्रमाभ्यामुरसि रसादवतस्तरे स्तनाभ्याम् ।।[1]

प्रियतमा अपने प्रियतम का आलिंगन करना चाहती है पर प्रियतम इस बात को समझ ही नहीं पाता । अतः फूल के गुच्छे को तोड़ने के बहाने प्रियतमा उसके कन्धे को पकड़ कर ऊँचे उठती है और आलिंगन भी स्वतः हो जाता है । कैसी मधुर कल्पना है यह ?

लज्जा स्त्रियों का भूषण है किन्तु यही लज्जा रति काल में विष के समान है । महाकवि माघ ने इस रति रहस्य को एक उत्तम प्रकरण में बड़ी सुन्दरता से व्यक्त किया है -

अन्यदा भूषणं पुंसः क्षमा लज्जेव योषितः ।
पराक्रमः परिभवे वैयात्यं सुरतेष्विव ।।[2]

अधिकांशतः देखा जाता है कि संभोग के समय पुरुष अपनी पत्नी को अपनी इच्छानुसार सचेष्ट न पाकर एक विचित्र सी निराशा का अनुभव करता है । संभोग के समय अपनी स्त्री की निश्चलता एवं स्थिरता से यह समझा जाता है कि स्त्री को आनन्द की प्राप्ति नहीं होती । वह उसको उस समय अत्यधिक आनन्दित देखना चाहता है । शास्त्रकारों ने इसका पुरुषोचित इलाज बताया है । इसी बात को महाकवि

1- शिशुपाल वध, 7/47

2- वही, 2/44

माघ ने भी अपने महाकाव्य में बताया है -

यद्यदेव रुरुचे रुचिरेभ्यः सुभ्रुवो रहसि तत्तदकुर्वन् ।

आनुकूलिकतया हि नराणामाक्षिपन्ति हृदयानि तरुण्यः ।।[1]

उपर्युक्त समस्त श्लोक महाकवि माघ के कामशास्त्र के विशद ज्ञान के परिचायक हैं ।

12- पशु क्रियाओं का ज्ञान -

महाकवि माघ को पशु प्रकृति का जैसा निकट का परिचय प्राप्त था वैसा कदाचित् किसी और कवि को रहा हो । उन्होंने हाथियों, घोड़ो इत्यादि का यथावत् वर्णन किया है ।

अधोलिखित श्लोक में उनकी गजविद्या का परिचय मिलता है -

सान्द्रत्वक्कास्तल्पलाश्लिष्टकक्षाश्चार्वीं शोभामाप्नुवन्तश्चतुर्थीम् ।

कल्पस्यान्ते मारुतेनोपनुन्नाश्चेलुश्चण्डं गण्डशैला इवेभाः ।।[2]

उपर्युक्त में हाथी की आयु कितनी मानी गयी है -इस बात का पूर्ण ज्ञान अंग की चतुर्थी शोभा धारण करने वाला कहकर कराया है । हाथियों की पूर्ण आयु 120 वर्ष की मानी जाती है । कुल दशायें 12 होती हैं । अतः उनकी चतुर्थी दशा चालीस वर्ष की आयु में आती है । इस श्लोक में यह भी स्पष्ट किया गया है कि चतुर्थी शोभा धारण करने वाला यह गजराज अत्यन्त सघन चमड़े का है ।

1- शिशुपाल वध, 10/79

2- वही, 18/6

इससे प्रतीत होता है कि हाथी 40 वर्ष की उम्र में युवावस्था में आता है । तब उसके अंग प्रत्यंग का विकास होता है । अत: उसकी गति भी बहुत तीव्र रहती है इसी लिये कवि ने इस अवस्था का चित्र उसकी गति को बताकर चित्रित किया है । कवि कहता है कि जैसे प्रलयकाल के अवसर पर वायु से प्रेरित बड़ी-बड़ी शिलायें चलती हैं उसी भांति ये हाथी भी अत्यन्त तीव्र गति से चल रहे हैं । इसी सम्बन्ध में एक दूसरा श्लोक और भी है -

मदाम्भसा परिगलतेन सप्तधा गजांजन:शमितरजश्चयानध: ।
उपर्यवस्थितघनपांशुमंडलानलोकयत्ततटमंडपानिव ।।[1]

उपर्युक्त श्लोक में हाथियों के मद टपकाने की बात कही गयी है । वे सातों स्थान से मद बहाते हैं । वे सात स्थान गज विद्या के अनुसार ये हैं - दोनों नेत्र, दोनों कपोल, सूँड़, मूत्रेन्द्रिय तथा मलेन्द्रिय । गज विद्या में इसी बात को इस प्रकार कहा गया है -

चक्षुषी च कपोलौ च करो मेढ्रं गुदस्तथा ।
सप्त स्थानानि मातंग मदस्य स्रुति हेतव: ।।[2]

समय को देखकर हाथी को कैसे अंकुश द्वारा वश में किया जाता है - यह बात अधोलिखित श्लोक में स्पष्ट की गयी है -

प्रत्यन्यनागं चलितस्त्वरावता निरस्यमकुठं दधतान्यमंकुशम् ।
मूर्धानमुद्वर्तितदन्तमंडलं धुवन्नरोधि द्विरदो निषादिना ।।[3]

1- शिशुपालवध, 17/68
2- वही, 17/69
3- वही, 12/12

दूसरे प्रतिद्वन्द्वी हाथी की ओर दौड़ने पर दन्तमंडलों समेत मुख को ऊपर फैलाते हुये गजराज को महावत ने शीघ्रता के साथ पहले कुंठित अंकुश को निकाल कर जब अन्य तीक्ष्ण अंकुश से मारा तब वह रुक गया और अपने मस्तक को हिलाने लगा । महावत के गज पर चढ़ने का एक दृश्य भी रखा गया है -

उत्क्षिप्तगात्रः स्म विडम्बयन्नभः समुत्पतिष्यन्तमगेन्द्रमुच्चकैः ।

आकुंचित प्रोहनिरूपितक्रमं करेणुरारोहयते निषादिनम् ।।[1]

शरीर के प्रथम भाग को ऊपर करके मानो आकाश को लांघने का इच्छुक एवं विशाल पर्वत का अनुकरण करने वाला गजराज अपने पिछले पैरों को झुका कर अपने ऊपर उसी के सहारे महावत को चढ़ाने लगा ।

गजविद्या में निपुणता का एक और उदाहरण -

जज्ञे जनैर्मुकुलिताक्षमनाददाने संरब्धहस्तिपकनिष्ठुर चोदनाभिः ।

गंभीर वेदिनि पुरःकवलं करीन्द्रे मन्दोऽपि नाम नमहानवगृह्य साध्यः ।।[2]

एक गम्भीरवेदी गजराज कुपित महावत द्वारा अत्यन्त निष्ठुरता पूर्वक चाबुक लगाये जाने पर भी आंखे मूंदकर जब खड़ा ही रह गया और उसने अपना ग्रास भी नहीं ग्रहण किया तब लोगों ने जान लिया कि सचमुच जो महान पुरुष होते हैं वे मन्द-शक्ति होने पर भी बलपूर्वक वश में नहीं लाये जा सकते अथवा बलवान व्यक्ति चाहे वह मूर्ख भी हो तो भी कष्ट पहुँचा कर साध्य नहीं किये जा सकते है ।

---

1. शिशुपालवध, 12/5

2- शिशुपाल वध, 5/49

उपर्युक्त श्लोकों से महाकवि माघ की गज विद्या विषयक जानकारी प्रमाणित होती है ।

अधोलिखित श्लोक महाकवि माघ का अश्व-विद्या-ज्ञान का प्रमाण प्रस्तुत करते हैं -

तेजोनिरोध समतावहितेन यन्त्रा सम्यक् कशात्रयविचारवता नियुक्तः ।
आरट्टजश्चटुलनिष्ठुरपातमुच्चैश्चित्रं चकार पदमर्धपुलायितेन ।।[1]

वेग को रोकने वाली लगाम को थामने में सावधान, तीनों प्रकार की - उत्तम, मध्यम और अधम चाबुकों के प्रयोग जानने वाले घुड़सवारों से भलीभांति हांके गये ऊंचे आरट्ट (अरब) देश में उत्पन्न घोड़े अपने विचित्र पाद-विक्षेप द्वारा कभी चंचल और कभी कठोर भाव के मंडलाकार गति विशेष से चल रहे थे ।

उपर्युक्त श्लोक के कहने से तो स्पष्ट रूप में कवि शालिहोत्री से प्रतीत हो रहे हैं । घोड़े की गति एवं चाबुक के प्रयोगों के यहाँ शास्त्रीय लक्षण भी दिये गये हैं । घोड़े को तीन भांति के चाबुको से चलाया जाता है । कभी तो वह कठोर चाबुकों से चलाया जाता है, कभी साधारण और कभी अति साधारण चाबुकों के संकेतमात्र से ही चलाया जाता है और इन्हीं के अनुसार गति में भी भेद हो जाता है । ये घोड़े कभी अत्यन्त वेग पूर्वक टप-टप करते हुये आगे की ओर दौड़ते, लपकते से चलते हैं तो कभी मध्यगति का अनुसरण करते हैं और कभी अत्यन्त ही मन्द गति से चलते हैं ।

1- शिशुपाल वध, 5/10

माघ ने एक जगह अश्व संचालन का वर्णन करते हुये वल्गा के कुशल प्रयोग की बात कही है -

अव्याकुलं प्रकृतमुत्तरधेयकर्मधाराः प्रसाधयितुम व्यतिकीर्णरूपाः।

सिद्धं मुखे नवसु वीथिषु कश्चिदश्वं वल्गाविभाग कुशलोगमयांबभूव ।।[1]

माघ काव्य में घुड़ दौड़ों के सुन्दर वर्णन मिलते हैं -

गत्यूनमार्गगतयोऽपि गतोरुमार्गाः स्वैरं समाचकृषिरे भुविवेल्लनाय ।

दर्पोदयल्लसितफेनजलानुसारसंलक्ष्य पल्ययनवर्ध्रपदास्तुरंगाः ।।[2]

इसी प्रकार एक स्थल पर अश्वारोहण का एक सुन्दर चित्र प्रस्तुत किया गया है जो बड़ा सजीव सा लगता है -

स्वैरंकृतास्फालन लालितान्युरःस्फुरत्तनून्दार्शित लाघवक्रियाः।

वंकावलग्नैकसवल्गपाणयस्तुरंगमानारुरुहुस्तरंगिणः ।।[3]

उपर्युक्त श्लोकों में कवि ने अश्वों का जो वर्णन किया है वह शास्त्र संगत दृष्टिगत होता है । इसमें अश्वारोहियों के अनुभाव भी उपस्थित हैं । इन वर्णनों को पढ़कर यह अनुमान सहज ही लगाया जा सकता है कि कवि माघ एक कुशल अश्वारोही थे । गजों और अश्वों को ही क्यों लिया जाय- कवि ने अपने काव्य में खच्चरों और ऊटों से लेकर बैल तथा गदहों के स्वभावों तथा उनके

1- शिशुपाल वध, 5/60

2- वही, 5/53

3- वही, 12/6

कार्यों की भी बात लिखी है । कहीं-कहीं पर तो इन पशुओं, ऊंटो[1] और जंगली साड़ों[2] और बैलों[3] की प्रकृति का इतनी बारीकी से स्वाभाविक और सुन्दर वर्णन किया है कि मानों कवि एक चित्रकार के रूप में उनका रेखाचित्र पाठकों के सम्मुख उपस्थित कर रहा हो जिसमें रंग भर कर प्राण प्रतिष्ठा करना भर शेष रह गया हो । कवि ने जो प्रमाण दिये उनके फलस्वरूप उनकी कवि-दृष्टि बड़ी पैनी और विस्तीर्ण हो गयी तभी तो वह दूध दुहते हुये यदुवंशियों,[4] खेतों की रखवाली करती हुयी स्त्रियों,[5] गज, अश्व ऊंट और खच्चर चलाने वाले सैनिकों आदि के चित्रों के साथ यथार्थता का अंकन करने में समर्थ हो सके । इसमें उनकी स्वाभावोक्तियाँ बड़ी मार्मिक अनुभूतियों से सम्पन्न हैं ।

13- व्याकरण शास्त्र विषयक ज्ञान -

माघ कवि व्याकरण के विशेष पण्डित थे । अपने समय में वह महा वैयाकरण कहलाते थे । इसमें कोई सन्देह नहीं-वह इस पद के सर्वथा योग्य थे । शिशुपाल वध का एक-एक श्लोक उनके व्याकरण के पाण्डित्य का साक्षी है । इसीलिये कुछ आलोचकों को यह भ्रम हुआ कि भट्टि काव्य की भाँति शिशुपाल वध भी व्याकरण के नियमों को समझाने के लिये रचा गया है । यह एक सत्य है कि शिशुपाल वध

1- शिशुपाल वध, 5/66, 6/65, 12/7, 12/9

2- वही, 5/63-64

3- वही, 5/62

4- वही, 12/40-41

5- वही, 12/42

व्याकरण सिखाने के लिये नहीं रचा गया । वह तो पूर्णतया एक महाकाव्य है जिसमें व्याकरण की चर्चा एक अप्रस्तुत विधान के रूप में कवि के विभिन्न विचारों को श्लोकों के माध्यम से प्रस्तुत करने हेतु स्वतः काव्य में आ गयी । माघकाव्य में अधोलिखित श्लोक में व्याकरण-निष्ठ प्रयोग हुआ है -

उद्धतान्द्विषतस्तस्य निघ्नतो द्वितयं ययुः ।
पानार्थे रुधिरं धातोे रक्षार्थे भुवनं शराः ।।[1]

गर्वोद्धत शत्रुओं को मारने वाले उन भगवान श्रीकृष्ण के बाण (या धातु) के पान करने के अर्थ में तो शत्रुओं के रक्त का पान कर रहे थे और रक्षा करने के अर्थ में जगत् की रक्षा कर रहे थे ।

उपसर्ग का प्रयोग क्यों किया जाता है -इसका उत्तर महाकवि माघ ने अपने अधोलिखित श्लोक में रखा है -

सन्तमेव चिरमप्रकृतत्वाद प्रकाशितमदिद्युतदंगे ।
विभ्रमं मधुमदः प्रमदानां धातुर्लीनमुपसर्ग इवार्थम् ।।[2]

मदिरा के उत्कट नशे ने स्त्रियों के अंगों में विद्यमान किन्तु चिरकाल तक अप्रयुक्त होने के कारण अप्रकाशित विलास को इस भाँति प्रकट कर दिया जैसे धातु में विद्यमान् अर्थों को उपसर्ग प्रकट कर देता है । उपर्युक्त श्लोक में कहा गया है कि प्रमदाओं के शरीर में प्रच्छन्न रूप से श्रृंगार चेष्टायें पहले ही विद्यमान थीं किन्तु मधुमद (शराब का नशा) का आश्रय प्राप्त करते ही वे श्रृंगार चेष्टायें और भी

1- शिशुपालवध, 19/103

2- वही , 10/15

प्रमदाओं के अंगों में चमकने लगी । जिस प्रकार धातुओं के अर्थ तो पहले से ही वर्तमान रहते हैं, ज्योंही उपसर्गों का सान्निध्य मिलता है, वे प्रकाशित होने लगते हैं । कवि माघ ने इस पद में बड़े कौशल से "उपसर्ग द्योतका एवं न वाचका:" इस व्याकरण नियम को समझाया है ।

अधोलिखित श्लोक में कवि ने यह प्रदर्शित किया है कि वह राजनीति किस काम की जिसमें सब कुछ रहते हुये भी पस्पश (अर्थात् वर्णन करने वाला मर्मज्ञ गुप्तचर) नही है । इसमें शब्द विद्या और राजनीति दोनों का उपमानोपमेय भाव दिखाते हुये कवि ने अपने व्याकरण ज्ञान को दिखाया है । "अपस्पशा" के शब्द श्लेष, "सदवृत्ति", "सन्निबन्धना" के अर्थ श्लेष," अनुत्सूत्रपदन्यास के उभयश्लेष, और "शब्द विद्येव" की पूर्णोपमा छटा तो इसमें देखने की लायक है -

अनुत्सूत्रपदन्यासा सदवृत्ति: सन्निबन्धना ।
शब्दविद्येव नो भाति राजनीतिरपस्पशा ।।[1]

शास्त्रीय सिद्धान्त के विरुद्ध एक चरण भी इसमें नहीं रखा गया है एवं राजकर्मचारियों के लिये अच्छी-अच्छी वृत्तियों तथा (सन्निबन्धना) अच्छे-अच्छे निबन्धनों (पारितोषिक आदि) की भी इसमें व्यवस्था है फिर भी यदि वह राजनीति (अपस्पशा) यथार्थ वर्णन करने वाले मर्मज्ञ गुप्तचरों से शून्य है तो उसकी शोभा उसी प्रकार नही होती जैसे (अनुत्सूत्रपदन्यास) पाणिन्यादि सूत्र के विरुद्ध शब्दविन्यास जिसमें है और (सदवृत्ति) काशिकादि अच्छे-अच्छे ग्रन्थ जिसमें बने है तथा (सन्निबन्धना) पातंजल महाभाष्यादि जैसे निबन्धो वाली है, जिस प्रकार ऐसी सदविद्या

1- शिशुपाल वध, 2/112

(व्याकरण विद्या) अपस्पशा, पस्पश रहित होने पर भी शोभा नहीं पाती है ।
यहाँ पर पस्पशा का अर्थ व्याकरण रहस्य है और महाभाष्य के उस प्रकरण का नाम
है जो प्रारम्भिक है तथा प्रथम दिन में बड़े उत्साह द्वारा महर्षि पतंजलि द्वारा
लिखा गया है । "न्यास" "काशिका" और "महाभाष्य" पाणिनी व्याकरण के
प्राचीन ग्रन्थ हैं ।

निपातितसुहृत्स्वामिपितृव्यभ्रातृमातुलम् ।
पाणिनीयमिवालोकि धीरैस्तत् समराजिरम् ।।[1]

जिस पर मित्र, स्वामी, चाचा, भाई तथा मामा सभी सगे सम्बन्धी मारे गये-ऐसी
उस रणभूमि को वीर और बुद्धिमान लोगों ने पाणिनी के उस अष्टाध्यायी व्याकरण
की भाँति देखा जिसमें सुहृद, स्वामी, पितृव्य, भातृ तथा मातुल ये सब निपात संज्ञा
रूप में माने गये । अधोलिखित श्लोक में परिभाषा का लक्षण काव्योपयोगी रूप
से प्रस्तुत किया गया है ।

परितःप्रमिताक्षरापि सर्वं विषयं व्याप्तवती गता प्रतिष्ठाम् ।
न खलु प्रतिहन्यते कुतश्चित् परिभाषेव गरीयसी यदाज्ञा ।।[2]

जिस भाँति व्याकरण शास्त्र के "इकोगुणवृद्धिः" इत्यादि परिभाषा यद्यपि थोड़े अक्षरों
वाली होती हैं तथापि उसका अर्थ बहुत होता है, उसकी परवर्ती सूत्रों में अनुवृत्ति
चलती है और उसकी सर्वत्र प्रतिष्ठा रहती है, कहीं उसका अवरोध नहीं रहता,

---

1- शिशुपालवध, 19/75

2- वही, 16/80

उसी भाँति हमारे राजा शिशुपाल की आज्ञा यद्यपि स्वल्पाक्षरों वाली होती है तथापि उसका अर्थ बहुत प्रभावकारी रहता है, सब स्थानों मे वह प्रतिष्ठा पाती है और कहीं भी प्रतिहत नहीं होती ।

इसी प्रकार कहीं पर वार्तिकों को समझाया है तो कहीं पर काशिकावृत्ति को लाकर रखा है । ~~इस सन्दर्भ~~ उनके कुछ श्लोक देखने लायक हैं -

नांजसा निगदितुं विभक्तिभिर्व्यक्तिभिश्च निखिलाभिरागमे ।
तत्र कर्मणि विपर्यणीमन् मन्त्रऽमूहकुशला: प्रयोगिण: ।।[1]

संशयाय दधतो: सरूपतां दूरभिन्नफलयो:क्रियां प्रति ।
शब्द शासनविद: समासयोर्विग्रहं व्यवससु: स्वरेणते ।।[2]

व्याकरण शास्त्र का इतना पक्का ज्ञान था कि उन्नीसवें सर्ग में ही कहीं द्व्यक्षर श्लोक लिखे हैं तो कहीं एकाक्षर में ही समाप्त होने वाले, कहीं गूढ़ अर्थ वाले हैं तो कहीं युग्मों और कुलकों का प्रयोग हैं । व्याकरण शास्त्र के ज्ञान के बिना इस प्रकार की रचना नही हो सकती । व्याकरण शास्त्र के परिचय का एक दूसरा दृष्टान्त और है -

त्वक्सारररन्ध्र परिपूरणलब्धगीति-रस्मिन्नसौ मृदितपक्ष्मलरल्लकांग: ।
कस्तूरिकामृगविमर्द सुगन्धिरेति रागीव सक्तिमधिकां विषयेषु वायु: ।।[3]

1- शिशुपाल वध, 14/23

2- वही, 14/24

3- वही, 4/61

उपर्युक्त श्लोक में "कस्तूरिकाविमर्द सुगन्धि" पंक्ति विचारणीय है । वार्तिक" गन्धस्येत्वे तदेकान्तग्रहणम्" के अनुसार "इ" न होकर सुगन्धः होना चाहिये । वैयाकरणों की "गन्धस्येत्वे" में भिन्न-भिन्न सम्मतियाँ हैं । कविगण निरंकुश होते हैं । वे अपनी इच्छानुसार जब जैसा चाहें शब्द भी बना सकते हैं । पर यहाँ माघ कवि ने ऐसा नहीं किया है ।

अधोलिखित श्लोक भी इस दृष्टि से विचारणीय है -

केवलं दधति कर्तृवाचिनः प्रत्ययानिह न जातु कर्मणि ।

धातवः सृजति संहृशास्तयः स्तौतिरत्र विपरीतकारकः ।।[1]

सृजन करना, संहार करना तथा शासन करना अर्थात् पालन करना- ये तीनों क्रियायें इन भगवान श्रीकृष्ण के सम्बन्ध में केवल कर्तृवाच्य में ही प्रयुक्त होती हैं, कर्म वाच्य में नहीं, किन्तु इनके विषय में स्तुति करना-यह क्रिया सदैव कर्मवाच्य में ही प्रयुक्त होती है । उपर्युक्त का अभिप्राय यह है कि भगवान श्रीकृष्ण के साथ सदा सृजति, संहरति, शास्ति ये क्रियायें ही लगती हैं जिसका अर्थ यह होता है कि यही एक मात्र स्वयं सृजन करते हैं, संहार करते हैं तथा पालन करते हैं । दूसरे शब्दों में यही ब्रह्मा, शिव तथा विष्णु स्वरूप है । किन्तु स्तुति करना यह क्रिया कर्मवाच्य में अर्थात् इसके साथ "स्तूयते" ही क्रियापद उचित होता है जिसका अर्थ है कि सभी के द्वारा इनकी स्तुति की जाती है और यह किसी की स्तुति नहीं करते ।

1- शिशुपाल वध, 14/66

इस प्रकार का दूसरा श्लोक और है -

दर्शनानुपदमेव कामत: स्वं वनीयकजनोऽधिगच्छति ।

प्रार्थनार्थरहितं तदाऽभवद्दीयतामिति वचोऽतिसर्जने ।।[1]

§याचकगण राजा युधिष्ठिर का दर्शन करने के पश्चात् बिना मांगे ही§ जब यथेच्छ धन प्राप्त कर लेते थे तब "दीयताम्" अर्थात्मुझे दीजिये यह शब्द याचना के अर्थ में ही नही रह जाता था प्रत्युत वह त्याग के अर्थ में §अर्थात् इससे अधिक धन का क्या होगा, दूसरों को दे दीजिये याचकों में भी ऐसा विचार§ हो जाता था। यहाँ "दा" धातु का याचना परक अर्थ और त्याग परक अर्थ-इन दोनों अर्थ का निर्वाह किया गया है ।

व्याकरण ज्ञान से शुद्ध उच्चारण आ जाता है, मन्त्रों में शुद्ध उच्चारण अति आवश्यक है । आचार्य पाणिनी ने भी इसी बात पर जोर दिया है । इसी लिये महाकवि माघ इस व्याकरण सम्बन्धी बात को समक्ष रखते हुये कहते हैं -

शाब्दितामनपशब्दमुच्चकैर्वाक्यलक्षणविदोऽनुवाक्यया ।

याज्यया यजनकर्मिणोऽत्यजन् द्रव्यजातमपदिश्य देवताम् ।।[2]

इस तरह माघ काव्य मे स्थान-स्थान पर व्याकरणनिष्ठ प्रयोगों के उदाहरण प्रचुर मात्रा में मिलते हैं-यहाँ पर कुछ और उदाहरण देखने लायक हैं-

पर्यपूपुजत §1/14§, अभिन्यवीविशत् §1/15§, अचूचुरत् §1/16§, पारेजलं §3/70§, मध्ये समुद्रं §3/33§, पारे मध्ये षष्ठ्या वा सस्मार वारण पति: परिमीलिताक्षमिच्छाविहारवनवास महोत्सवानाम् §5/50§ अधीगर्थ दयेषां कर्मणि ।।

1- शिशुपालवध, 14/48

2- वही, 14/20

उपर्युक्त विवेचन से हमको माघ के महावैयाकरण होने के विषय में कोई सन्देह नहीं रहता । उनके नवीनतम प्रयोगों तथा सिद्धान्तों के उल्लेखों को देखकर सहज ही अनुमान होता है कि व्याकरण उनके लिये एक सरल एवं प्रिय विषय रहा होगा । व्याकरण की परिभाषाये अतिनीरस हुआ करती है किन्तु उन्होंने उन परिभाषाओं का अपनी मनोहर उपमाओं में सुन्दर प्रयोग किया है और उनका संयोग भी अति मनोहर बन पड़ा है । व्याकरण के सूक्ष्म से सूक्ष्म नियमों का उन्होंने कहीं उल्लंघन नहीं किया । कदाचित एक आध स्थल ही ऐसा करना पड़ा हो परन्तु यह तो स्पष्ट ही है कि व्याकरण चर्चा अप्रस्तुत विधान के रूप में आयी है । अलंकार रूप में उसके रहने से काव्य की शोभा बढ़ी ही है - घटी नहीं ।

14- महाकवि माघ का आचार्यत्व -

महाकवि माघ पण्डित थे । उनका पाण्डित्य अगाध था । वह आज भी कवि के रूप में इतने प्रख्यात नहीं हैं जितने पण्डित के रूप में । राजस्थान में "माघ जी," "पण्डित जी" का प्रयोग, "कवि माघ" अथवा "माघ कवि" के प्रयोग से अधिक व्यापक है । "काव्येषु माघः कवि कालिदासः "यह उक्ति साहित्यज्ञों में प्रसिद्ध है । शास्त्र युक्त बातों से कविता बद्ध किया हुआ कथानक काव्य कहलाता है । काव्य में एक ओर लेखक कविपद्धति को सुव्यवस्थित रूप में रखता है तो दूसरी ओर उसे पुराण, श्रुति, वेद, वेदांग, व्याकरण, ज्योतिष आदि के ज्ञान से उसे परिपुष्ट करता है । इस उक्ति के अनुसार जितने भी काव्य ग्रन्थ लिखे गये हैं। उन सब में प्रौढ़ पाण्डित्य का प्रदर्शन केवल माघ काव्य में है ।

माघ एक उच्चकोटि के कवि तो थे ही किन्तु कवित्व से कहीं अधिक ऊंचा था-उनका पाण्डित्य । कवि तो इनसे उच्चकोटि के और भी मिलते हैं पर विद्वता में श्री हर्ष को छोड़कर और कोई इनकी बराबरी करने वाला नहीं है । भोजप्रबन्ध और प्रबन्ध चिन्तामणि से कालिदास को कवि और महाकवि की पदवियाँ दी गयी हैं पर माघ के लिये कहीं भी कवि शब्द का प्रयोग न करके पाण्डित्य शब्द का प्रयोग किया गया है । इससे तो यही विदित होता है कि उक्त ग्रन्थ-कारों की दृष्टि में माघ की विद्वता उनकी कवित्व शक्ति की अपेक्षा कहीं बढ़ी-चढ़ी थी ।

माघ न केवल कवि हैं वरन् आचार्य भी है । रस के विषय में माघ से पूर्व के विद्वानों ने भी बहुत कुछ लिखा है किन्तु काव्य लक्षण में रस सिद्धान्त का समावेश प्राय: इनके बाद हुआ । अधोलिखित श्लोक से यह बात और स्पष्ट हो जाती है -

स्थायिनोऽर्थे प्रवर्तन्ते भावा:संचारिणो यथा ।
रसस्यैकस्य भूयांसस्तथा नेतुर्महीभृत: ।।[1]

इस श्लोक में "सरसौ" यह विशेषण निकलता है ।" शब्दार्थौ सत्कविरिव द्वयं विद्वान पेक्षते" इससे शब्दार्थौ यह "विशेष्य" निकलता है । नैकमोज: प्रसादो वा कालज्ञस्य महीपते: "इस श्लोक से अभ्यन्तर से "सगुणौ" इस विशेषण को निकाला जा सकता है । अधोलिखित श्लोक के द्वारा कवि ने प्रकारान्तर से काव्य लक्षण में"अदोषौ"

1- शिशुपालवध, 2/87

विशेषण की सूचना दी है -

"स्वेद माम ज्वरं प्राज्ञ:कोऽम्भसा परिषिंचति"

"असाध्य:कुरुते कोपं प्राप्ते काले गदो यथा"

"समोहि शिष्टैराम्नातौ वर्त्स्यन्तावामय:स च"

"यद्वासुदेवेनादीनमनादीनवर्मीरितम् ।

वचसस्तस्य सपदि क्रिया केवलमुत्तरम्"।।[1]

इस भांति माघ के मत से काव्य का लक्षण "अदोषौ सगुणो सालंकारौ सरसौ शब्दार्थौ काव्यम्" बन जाता है । इसके अनुसार माघ ने अपने काव्य की रचना भी की । सर्वप्रथम मंगलाचरण में भगवद् विषयक रत्याख्य भाव ध्वनि स्पष्ट रूप में सन्निविष्ट है, फिर आगे चलकर नारद विषयक रत्याख्य भाव ध्वनि है । फिर आगे प्रथम सर्ग के श्लोक संख्या 48,49 में वीर रस, 50 में वीर, भयानक, श्रृंगार, 52 में भयानक 53 में वीर और भयानक रस हैं । इस भांति माघ में भाव,ध्वनि व रसध्वनि, रसवदादि अलंकार, गुणीभूत व्यंग्य इन सबका पर्याप्त सन्निवेश है । माघ का जो स्वयं का काव्य लक्षण है उसका अपने महाकाव्य में उन्होंने उचित रीति से निर्वाह किया है । यह हो सकता है कि माघ के समय में काव्य लक्षण की चर्चा में दोष, गुण, अलंकार, रस, शब्द और अर्थ आदि की चर्चा होने लगी हो, पर वह निश्चित ही आनन्दवर्धन आदि के पूर्ववर्ती है, अत: इस दिशा में उनके पथ प्रदर्शक भी हैं । इसके अतिरिक्त प्राचीन वामनादि में जो शब्द गम्य और अर्थगम्य 20 गुण माने हैं -वे हमारे आचार्य माघको अभीष्ट नहीं हैं । माघ केवल तीन ही गुणों को स्वीकार

1- शिशुपालवध, 2/22

करते हैं । इसीलिये दो गुणों का तो उन्होंने स्पष्ट रूप से उल्लेख किया है "नैकमोज: प्रसादो वा रसभाव विद: कवे:"। तीसरा माधुर्य गुण प्रकारान्तर से कवि ने सुचारु रूप से स्वीकृत किया है -

"यावदर्थपदां वाचमेवमादाय माधव:" ।

इसी भांति "सालंकारो" यह भी काव्य लक्षण में माघ को उपादेय है । अत: काव्य शरीर की सुचारुता के लिये यत्र तत्र शब्दालंकार, अर्थालंकार तथा उपमालंकारों का प्रयोग उन्होंने किया है ।

इन्होंने काव्य के तीनों भेद माने हैं - उत्तम, मध्यम और अधम और एक ही महाकाव्य में तीनों प्रकार के काव्य की रचना उन्होंने की है ।

जहाँ-जहाँ रस, ध्वनि अथवा भावध्वनि है वहाँ उत्तम काव्य है । जहाँ भाषा प्रधानता अथवा अलंकार प्रधानता है वहाँ मध्यम काव्य है और जहाँ यमकादिकों तथा बंधों का आग्रह है -वहाँ अधम या चित्र काव्य है ।

मम्मटाचार्य ने भी काव्य के यही तीन भेद किये हैं । प्रौढ़ पाण्डित्य से महाकवि माघ का आचार्यत्व और भी प्रबल हुआ है । बहुज्ञता के प्रकरण में हमें उनके पाडित्य का और भी परिचय मिलता है । संगीत, आयुर्वेद, ज्योतिष, व्याकरण आदि सभी विषयों में से सारभूत तत्वों को काव्योपयोगी ढंग से प्रस्तुत करना यह उनका कार्य है । यह कार्य एक आचार्य का भी हो सकता है । इस तरह साहित्य शास्त्र के क्षेत्र में उनका नाम पूर्ववर्ती आचार्यों के साथ लिया जा सकता है ।

माघ के सम्बन्ध में इसी निष्कर्ष पर पहुंचना ठीक है कि वह न केवल एक सरस कवि थे किन्तु अनेक शास्त्रों के सर्व मान्य विद्वान भी थे । ऐसी विद्वता दूसरे संस्कृत कवियों में बहुत कम देखने को मिलेगी । भारवि में राजनीतिक दक्षता और श्रीहर्ष में दार्शनिक पटुता अवश्य है किन्तु माघ अनेक शास्त्रों में पारंगत होने से इनसे कहीं आगे बढ़ जाते हैं । क्या हिन्दूदर्शन, क्या बौद्धदर्शन, क्या नाट्य-शास्त्र, अलंकारशास्त्र, व्याकरणशास्त्र, संगीत, काव्य आयुर्वेद, अश्वविद्या, गजविद्या, सामाजिक विज्ञान, मनोविज्ञान अथवा क्या पुराण, ज्योतिष, स्मृति, वेद, वेदांग आदि ~~शास्त्र~~ इन सबका उन्हें उत्कृष्ट ज्ञान प्राप्त था । माघ ने अपने सम्पूर्ण ज्ञान को कविता देवी के चरणों में अर्पित कर दिया था । इस समर्पण का जो परिणाम निकला वह एक महाकाव्य के रूप में सहृदय समाज के समक्ष प्रस्तुत हो गया ।

उन्होंने पाण्डित्य को कवित्व का अंग बनाया, कवित्व को पाण्डित्य का नहीं । इससे यह कहना अधिक युक्तिसंगत होगा कि कवित्व की प्राप्ति के लिये उन्होंने एक बड़ी साधना की । वह कवि प्रथम थे और आचार्य बाद में ।

॥ अष्टम अध्याय ॥

उपसंहार

अर्बुदाचल के अतिनिकट सिरोही राज्य है । उसी के समीप भीनमाल एक तहसील है । किसी समय यह एक विशालकाय नगर था । यहाँ पर बहुत सी पाठशालायें, विद्याशालायें, भवन एवं मन्दिर थे । प्रशस्त राजमार्ग थे । इस नगर की प्रसिद्धि दूर-दूर तक थी । भारतवर्ष में जब सिंध के मार्ग से अरब लोग आये और इस देश को जीत कर जब वे यहाँ अपना प्रभुत्व जमाने लगे तब यहीं के चावड़ों ने उनसे लोहा लिया । बार-बार के आक्रमण से चापवंश क्षीण हो गया था । हारे हुये चाप लोग पाटण की ओर चल पड़े । अरबों का एक बार और आक्रमण हुआ जिसे डट कर रोकने वाला चापों के पश्चात् भीनमाल का नागभट्ट प्रतिहार ही था जिसने चापों के पश्चात् भीनमाल को अपनी राजधानी बनायी । भीनमाल पर प्रतिहार वंश का प्रभुत्व स्थापित हो चुका था । युद्ध की विभीषिका अब न रही । प्रतिहार भोज के जन्म तक बाहरी युद्धों का उत्पात प्राय: समाप्त हो चुका था । पारस्परिक युद्ध अवश्य होते थे । इन्हीं छोटे-मोटे युद्धों से प्राचीन वंश लुप्त होते जा रहे थे । प्रतिहार वंश इन वंशों में सबसे प्रबल था । इसकी शक्ति का परिचय एक बार नहीं अनेकों बार युद्धों में मिल चुका था आठवीं शताब्दी का काल उत्तरी भारत में एक प्रकार से राजनैतिक क्रान्ति का काल था । युद्धों से इस समय जातियाँ बनती और बिगड़ती जाती थीं । इसी समय में महाकवि माघ का जन्म इसी इतिहास-प्रसिद्ध प्राचीन नगरी भीनमाल में राजा वर्मलात के सुकृत कार्यों के मन्त्री सुप्रसिद्ध शाकद्वीपीय ब्राह्मण सुप्रभदेव के

सुयोग्य पुत्र कुमुद पंडित {दत्तक} की धर्मपत्नी ब्राह्मी के गर्भ से माघा नक्षत्र की पूर्णिमा को हुआ था । इनके जन्म समय की कुंडली को देखकर ज्योतिषियों ने भविष्यवाणी की कि यह बालक महान विद्वान, परम विनीत, दयालु, दानी और वैभवशाली होगा किन्तु जीवन की अन्तिम अवस्था को प्राप्त करते ही निर्धन होकर दरिद्रावस्था में व्याकुल होकर शेष जीवन को अत्यन्त दुःख मय रूप में व्यतीत करते हुये मनुष्योचित आयु को पूर्ण करके पैरों पर सूजन आते ही इस असार संसार को सदा के लिये त्याग देगा । ज्योतिषी के वाक्यों पर विश्वास करके उनके पिता दत्तक ने जो एक श्रेष्ठी {धनी} थे, यह समझ कर कि मनुष्य की आयु 100 वर्ष की होती है और एक वर्ष में 360 दिन होते हैं, छत्तीस हजार गड्ढों में एक रत्न परिपूरित घड़ा रख कर उसे बंद करवा दिया तथा इसके पश्चात् जो कुछ भी बचा वह माघ को दे दिया । माघ शनैः-शनैः बड़े लाड़ प्यार से पोषित होकर जब बाल्यकाल में प्रविष्ट हुये तब इनका उपनयन संस्कार किया गया और इनके पढ़ने की व्यवस्था सुचारु रूप से कर दी गयी । बालक माघ परम कुशाग्रबुद्धि के थे । व्याकरण के सूत्रों को कण्ठस्थ कर लेते थे तथा अमरकोष के अतिरिक्त संस्कृत के अन्य कोषों को भी मुखाग्र करते जाते थे । कुछ ही दिनों में इनकी प्रतिभा चमक उठी । इन्होंने अन्यान्य ग्रन्थों का भी अध्ययन किया तथा उसमें महारत हासिल की जो उनके विविध क्षेत्रों के ज्ञान के रूप में उनके द्वारा विरचित शिशुपालवध में स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है । विद्या समाप्त कर जब ये गृहस्थाश्रम में प्रविष्ट हुये उस समय तक इन्होंने समस्त पौराणिक ग्रन्थ-जैसे वेद, पुराण, उपनिषद आदि का ज्ञान प्राप्त कर लिया था । इनका बाल्यकाल और विद्यार्थी जीवन उत्तमता से

बीता किन्तु युवावस्था में चरण रखते ही ये संसार की ऐसी भूलभुलैया में पड़े कि उससे निकलना इनके लिये कठिनता हो गया था । बाप-दादों का धन, युवावस्था तथा राज्य में प्रभुत्व की प्राप्ति इन सब बातों ने युवक माघ को व्यवहार पटु तथा सामाजिक बनाया । एक नागरिक का यह विलासी जीवन भी बिताने लगे । जीवन के आनन्द का उपभोग करते हुये भी ये अपने समय को व्यर्थ नष्ट नहीं करते थे । उनकी दिनचर्या प्राय: नियमित थी । प्रात:काल ब्राह्म मूहूर्त में उठते, उसी समय चाहते तो कविता की रचना करते थे । स्नान, संध्या से निवृत्त होकर नित्य-कर्म के पश्चात् राज दरबार जाते थे । राज परिवार को आशींवाद देकर अपना राज सम्बन्धी कार्य करके वहाँ से लगभग 10 या 11 बजे घर लौट आते । घर पर कुछ विद्यार्थियों को पढ़ाते । मध्याह्न की संध्या करके भोजनोपरान्त थोड़ा विश्राम करते अथवा काव्य, शास्त्र, पुराण आदि ग्रन्थों का अवलोकन करते । लगभग 5 बजे तक या 6 बजे तक इस भांति पढ़ना -पढ़ाना चलता रहता फिर कविगोष्ठी में मित्रों के साथ मनोविनोद करते । संध्याकाल में संध्योपासनोपरान्त भोजन से निवृत्त होकर अपने विश्राम भवन में चले जाते जहाँ पर कभी-कभी रात्रिभर मनोरंजन कार्यक्रम चलता रहता । ऐसी अवस्था में ये प्रात:काल सूर्योदय होने तक सोये रहते । उनका जीवन अपने ढंग का निराला था । वे लोक मर्यादा अथवा लोक मत का पर्याप्त आदर नहीं करते थे । राग रंग में अधिक रहने के कारण, किसी शास्त्रार्थ में पराजित होने के कारण अथवा किसी अन्य कारण से राजा के व परिवार वालों के कोप भाजन के फलस्वरूप इन्हें अपने देश को छोड़ना पड़ा था । इस काल

में उन्होंने श्रृंगारिकता से पूर्ण कवितायें की हैं । ऋतु वर्णन, वन विहार, जल विहार वर्णन आदि के कई प्रसंग इसी समय के लिखे हैं । दानी तो ये थे ही इसलिये उनका बहुत साधन दान आदि में समाप्त हो गया । बहुत थोड़ा सा धन लेकर यह देशाटन को निकले । स्थान-स्थान पर अपनी विद्वता तथा कवित्व से लोगों को प्रभावित एवं चमत्कृत करते हुये जब ये घर लौट कर आये तब वृद्ध हो चुके थे । शिशुपालवध का कुछ भाग तो इन्होंने परदेश में ही रचा तथा शेष भाग अपनी वृद्धावस्था में घर पर बैठे हुए लिखा । इस समय यह अति दरिद्रावस्था में थे । भोज प्रबन्ध में इनकी पत्नी प्रलाप करती हुयी कहती है कि जिसके द्वार पर एक दिन राजा आश्रय के लिये आकर ठहरा करते थे आज वहीं व्यक्ति दाने-दाने के लिये तरस रहा है । माघ इस प्रकार दरिद्रावस्था में ज्योतिष सिद्धान्त वाली 120 वर्ष की एक लम्बी पूर्णायु प्राप्त करके इस संसार को त्याग करके सन् 880 ई॰के आस पास परलोकवासी हो गये । मरते समय भी याचकों को दान न दे सकने की स्थिति उनके लिये बड़ी दुःखद एवं कष्टप्रद रही । माघ की अंतिम अवस्था में उनका क्रिया कर्म तक करने वाला परिवार का कोई भी व्यक्ति न रहा । उनके दाह संस्कार की सम्पूर्ण क्रिया प्रतिहार भोज ने स्वयं करायी । माघ का लिखा हुआ केवल एक शिशुपालवध महाकाव्य आज भी विद्वानों को आश्चर्य में डाल देता है । मंत्री सुप्रभदेव का वंश सदा के लिये समाप्त हो चुका था क्योंकि दत्तक पुत्र महाकवि माघ पुत्रहीन थे । एक पुत्री अवश्य थी । वह भी विधवा होने पर पति के साथ जलकर सती हो गयी । दत्तक के कनिष्ठ भ्राता शुभंकर श्रेष्ठी के एक मात्र पुत्र सिद्ध थे । वे अपने जीवन के प्रथम काल में जुआ खेलने तथा वेश्या गमन आदि

प्रवृत्तियों में फंस गये थे फिर माता की भर्त्सना से वे जैन साधु बन गये और सिद्धर्षि के नाम से प्रसिद्ध हुये। उन्होंने उपमितिभव प्रपंच कथा लिखी। शोध-प्रबन्ध के प्रथम अध्याय में सविस्तार उपर्युक्त तथ्यों को प्रमाणों के साथ प्रस्तुत किया गया है।

शोध प्रबन्ध के द्वितीय अध्याय में शिशुपाल वध कथा की कथा वस्तु का वर्णन है। मूलतः यह कथावस्तु महाभारत के सभापर्व से ली गयी है किन्तु इसका वर्णन श्रीमदभागवत् के दशम स्कन्ध में, अग्निपुराण, विष्णु पुराण में, पदमपुराण में एवं ब्रह्मवैवर्त पुराण में भी प्राप्त होता है। सर्गानुसार कथावस्तु का सार प्रस्तुत है। प्रथम सर्ग का आरंभ देवर्षि नारद के आगमन से होता है जो आकाश मार्ग से नये बादलों के नीचे-नीचे उतरते आ रहे हैं। उनकी पीली जटायें हिमालय पर्वत पर उगी पकी हुयी पीली लताओं सी नजर आ रही हैं। शरीर पर पड़ा हुआ मृगचर्म ऐरावत पर पड़ी रंगबिरंगी झूल सा नजर दिखाई पड़ रहा है। वे अपनी अगुंली से वीणा को बजाते आ रहे हैं और वीणा की ध्वनि में स्वर, ग्राम तथा मूर्च्छना स्पष्ट सुनायी दे रही है। वीणा को निरन्तर बजाने से उनकी अंगुलियों और नाखून की रक्त कान्ति से हाथ की स्फटिक माला भी लाल हो गयी है। धीरे-धीरे नारद अस्त होते सूर्य की तरह कृष्ण के सम्मुख बढते हैं और उनके पृथ्वी पर उतरने के पहले ही कृष्ण आदर के लिये उठ खड़े होते हैं। सत्कार के बाद कृष्ण उनसे आने का कारण पूछते हैं। नारद बताते हैं कि शिशुपाल के अत्याचार से डरे इन्द्र ने उन्हें भेजा है। कृष्ण उसका वध करें और इन्द्र के हृदय को

भय रहित बनाकर उसे आमोद-प्रमोद से उल्लासित बनायें । नारद चले जाते हैं । द्वितीय सर्ग में कृष्ण, बलराम और उद्धव मंत्रणा गृह के तीन सिंहासन पर बैठे उसी तरह प्रविष्ट होते हैं जैसे त्रिकूट पर्वत की तीनों चोटियों पर तीन शेर बैठे हों । कृष्ण अपनी समस्या उपस्थित करते हैं । शिशुपाल का वध करना आवश्यक है, किन्तु इसी समय युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ का निमन्त्रण भी मिला है । इन दोनों कार्यों में से पहले किस कार्य को करना चाहिये।राजसूय यज्ञ में सम्मिलित न होने पर पाण्डव बुरा मानेंगे । बलराम की राय है कि शिशुपाल की राजधानी चेदि पर आक्रमण कर दिया जाये, युधिष्ठिर यज्ञ करें, इन्द्र स्वर्ग का राज करें, सूर्य तपें और हम भी शत्रुओं को मारें । प्रत्येक व्यक्ति अपने स्वार्थ को सिद्ध करना चाहता है । उद्धव इस मत के विरुद्ध हैं । वे बलराम की हर दलील का जवाब देते हैं और यह राय देते हैं कि इस समय शिशुपाल पर आक्रमण करना ठीक न होगा । अच्छा हो, हम जासूसों को नियुक्त कर शत्रु की शक्ति का पता लगाते रहें तथा उसके पक्ष का भेदन करें । अंत में यही निश्चय होता है कि युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ में सम्मिलित होना ठीक होगा । तीसरे सर्ग में कृष्ण की सेना इन्द्रप्रस्थ के लिये रवाना होती है । चतुर्थ सर्ग में वह रैवतक पर्वत पर पहुँचती है । इसमें पर्वत के अलंकृत वर्णन का दृश्य प्रस्तुत किया गया है । पंचम सर्ग में सेना के रैवतक पर्वत पर पड़ाव डालने का वर्णन है । षष्ठम् सर्ग में कृष्ण की सेवा के लिये छहों ऋतुयें रैवतक पर्वत पर अवतीर्ण होती हैं-यमक अलंकारों के साथ उनके आगमन का सुन्दर उल्लेख किया गया है । सप्तम सर्ग में यदु दम्पतियों का विलास पूर्ण वन विहार वर्णित है, अष्टम् सर्ग में जल क्रीड़ा । नवम् सर्ग का आरम्भ सूर्यास्त से होता है ।

सूर्यास्त के बाद दम्पतियों और प्रणयी-नायक-नायिकाओं को मिलाने के लिये दूती कर्म का वर्णन है तो कहीं उनके केलि नाटक के पूर्व रंग के रूप में आहार्य-प्रसाधन की शोभा का वर्णन । दशम सर्ग में सुरा तथा सुन्दरी के सेवन का अत्यन्त विलासपूर्ण वर्णन है । एकादश सर्ग में माघ ने प्रातःकाल का वर्णन किया है । इस सर्ग में एक साथ कवि की प्रौढ़ोक्ति-कुशलता तथा स्वभावोक्ति की चित्रमत्ता का अपूर्व समन्वय द्रष्टव्य है। एकादश सर्ग माघ के बेजोड़ सर्गों में से है जिसके समान वर्णन संस्कृत साहित्य के अन्य काव्यों में ठीक इसी पैमाने पर मिलना दुर्लभ है । बारहवें सर्ग में जहाँ पांचवें सर्ग सा (कुछ अधिक विस्तृत) सेना प्रयाण का वर्णन है । इसी सर्ग में यमुना को पार करने का बड़ा सुन्दर चित्रण है । तेरहवें सर्ग में कृष्ण को देखने के लिये उत्सुक इन्द्रप्रस्थ की पुरनारियों का सरस वर्णन है । चौदहवें सर्ग में यज्ञ का वर्णन है जिसके पूर्वार्ध में कवि ने अपने दर्शन, मीमांसा और कर्मकाण्ड सम्बन्धी ज्ञान का पूरा परिचय दिया है । पन्द्रहवें सर्ग में कृष्ण की पूजा से रुष्ट होकर शिशुपाल कृष्ण, भीम, युधिष्ठिर को खरी-खोटी सुनाता है । सोलहवें सर्ग में शिशुपाल का दूत आकर कृष्ण को द्व्यर्थ (श्लिष्ट) संदेश सुनाता है जिसका आशय यह है कि या तो कृष्ण शिशुपाल की अधीनता मान लें या लड़ने के लिये तैयार हो जायं । दूत की उक्ति का उत्तर सात्यकि देता है । सत्रहवें एवं अठारहवें सर्ग में सेना की तैयारी का एवं योद्धाओं के सन्नद्ध होने का वर्णन है । उन्नीसवें सर्ग में चित्र काव्य के आश्रय के साथ युद्ध का वर्णन है । बीसवें सर्ग में उपसंहार रूप में युद्ध का वर्णनकर शिशुपाल के जीवन के साथ काव्य समाप्त होता है । इसी अध्याय में शिशुपाल वध से सम्बद्ध कथा की मूल कथावस्तु में जो परिवर्तन माघ

द्वारा कथा वस्तु के अलंकरण में किये गये हैं - उनका भी उल्लेख किया गया है ।

शोध प्रबन्ध के तृतीय अध्याय में शिशुपाल वध काव्य का वस्तु वर्णन प्रस्तुत किया गया है । इस महाकाव्य में वस्तु वर्णन के विस्तार से ही शिशुपाल के वध की स्वल्पकथा को दीर्घ बना दिया गया है । वस्तु वर्णन में कवि ने ऋषि वर्णन, मन्त्रणा वर्णन, इन्द्रप्रस्थ प्रस्थान वर्णन, द्वारिकापुरी वर्णन, समुद्र वर्णन, रैवतक पर्वत वर्णन, ऋतु वर्णन, वन विहार वर्णन, जलक्रीड़ा वर्णन, सन्ध्या वर्णन, पान-गोष्ठी वर्णन, प्रभात वर्णन, यमुना वर्णन, सभा वर्णन, राजसूय यज्ञ वर्णन, दूत सम्प्रेषण वर्णन इत्यादि विषय को चुनकर काव्य को सुन्दर और रोचक रूप में पाठकों के समक्ष प्रस्तुत किया है । उनके रैवतक पर्वत के वर्णन में उद्भासित एक नवीन कल्पना शक्ति ने उन्हें साहित्य जगत में घण्टा माघ नाम से अलंकृत कर प्रसिद्ध कर दिया । काव्य का युद्ध वर्णन तो काव्य को नवीन विशिष्टताओं से युक्त कर काव्य को चरित्र काव्य की श्रेणी मे ही ले आ दिया ।

चतुर्थ अध्याय में काव्य में प्रयुक्त अलंकारों का उल्लेख किया गया है । महाकवि माघ की अलंकार शास्त्र में प्रवीणता की प्रशंसा करना ही व्यर्थ है । वह तो महाकवि का अपना प्रदेश है । माघ ने राजनीति के गूढ़ तत्वों को समझाने के लिये सम्यक रूप से हृदयांगम कराने के लिये अलंकार शास्त्र के नियमों का सहारा लिया है तथा एक सफल आलंकारिक के रूप में शब्द और अर्थ दोनों को ही काव्य माना है । उनका प्रत्येक वर्णन, प्रत्येक भाव साधारण शब्दों में न होकर अलंकारों से विभूषित भाषा में प्रकट किया गया है । उनके समासों की बहुलता, विकट वर्णों

की उदारता, गाढ़ बन्धों की मनोहारता हमारे मानसपटल पर आकर नाचने लगती है । इस ओजोमयी कवित्व का महाकाव्य में सर्वोत्कृष्ट विकास है । चित्रालंकारों का प्रयोग तो बहुत ही सुन्दर ढंग से प्रस्तुत किया गया है तथा कहीं पर काव्य में इसके कारण क्लिष्टता पराकाष्ठा को पहुंच गयी है । समग्र उन्नीसवें सर्ग में इन्हीं चित्रालंकारों के द्वारा युद्ध का विचित्र वर्णन किया गया है । अर्थालंकारों में श्लेष का प्रयोग उत्तम रीति से किया गया है । स्थान-स्थान पर स्वभावोक्ति, अतिशयोक्ति, उत्प्रेक्षा की कमी नहीं है । काव्य का छठा सर्ग यमक अलंकार से पूर्ण है । यमक की छटा से इस सर्ग के सम्पूर्ण पद खिल उठे हैं । कहीं-कहीं पर इसे अनुप्रास से युक्त कर दिया गया है तथा कहीं-कहीं पर विरोधालंकार से । इस अलंकार के प्रयोग में कवि सिद्धहस्त थे । इसीलिये वह इसका प्रयोग बड़ी सफलता और सरलता के साथ काव्य में कर सके हैं । श्लेष और अनुप्रास का भी प्रयोग महाकाव्य में अधिक मात्रा में किया गया है । उपमा और रूपक को भी एक साथ प्रदर्शित कर महाकवि ने अपनी निरोष्ठ्य रचना को प्रस्तुत किया है जिसमें कोई भी ऐसा शब्द नहीं है जो ओष्ठ से उत्पन्न न होता हो । इसमें भी यमक की छटा देखने ही लायक है । यदि इसी श्लोक को उल्टा जाय और पढ़ा जाय तो महाकवि का अग्रिम श्लोक का पूरा भाग प्राप्त हो जाता है । यह श्लोक प्रतिलोम यमक अलंकार युक्त है । इसी तरह कहीं पर अतालव्य अक्षरों वाला श्लोक है तो कहीं पर असंयुक्त अक्षरों वाला श्लोक अपनी छटा दिखला रहा है । इस भांति कहीं पर कवि अपनी प्रतिभा को गत्यात्मक सौन्दर्य के अंकन की कुशलता में प्रयुक्त करते हैं तो

कहीं सचित्र विशेषणों के चयन अथवा चित्रण में प्रयुक्त करते हैं । अतः यदि यह कहा जाय कि माघ कवि एक सफल अलंकारिक थे तो इस कथन में कोई अत्युक्ति नहीं होगी ।

शोध प्रबन्ध के पंचम अध्याय में शिशुपालवध महाकाव्य में भिन्न-भिन्न स्थानों पर प्रदर्शित गुण, रीति एवं वृत्ति का वर्णन किया गया है । महाकाव्य में वैसे तो प्रायः सभी गुण स्पष्ट रूप से परिलक्षित होते हैं परन्तु ओजो गुण एवं गौड़ी रीति युक्त श्लोक अधिक मात्रा में प्राप्त होते हैं ।

षष्ठ अध्याय में महाकाव्य में प्रदर्शित रस व्यंजना का उल्लेख किया गया है । शिशुपाल वध महाकाव्य का अंगी रसवीर है और श्रृंगार रस इस का अंग, परन्तु इस गौणरस ने अंगीरस को अपने विस्तार से आक्रान्त सा कर दिया है । इनके साथ ही अन्य रसों की सुन्दर अभिव्यक्ति हुयी है । युद्ध वर्णन में भयंकर, वीभत्स, रौद्र और अद्भुत रस की छटा तो देखने ही लायक है । वीर रस की सफल अभिव्यंजना तो इसमें उपर्युक्त रसों के साथ ही साथ तो हुई है परन्तु यह अभिव्यंजना महाकाव्य को चरित्र काव्य का दर्जा नहीं दिला पायी-अन्य चरित्र काव्य जैसे विक्रमांकदेव चरित, नव साहसांक चरित जैसा मिलता जुलता काव्य-महाकाव्य को अवश्य बनाने में अपनी अहम् भूमिका पूरा की । महाकाव्य-शिशुपालवध का सातँवा सर्ग यदु दम्पतियों के विलासपूर्ण जीवन का एक उल्लेख है । इस सर्ग में श्रृंगार रस की अभिव्यंजना करते हुये महाकवि ने इसमें अपनी अधिक रुचि अभिव्यक्त किया है परिणामतः काव्य के श्रृंगारिक चित्रों में सरसता की अपेक्षा वासना की गन्ध आने से अश्लीलता दिखाई देती है ।

सप्तम अध्याय में महाकवि माघ के व्यक्तित्व के विषय में उल्लेख किया गया है। महाकवि माघ गौर वर्णीय, रूपवान एवं स्वस्थ थे। उनका व्यक्तित्व आकर्षक था। वह गले में मूल्यवान् आभूषण के रूप में मोतियों की माला धारण करते थे और वक्षस्थल पर यज्ञोपवीत। वह महीन श्वेत धोती पहनते थे और कन्धे के चारों ओर उपवस्त्र धारण करते थे। स्वभाव से विनोदी व्यक्ति थे। संभाषण के समय में उनके बोलने में वैचित्र्य भरा रहता था। प्राय: प्रसन्नचित्त रहते थे। प्रकृति से विनीत थे परन्तु जो कुछ भी कार्य करते थे-उसमें उनके लिये यश, प्रतिष्ठा एवं प्रशंसा की एक उत्कट चाह उनके हृदय में बनी रहती थी। उनका काव्य इसी बात का प्रमाण है कि उन्होंने इसी यशोलिप्सा के कारण अपनी चमत्कारी प्रतिभा एवंपांडित्य का परिचय-स्थान-स्थान पर दिया है। कभी-कभी वह शास्त्रार्थ करते दिखाई पड़ते हैं और कभी-कभी परास्त होते हुये और करते हुये प्रतीत होते हैं। उनमें कवित्व एवं पांडित्य का समन्वय पूर्णरूप से दिखाई पड़ता है। उनका काव्य इस तथ्य का परिचायक है कि उन्हें व्याकरण, राजनीति, अलंकार शास्त्र, कामशास्त्र, सांख्य योग, बौद्धदर्शन, पुराण, वेद, अश्वविद्या, गज विद्या, आयुर्वेद, ज्योतिष, संगीत शास्त्र का पर्याप्त ज्ञान था। धर्म के प्रति भी उनके समभाव थे। किसी भी धर्म के प्रति उनकी कोई अश्रद्धा नहीं दिखाई देती। धार्मिक समन्वय में विश्वास रखने वाले व्यक्ति थे। वैसे वे विशुद्ध सनातनी धर्मी परम्परा के पोषक व अनुगामी थे। इन सब बातों के अतिरिक्त महाकवि माघ अपने ढंग के श्रृंगार प्रेमी रसिक व्यक्ति थे। सरल रसिकता के कारण प्रेम की गहराई के दर्शन कहीं भी काव्य में

नहीं दृष्टिगोचर होता । उनका प्रेम वासना प्रधान है-ऐसा कहना यदि उचित नहीं है तो कम से कम उन्होंने जिस प्रेम का वर्णन किया है- वह वासना का वर्णन है, प्रेम का नहीं उसमें अपने प्रिय के लिये जो भावों की उच्चता, विशालता एवं सर्वस्व अर्पण करने की भावना होनी चाहिये-उसके दर्शन नहीं होते । उनके व्यक्तित्व का यह कोना शून्य सा है - विकृत भी है ।

महाकवि माघ संस्कृत साहित्याकाश के देदीप्यमान नक्षत्र हैं । इनका शिशुपालवध महाकाव्य बृहत्त्रयी के अन्तर्गत परिगणित है । "माघे सन्ति त्रयो गुणाः" कहकर समालोचकों ने माघ में एक साथ कालिदास जैसा उपमा सौन्दर्य, भारवि काव्य जैसा अर्थगाम्भीर्य और दण्डी जैसा पदलालित्य देखा और माघ को एक व्यक्ति से एक संस्था बना डाला । प्रत्येक कवि एक युग जीता है और अपने युग की प्रवृत्तियों का प्रतिनिधित्व करता है । भारवि के किरातार्जुनीयम् की प्रसिद्धि ने माघ को कालिदास और अश्वघोष की सरल, सहज शैली का परित्याग करके रीतिबद्ध कविता लिखने को विवश किया होगा । फलतः श्लेष मूलक चित्रकाव्यों से भरपूर काव्यलेखन महाकवि के स्वभाव की जटिलता के कारण नही है, अपितु उनकी यह विवशता युग की मांग के कारण थी । काव्यशास्त्रीय दृष्टि से माघकाव्य न केवल एक परिवेष्टित कृति है, अपितु विविध प्रसङ्गों में काव्यशास्त्रकारों ने माघकाव्य के उद्धरण देकर माघ के कवित्व को अभिप्रमाणित कर दिया है ।

एक समीक्षक ने नवसर्गगते माघे नव शब्दो न विद्यते कहकर माघ के शब्द चयन को प्रमुखता से अभिलक्षित किया है, तो अन्य श्रीहर्ष के प्रशंसक समालोचक

ने "तावद्भा भारवेर्भाति, यावन्माघस्य नोदयः" कहकर कम से कम भारवि की अपेक्षा माघ काव्य की चारुता की सार्वजनिक स्वीकृति का उद्घोष किया है। "लक्ष्मीपतेश्चरितकीर्तनमात्रचारु" कहकर माघ कवि ने भगवान् श्रीकृष्ण के युगानुकूल चरित्र का वर्णन करते हुये अपने युग का सांस्कृतिक प्रतिदर्श प्रस्तुत करते हुये उस काल के ज्ञान-विज्ञान तथा सामाजिक जीवन की जो प्रतीकात्मक झांकी प्रस्तुत की है, वह आज भी समालोचकों, सहृदयों, काव्यमर्मज्ञों इतिहासकारों और समाजशास्त्रियों का ध्यान अपनी ओर आकृष्ट करती है। यही कारण है कि अन्यान्य विचारकों ने अपने अपने ढंग से अपनी अपनी दृष्टि से माघकाव्य का मन्थन किया और कुछ नवनीत निकाला, किन्तु फिर भी अभी उसमें रसमयता का, दार्शनिकता का, चिन्तन का, भक्ति का, सामाजिक व्यवस्था का अद्भुत उत्स सुरक्षित है जो युगों युगों तक सहृदयों और तत्वान्वेषण कर्ताओं की स्पृहणीय पृच्छा का केन्द्रबिन्दु बना रहेगा।

सन्दर्भ ग्रन्थ-सूची

(अ) काव्यशास्त्रीय ग्रन्थ

	ग्रन्थ नाम	लेखक
1-	साहित्यदर्पण	विश्वनाथ कविराज
2-	काव्य प्रकाश	मम्मट
3-	काव्यालंकार	भामह
4-	काव्यादर्श	दण्डी
5-	काव्यालंकारसूत्रवृत्ति	वामन
6-	काव्यानुशासन	हेमचन्द्र, वाग्भट्ट
7-	काव्यमीमांसा	राजशेखर
8-	दशरूपक	धनंजय
9-	ध्वन्यालोक	आनन्दवर्धन, अभिनवगुप्त
10-	रसगंगाधर	पण्डितराज जगन्नाथ
11-	रसमंजरी	भानुदत्त
12-	रसार्णव	शिंगभूपाल
13-	वक्रोक्तिजीवितम्	कुन्तक
14-	वाग्भटालंकार	वाग्भट्ट
15-	अलंकार सर्वस्व	रुय्यक
16-	काव्यालंकारसार संग्रह	उद्भट

(ब) संस्कृत ग्रन्थ

	ग्रन्थ नाम	लेखक
1-	श्रीमद्भागवत महापुराण	
2-	विष्णु पुराण	
3-	पद्म पुराण	
4-	ब्रह्मवैवर्तपुराण	
5-	महाभारत	
6-	भागवतगीता	
7-	ऋग्वेद संहिता	
8-	अथर्ववेद संहिता	
9-	कुमार संभव	कालिदास
10-	मेघदूत	"
11-	रघुवंश	"
12-	अभिज्ञान शाकुन्तलम्	"
13-	किरातार्जुनीयम्	भारवि
14-	शिशुपालवध	माघ
15-	नैषधीयचरित	श्रीहर्ष
16-	शृंगारलहरी	हरिवल्लभ
17-	हर्षचरित	बाणभट्ट
18-	महाभाष्य	पतंजलि
19-	मनुस्मृति	मनु
20-	अष्टाध्यायी	पाणिनी

(ख) हिन्दी ग्रन्थ

	ग्रन्थ नाम	लेखक
1-	संस्कृत कवियों के व्यक्तित्व का विकास	डॉ0 राधा वल्लभ त्रिपाठी
2-	संस्कृत साहित्य का इतिहास	डॉ0 मंगल देव शास्त्री
3-	संस्कृत साहित्य का इतिहास	डॉ0 चन्द्रशेखर पाण्डेय
4-	संस्कृत साहित्य का इतिहास	डॉ0 राज किशोर सिंह
5-	संस्कृत साहित्य का इतिहास	सीताराम जयराम जोशी
6-	संस्कृत महाकाव्य की परम्परा	डॉ0 केशवराज मुसलगाँवकर
7-	संस्कृत साहित्य की रूपरेखा	एस0एन0 व्यास एवं सी0एस0 पाण्डे
8-	आचार्य दण्डि एवं संस्कृत शास्त्र का इतिहास दर्शन	डॉ0 जय शंकर त्रिपाठी
9-	संस्कृत साहित्य का इतिहास	बलदेव उपाध्याय
10-	संस्कृत सुकवि समीक्षा	
11-	संस्कृत शास्त्रों का इतिहास	
12-	कवि और काव्यशास्त्र	डॉ0 सुरेश चन्द्र पाण्डेय
13-	संस्कृत कवि दर्शन	डॉ0 भोला शंकर व्यास
14-	संस्कृत नाटक	डॉ0 उदय भान सिंह
15-	नाट्य शास्त्र	भरत
16-	नाट्यदर्पण	रामचन्द्र-गुणचन्द्र

ग्रन्थ नाम	लेखक
17- रस सिद्धान्त	डॉ० नगेन्द्र
18- रस मीमांसा	पं० राम चन्द्र शुक्ल
19- ध्वनि सिद्धान्त, ध्वनि विरोधी सम्प्रदाय एवं उनकी मान्यतायें	डॉ० सुरेश चन्द्र पान्डे
20- नैषधीय परिशीलन	डॉ० चण्डिका प्रसाद शुक्ल
21- ब्राह्मस्फुट सिद्धान्त की भूमिका	प्रो० सुधाकर द्विवेदी
22- प्राचीन भारत का इतिहास	के० सी० श्रीवास्तव
23- प्राचीन भारत का इतिहास	रीता शर्मा
24- उदयपुर का इतिहास	डॉ० गौरी शंकर ओझा
25- जैन परम्पराओं का इतिहास	
26- जैन साहित्य और इतिहास	नाथू राम प्रेमी
27- बृहत्त्रयी एक तुलनात्मक अध्ययन	डॉ० सुषमा कुलश्रेष्ठ
28- महाकवि माघ, उनका जीवन तथा कृतियाँ	डॉ० मनमोहन लाल जगन्नाथ शर्मा
29- शिशुपालवध (टीका)	पं० हर गोविन्द शास्त्री
30- हिन्दी महाभारत	राम नारायण लाल

(द) पत्र-पत्रिकायें

1- हिन्दुस्तान

2- जैन-श्वेताम्बर कान्फ्रेन्स मासिक हेराल्ड पत्रिका

3- जैन साहित्य संशोधक

4- राजस्थान-एक प्राचीन नगर

5- जीवराज जैन ग्रन्थमाला

ENGLISH JOURNALS:

1- Journal of Sanskrit Sahitya Parishad.

2- Journal of the Asiatic Society.

3- Journal of the Mythic Society.

4- Journal of the Oriental Research.

5- Vienna Oriental Journal.

6- Manjusha Sanskrit Journal.

7- Manjubhashini Sanskrit Journal.

8- Calcutta Oriental Journal.

9- Indian Literature.

10- Indian Antiquary.

11- Indian Reviews.

12- Bulletin de7.

13- Epigraphica Indica.

ENGLISH BOOKS:

No.	Title	Author
1-	The Hindu History	A.K. Majumdar.
2-	Ancient India	U.N.Ball.
3-	Ancient Indian Colonies in for East	R. C. Majumdar.
4-	Cut Lines of Ancient Indian History and Civilization.	" "
5-	The Early History of India (From 600 B.C. till Mohammedan peiod)	V.A. Smith.
6-	Civilization in Ancient India	R.C. Dutt.
7-	Medieval India	U.N. Ball
8-	History of Medieval India	C.V.Vaidya.
9-	Oxford History of India	V.A.Smith
10-	Advanced History of India	R.C.Majumdar, Rai Dutta Chowdhary.

11- History of Sirohi State — G.S. Ojha.

12- Development of Politics and plitical theories — N.C.Bandopadhyaya.

13- Padma puran — S.H.Sharma.

14- Yashastalik Khand-Indian Culture — K.K.Handik.

15- A History of Sanskrit Literature — Arthur A.Mac.Donell.

16- History of Classical Sanskrit Literature — M.Krishnamachriar.

17- A History of Sanskrit Literature — A.B.Keith

18- History of Sanskrit Literature — S.K.De.

19- A new History of Sanskrit Literature — Krishna Chaitanya.

20- History of Sanskrit Poetics — P.V.Kane

21- Sanskrit Drama — A.B.Keith

22- The Natya Shastra — Man Mohan Ghosh

23- Number of Rasas — V.Raghvan.

24- A History of Indian Literature — M.Winternitz.

25- History of Vedic Literature — C.V.Vaidya.

26- A Survey of Sanskrit Literature — C.Kuhnanraja.